Master of Arts (Hindi) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20HND22C3

हिन्दी साहित्य का इतिहास–II

आधुनिक काल

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

द्वितीय सेमेस्टर

तृतीय प्रश्न–पत्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास–II

आधुनिक काल

समय 3 घण्टे

पूर्णांक : 100 अंक
सतत् मूल्यांकन : 20 अंक
लिखित : 80 अंक

अध्ययन उद्देश्य

1. आधुनिक काल में रचित हिन्दी कविता की विविध प्रवृत्तियों को महत्वपूर्ण कवियों और कविताओं द्वारा समझना।
2. आधुनिक काल में रचित विविध गद्य विधाओं का आलोचनात्मक अध्ययन ताकि उनके माध्यम से साहित्य एवं समाज के अन्तरसम्बन्ध की जानकारी हो सके।
3. जनजीवन व राष्ट्रीय आन्दोलन में आधुनिक युग की भूमिका के महत्व को समझ सकेंगे।

निर्देश–

1 पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रत्येक खंड में से कम से कम एक दीर्घ प्रश्न अवश्य पूछा जाएगा। पूछे गए कुल प्रश्नों की अधिकतम संख्या आठ होगी। परीक्षार्थी को इनमें से कोई चार प्रश्न करने होंगे। प्रत्येक प्रश्न के लिए 12 अंक निर्धारित हैं। पूरा प्रश्न 48 अंकों का होगा।

2 पूरे पाठ्यक्रम में कोई दस लघूत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे। जिनमें से परीक्षार्थी को 250 शब्दों में किन्हीं छः प्रश्नों का उत्तर देना होगा। प्रत्येक प्रश्न 4 अंक का होगा। पूरा प्रश्न 24 अंकों का होगा।

3 पूरे पाठ्यक्रम में से आठ वस्तुनिष्ठ अनिवार्य प्रश्न पूछे जाएंगे। प्रत्येक प्रश्न एक–एक अंक का होगा।

विषय सूची

इकाई – 1

आधुनिक हिन्दी काव्य (7–66)

1. आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास
2. परिवेश : राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सामाजिक, आर्थिक एवं साहित्यिक
3. 1857 ई. की राज्य क्रांति और पुनर्जागरण
4. भारतेंदु युग : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
5. द्विवेदी युग : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
6. छायावादी काव्य : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
7. उत्तर छायावादी काव्य : प्रतिनिधि रचनाकार एवं प्रवृत्तियाँ
8. प्रगतिवाद : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
9. प्रयोगवाद : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
10. नई कविता : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
11. नवगीत : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ
12. समकालीन कविता : प्रवृत्तियाँ विशेषताएँ

इकाई – 2

हिंदी गघ की प्रमुख विधाओं का विकास (67–132)

1. कहानी : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
2. उपन्यास : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
3. नाटक : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
4. निबंध : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
5. संस्मरण : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
6. रेखाचित्र : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
7. जीवनी : परिचय, उद्‌भव एवं विकास
8. आत्मकथा : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

लघुत्तरी प्रश्न (133–162)

परिचय

अधुनिकता एक नवीन प्रवृत्ति है। जो निरंतरता का बोध कराती है। जो नया है वह आधुनिक हो जाता है, नयी पीढ़ी के लिए। आधुनिक काल वस्तुतः आधुनिक इसलिए है की भारत में ब्रिटिशों की नयी शासन पद्धति आयी और अंग्रेजों द्वारा नये साधनों, संस्थाओं का विकास हुआ। इस नये साधनों में डाक, रेल आदि हैं तो संस्थाओं में स्कूल, कॉलेज आदि। परिणाम : देश में जागरण का दौर आया। साहित्य में भी। कविता राज दरबार की कामीनी से निकलकर जनता के सुख–दुख से जुड़ी और साहित्य के केन्द्र में सामान्य मनुष्य आया। इन परिवर्तनों का कारण आधुनिक काल की भिन्न–भिन्न परिस्थितियां हैं जो इस देश को पाश्चात्य जगत से सम्पर्क में आने के कारण उत्पन्न हुई। साहित्य एक निरंतर एक गतिशील भावधारा है, जो प्राचीन परम्पराओं से जुड़ी होकर भी आगे बढ़ती रहती है।

'आधुनिक' शब्द कालवाचक 'अधुना' अव्य से बना है। 'अधुना' का अर्थ है 'इस समय', 'संप्रति', 'वर्तमानकाल'। अतः आधुनिक का अर्थ है, 'इस समय का', हाल का, नया, वर्तमान समय का। इस दृष्टि से केवल अपने उपस्थित समय को ही 'आधुनिक काल' कह सकते हैं।

जब हम हिन्दी साहित्य को देखते हैं तो पाते हैं कि भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का हिन्दी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दी साहित्य को नई–नई दिशाएं, नए–नए रूप और आयाम प्राप्त हुए। हिन्दी साहित्य में ही नहीं समूचे भारत की प्रमुख भाषाओं के साहित्य में परिवर्तन और नवीनता के लक्षण 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही दिखाई देते हैं। आचार्य शुक्ल ने 1900 ई. (1883) से आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भ माना है।

ईकाई–1

आधुनिक हिन्दी काव्य

1. इकाई के उद्देश्य –

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

(1) हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

(2) हिन्दी भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह काल संक्रमण का है, विषय पर विचार कर सकेंगे।

(3) आधुनिक काल की कौन–सी कारक प्रवृत्तियाँ थी, जिसने गद्य लेखन का आरम्भ किया।

(4) राष्ट्रीय आन्दोलन में आधुनिकयुग की भूमिका के महत्व को समझ सकेंगे।

(5) आधुनिक काल के गद्य का स्वरूप किस प्रकार का है।

(6) भारतेंदु युगीन व द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों का मूल्यांकन से अवगत हो सकेंगे।

(7) छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के विषय में जान पाएंगे।

(8) नई कविता, नवगीत एक समकालीन कविता के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

2 आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास :

हिंदी साहित्य के इतिहास के हजार वर्षों के इतिहास को मुख्य रूप से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल कालक्रमानुसार विभाजित किया गया है। मध्यकाल को पुनः पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल दो भागों में विभक्त किया गया है। भक्तिकाल के अतिरिक्त तीनों कालों के एक से अधिक नामकरण एवं सीमा निर्धारण में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है फिर भी अधिकांश विद्वानों ने शुक्ल जी द्वारा प्रदत्त नाम एवं समय सीमा को स्वीकारा है–

(1) आदिकाल (वीरगाथा काल, संवत् 1050 –1375 तक)

(2) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375–1700 तक)

(3) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700–1900 तक)

(4) आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900 – आज तक)

साहित्येतिहास का कालक्रमानुसार विभाजन तत्कालीन कृतियों की प्रवृत्ति विशेष के अनुसार किया गया है। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि एक निश्चित तिथि के पश्चात् एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य का सृजन समाप्त या प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि साहित्य सृजन में काल सीमा का कोई बंधन नहीं है। किसी विशिष्ट काल में भी अन्य प्रकार के साहित्य का भी सृजन होता रहता है। आधुनिक काल में गद्य–पद्य साहित्य की रचना समानांतर रूप से चली आ रही है।

हिंदी साहित्येतिहास के आधुनिक काल की प्रमुख घटना गद्य का आविर्भाव है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को गद्य काल नाम दिया है और इस काल का प्रारम्भ संवत् 1900 विक्रमी. स्वीकारा है। आधुनिक काल से पूर्व गद्य का विकास संवत् 1900 विक्रमी. से पूर्व गद्य अपने विभिन्न रूपों में हिंदी साहित्य में पदार्पण कर चुका था। यद्यपि शुक्ल ने गद्य साहित्य का आविर्भाव संवत् 1913 में राजा शिव प्रसाद के शिक्षा विभाग में निरीक्षक पद पर नियुक्ति से माना है। राजा शिव प्रसाद ने स्वयं हिंदी रचना का बीड़ा उठाया तथा पंडित श्री लाल एवं पंडित वंशीधर आदि अपने इष्ट मित्रों को भी हिंदी में पुस्तक सृजन की प्रेरणा दी। तत्कालीन साहित्य में 'राजा भोज का सपना', 'वीर सिंह का वृत्तांत', 'आलसियों का कोड़ा' आदि उपयोगी कहानियों के अतिरिक्त "भारत वर्षीय इतिहास", "जीविका–परिपाटी" (अर्थशास्त्र) तथा "जगत वृत्तांत" का विशेष महत्व है। रीतिकाल की समाप्ति तक देश में आंग्ल राज्य पूर्ण रूपेण स्थापित हो चुका था जिसने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया। चार्ल्सग्रांट ने संवत् 1858 विक्रमी. में ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों के पास अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा भारतीयों को शिक्षित करने हेतु प्रस्ताव प्रेषित किया था। कोलकाता में हिंदू कॉलेज की स्थापना उसी की एक कड़ी है। लार्ड मैकाले ने संवत् 1883 में अंग्रेजी के साथ–साथ देशभाषा द्वारा शिक्षा की संभावना को स्वीकारा। व्यावहारिक कठिनता के कारण सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी एवं देशी भाषा को फ़ारसी का स्थापन्न बनाया गया।

साहित्य की भाषा ब्रजभाषा ब्रज–मंडल के बाहर बोलचाल की भाषा नहीं थी। दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट–समुदाय की व्यावहारिक भाषा बन चुकी थी। खुसरो ने विक्रमी. की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ–साथ खड़ी बोली कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली अर्थात् रेख़ता में शायरी का श्रीगणेश औरंगजेब के शासन काल में ही हो गया था। दिल्ली पतन के परिणाम स्वरूप पूर्व में स्थित बड़े–बड़े शहरों के बाजार के व्यावहारिक भाषा का रूप में खड़ीबोली दिखाई देने लगी थी।

आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास : भूमिका 93 बोली ने ले लिया जो असली एवं स्वाभाविक भाषा थी। अकबर कालीन गंग कवि ने "चंद छंद बरनन की महिमा" की रचना खड़ी बोली में की। संवत् 1980 में जटमल ने 'गोरा बादल की कथा' का सृजन राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली में किया।आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"जिस समय अंग्रेजी राज्य भारत में प्रतिष्ठित हुआ, उस समय सारे उत्तरी भारत में खड़ी बोली व्यवहार की शिष्ट भाषा हो चुकी थी अंग्रेजों ने उर्दू को देश की स्वाभाविक भाषा और उसके साहित्य को देश का साहित्य नहीं स्वीकारा। इसीलिए देश की भाषा सीखने हेतु गद्य की खोज हुई। उर्दू के साथ–साथ हिंदी (शुद्ध खड़ी बोली) में गद्य रचना को प्रधानता दी गई क्योंकि उस समय तक वास्तव में गद्य की पुस्तकें न उर्दू में थीं न हिंदी में। कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व'सुखसागर' (भागवत कथा का अनुवाद) – मुंशी सदासुख लाल, 'रानी केतकी की कहानी' – इंशा अल्ला खां की रचना हो चुकी थी। कुछ विद्वानों ने "रानी केतकी की कहानी" को हिंदी की प्रथम कहानी स्वीकारा है। इसलिए गद्य के प्रादुर्भाव को अंग्रेजी की प्रेरणा स्वरूप नहीं माना जा सकता है।

संवत् 1890 वि. में फोर्ट विलियम कॉलेज कोलकाता के अध्यक्ष जान गिल क्राइस्ट ने देशी भाषा (खड़ी बोली), गद्य की पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की जिसमें उर्दू–हिंदी दोनों का अलग–अलग प्रबंध किया। खड़ी बोली गद्य की नियमित प्रतिष्ठा करनेका श्रेय – लल्लू लाल जी – प्रेम सागर, सदल मिश्र – नासिकेतोपाख्यान, मुंशी सदासुखलाल – सुखसागर तथा सैयद इंशा अल्ला खां – रानी केतकी की कहानी, चार महानुभावों को है।

फोर्ट विलियम कॉलेज से पूर्व हिंदी गद्य–

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व भी हिंदी गद्य अपना अस्तित्व स्थापित कर चुका था। संवत् 1400 वि. के ब्रज भाषागद्य का रूप गोरखनाथ की वाणी, गोरखनाथ के पद तथा ज्ञान सिद्धांत योग से मिलता है जिसे ब्रजभाषा गद्य का पुराना रूप कहा जा सकता है। गोसाईं गोकुल नाथ जी ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" एवं "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" की रचना की। इनका रचना काल संवत् 1625–1650 वि. तक का है। इनकी भाषा बोलचाल की

ब्रज भाषा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– "भाषा–विप्लव नहीं संघटन हुआ और खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा की गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे–धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी।" टीकाओं द्वारा गद्य की उन्नति की संभावना नहीं हुई। गद्य को एक साथ प्रतिष्ठापित करने वाले चारों लेखकों में आधुनिक हिंदी का पूर्ण आभास मुंशी सदासुख एवं सदलमिश्र की भाषा में उपलब्ध होता है। इनमें भी मुंशी सदासुख की भाषा अधिक महत्वपूर्ण है। आधुनिक गद्य के प्रतिष्ठापन का श्रेय मुंशी सदासुख लाल को है। किंतु यह परंपरा अपनी अखंडता नहीं बना पाई। यह परंपरा लगभग पचास वर्षों तक लुप्त रही। पुनः संवत् 1914 से हिंदी गद्य साहित्य की परंपरा का आरंभ हुआ। इससे पूर्व काल में ईसाई मत प्रचारकों ने विशुद्ध हिंदी का व्यवहार किया है। बाइबिल तथा नए धर्म नियम का अनुवाद केरे ने शुद्ध खड़ी बोली में किया है। इन्होंने सदासुख और लल्लू लाल की विशुद्ध भाषा को अपना आदर्श बनाया तथा उर्दूपन का पूर्ण बहिष्कार किया।

फोर्ट विलियम कॉलेज के पश्चात् हिंदी गद्य–

'सिरामपुर प्रेस' से संवत् 1893 में 'दाऊद के गीत' का प्रकाशन हुआ। शिक्षा–संबंधी पुस्तकें छपने लगीं। अंग्रेजी शिक्षा हेतु स्कूल और कॉलेजों की स्थापना हुई जहां अंग्रेजी के साथ हिंदी–उर्दू की पढ़ाई की भी व्यवस्था की गई। संवत् 1900 से पूर्व ही ऐसी पुस्तकों की मांग हो चुकी थी जिसके परिणाम स्वरूप संवत् 1890 में आगरा में पादरियों ने "स्कूल–बुक –सोसाइटी" की स्थापना की। जहां से "प्राचीन इतिहास" का अनुवाद "कथासार" के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक पंडित रतन लाल थे। आगरा 'स्कूल–सोसायटी' से संवत् 1897 में पंडित ओंकार भट्ट ने "भूगोलसार" तथा संवत् 1904 में पंडित बद्रीलाल शर्मा ने "रसायन प्रकाश" छापा। कोलकाता की 'स्कूल–बुक–सोसायटी' ने संवत् 1903 में 'पदार्थ विद्यासार' प्रकाशित किया। इलाहाबाद मिशन प्रेस से संवत् 1897 में 'आज़मगढ़ रीडर' प्रकाशित हुआ। संवत् 1912–1919 तक 'भू चरित्र दर्पण', 'भूगोल विद्या', 'मनोरंजक वृत्तांत,' 'जंतुप्रबंध,' 'विद्यासार', 'विद्वान संग्रह' आदि का प्रकाशन किया। 'आसी' और 'जान' के भजन देशी ईसाइयों में बहुत प्रचलित हुए हैं। हिंदी–गद्य के प्रचार–प्रसार में ईसाइयों का अत्यधिक योगदान रहा है।'छापा खाना' खुलने लगे जिसके परिणाम स्वरूप लोगों का ध्यान सामयिक पत्रों की ओर आकृष्ट हुआ। कोलकाता से अंग्रेजी एवं बंगला के पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। देवनागरी लिपि में टूटी–फूटी चाल पर लिखी जाने वाली भाषा हिंदी कहलाई। शिक्षा विभाग में नियुक्त होने से पूर्व राजा शिवप्रसाद सिंह का ध्यान हिंदी भाषा की ओर था। अन्य भाषाओं के समाचार पत्रों के प्रकाशन को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने संवत् 1902 में 'बनारस अख़बार' निकाला। संवत् 1907 में तारा मोहन मित्रादि ने 'सुधाकर' नाम का दूसरा पत्र काशी से निकाला। संवत् 1909 में आगरा से किसी मुंशी सदासुखलाल ने 'बुद्धि प्रकाश' पत्र निकाला। आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास को गद्य काल भी कहा गया है। समय सीमा संवत 1900 से मानी गई है। जबकि गद्य का उद्‌भव और विकास इससे पूर्व हो चुका था। इसलिए यह विवेचन विषय से पूर्व अनिवार्य था।

3. आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्व पीठिका : परिवेश

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की मुख्य घटना साहित्य में गद्य का अविर्भाव है। वीरगाथा काल, भक्ति काल एवं रीति काल के काव्य की भाषा क्रमशः डिंगल–पिंगल, अवधि–ब्रज थी जो पद्यात्मक थी। साहित्य की दो प्रमुख धाराएं पद्य एवं गद्य हैं। गद्य आधुनिक काल की देन है जो अपने साथ खड़ी बोली गद्य को साहित्यिक, परिनिष्ठित, मानकएवं सर्वसुलभ हिंदी के रूप में लेकर आया। आधुनिक काल में गद्य–पद्य का समानांतर विकास हुआ। यह काल उत्थान–पतन, विप्लव–क्रांति – सृजन, युद्ध–शांति, विनाश–निर्माण प्रधान रहा है जिसके परिणामस्वरूप आधुनिककाल का साहित्य नव चेतना – नवीन दृष्टिकोण, संत्रास–कुंठा, शोषक–शोषित, पूंजीपति–श्रमहारा, ज्ञान–विज्ञान,आध्यात्मिकता–भौतिकता, धर्म–राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्यिक–वैविध्य की उत्तरदायी राजनीतिक,सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियां हैं। इन परिस्थितियों की

जन्मदात्री अंग्रेजों की तत्कालीन सत्ता थी जिसने स्वाभाविक रूप से भारतीयों में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष क्रांति एवं विद्रोह की भावना जागृतकर के पुनर्जागरण की दिशा की ओर अग्रसर किया।

(क) परिवेश– साहित्य–परिवेश समाज का दर्पण है। समाज की परिवेशजन्य परिस्थितियां साहित्य सृजन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिनसे प्रभावित होकर ही साहित्यकार साहित्यिक क्षेत्र में आधुनिक नवीन सोच एवं नव्य दृष्टिकोणका प्रतिनिधित्व करता है। समाज का परिवेश निर्माण करने में राजनीति, समाज, अर्थ, संस्कृति या धर्म एवं साहित्य का विशेष योगदान होता है जो साहित्य सृजन में पूर्व पीठिका स्वरूप उपस्थित होता है–

(1) राजनीतिकः– किसी काल के साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म चमत्कारिक घटना के परिणामस्वरूप अचानक नहीं होता है अपितु कुछ समय पूर्व उसका बीजवपन हो जाता है जो अत्यधिक गहराई में पड़ा रहता है। अनुकूल वातावरण एवं प्राकृतिक संरक्षण में पोषण प्राप्त कर अंकुरित एवं पल्लवित होता है। हिंदी साहित्य के आधुनिककाल में नवयुग की चेतना का विकास अति महत्वपूर्ण घटना है। इसका बीज इसी काल के राजनीतिक परिवेश की देन है।

1. प्रथम काल– प्लासी युद्ध ने अंग्रजें की नीवं भारत में सुदृढ. कर दी। शनैः शनैः ईस्ट इंडिया कंपंनी ने संपूर्ण भारत पर अपनी सत्ता जमा ली। कंपनी का प्रभुत्व बढ़ने के साथ–साथ उसके अधिकारी अपना अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ाने लगे। भारतीयों में असंतोष, क्षोभ, विद्रोह, संत्रास एवं कुंठा की लहर दौड़ गई। कंपनी के अधिकारियों ने देशी राजाओं को अपने में मिलाने हेतु कुटिल 'लैप्स नीति' को अपनाया जो बड़ी घातक सिद्ध हुई। सन् 1858 में झांसी को 'लैप्स नीति' के आधार पर कंपनी ने अपने शासन में मिला लिया जिसके परिणाम स्वरूप देश में प्रजा एवं देशी राजा दोनों ही कंपनी के अत्याचारी शासन से घबरा गए। इंडियन नेशनल कांग्रेस ने भारतीयों के राजनीतिक परिवेश को और अधिक विकास प्रदान किया। कांग्रेस ने जनता के समक्ष कुछ निश्चित राजनीतिक सिद्धान्त प्रस्तुत किए जिनकी प्राप्ति के लिए भारतीयों में अपार उत्साह की भावना जग गई। इटली के 'स्वतन्त्रता युद्ध', आयरलैंड के 'होमरूल' आंदोलन तथा फ्रांस की 'राज्यक्रांति' के इतिहास ने जनता की विरोधी भावना को अत्यधिक भड़काया एवं अनेक उत्साही युवकों ने हिंसात्मक उपायों से अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने की प्रबल इच्छाएं व्यक्त की। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की इस राजनीतिक चेतना का प्रभाव भारतेंदु–युग पर स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है।

द्वितीय काल– यह काल सन् 1905 से आरम्भ होता है। कांग्रेस ने आवेदन एवं प्रार्थना की नरम नीति का परित्यागकर उसने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" की घोषणा कर दी। इसी समय कांग्रेस में गरम एवं नरम दोदल हो गए। कर्जन की बंगाल–विभाजन की भारत विरोधी नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से आपूरित भारतीयों की आंखें खुल गई थीं और वे अंग्रेजों को अति संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे। इस युग में भारतीय राजनीति का आधार मानवतावाद कहा गया। देश के असंतोष को शांत करने के लिए अंग्रेजी शासकों ने समय–समय परशासन–प्रणाली में सुधार किए। सन् 1909 ई. में मार्ले–मिंटो–सुधार कानून पास हुआ, इसने मुसलमानों को अलगप्रतिनिधित्व दिया जिससे हिंदु–मुस्लिम एकता को बड़ी ठेस पहुंची। अत्यधिक प्रयत्नोपरांत सन् 1926 में हिंदू–मुस्लिम समझौता हो सका और श्रीमती एनीबेसेंट के प्रयत्न से कांग्रेस के दोनों दलों में भी एकता स्थापित हो गई। किंतु इसी बीच यूरोप में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। भारतीयों ने तन–मन से अंग्रेजों की सहायता की किंतु युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेज अपने वायदे से मुकर गए, उल्टे रोलेट ऐक्ट (1919) के द्वारा भारतीय जनता से स्वतंत्रता के अधिकार छीन लिए। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के इतिहास में राजनीतिक परिवेश के द्वितीय उत्थान का यह समय द्विवेदी युग या सुधार काल के नाम से अभिहित है।

तृतीय काल– तृतीय काल प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से आरंभ होता है। महायुद्ध के बाद भीषण जनसंहार केकारण मानवचित्त उद्वेलित हो रहा था तथा भारतीयों पर अंग्रेजों ने "रोलेट एक्ट" की दमन नीति के द्वारा अति कठोर

आघात किया। एक ओर सुधार का ढोंग था और दूसरी ओर घोर दमन की अत्याचारपूर्ण नीति, जिसका भारत की सभी जातियों ने विरोध किया। सन् 1920 ई. में तिलक के देहावसान से कांग्रेस का नेतृत्व पूर्णरूपेण गांधी जीके हाथों में आ गया था। राजनीतिक चेतना का तृतीय उत्थान ग्राम–उद्धार एवं मध्य वर्ग के विकास के रूप मेंदेखा जा सकता है। गांधी जी ने अहिंसा को स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य बनाया जिसका मुख्य आधार असहयोग एवं ग्रामोद्धार था। गांधी की संपूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्यों में लग रही थी। अन्य राजनीतिक अपने विचारों से बुद्धिजीवी वर्ग में देश भक्ति की भावना जागृत करने में लगे हुए थे। शनैः शनैः कांग्रेस पार्टी ने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य की मांग की। कांग्रेस पार्टी के राजनीतिक कार्यों से जनता में राष्ट्रीयता की भावना का उत्तरोत्तर विकास हुआ। असहयोग के दो रूप थे, एक तो विदेशी शासकों के साथ असहयोग एवं विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार। मुख्य रूप से विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हुआ। विदेशी वस्त्रों की होली जली। खादी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बन गई। गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में मानवतावाद को प्रमुख स्थान दिया। गांधी जी की मानवतावादी भावना के अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिंदू–मुस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार, जमींदारी उन्मूलन आदि अनेक रूप हैं। गांधी जी के उपर्युक्त कार्यों में निश्चित रूप से रचनात्मक आंदोलन का अति स्पष्ट स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इनमें से हरिजन आंदोलन, जमींदारी प्रथा का विरोध एवं अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह आदि राष्ट्रीय एकता एवं देशव्यापी राजनीतिक चेतना में विशेष सहायक सिद्ध हुए। इसी युग में रवींद्रनाथ टैगोर ने मानवतावाद का प्रचार अपने साहित्य द्वारा किया। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीयता, विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता आदि का प्रचार किया। इस काल में गांधी एवं रवींद्रनाथ टैगोर का विशेष योगदान रहा, जिन्होंने युगीन विचारधारा को अति व्यापक रूप से प्रभावित किया।

चतुर्थ काल– चतुर्थ काल का आरम्भ द्वितीय महायुद्ध से होता है। स्वतन्त्रता संग्राम अपने चरम रूप में था विश्व के अन्य राष्ट्रों का भी समर्थन मिल रहा था। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर पूर्ण स्वतन्त्रता मिलने की आशाबलवती होती जा रही थी। पूंजीवाद में वृद्धि हो रही थी जिससे जनता अत्यधिक असंतुष्ट हो रही थी। स्वतन्त्रता आंदोलन के स्वरूप में पर्याप्त बदलाव आ गया था। राजनीतिक परिस्थितियां भी बदल गई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु हिंदू–मुसलमानों में समझौता होना था। सन् 1945 में ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी जिसको भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। शनैः शनैः भौतिकता के विकास के साथ ही देश के जीवन में अतिशुष्कता आ गई थी। इस काल की राजनीतिक चेतना का एक अति महत्वपूर्ण तथ्य समाजवादी विचारधारा काविकास है। पूंजीवाद वर्ग–संघर्ष को बढ़ावा दे रहा था। भारतवर्ष में आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न वर्ग–संघर्ष में मार्क्सवादी विचारधारा को विशेष बढ़ावा मिला। इसका मुख्य कारण स्वतन्त्रता आंदोलन के लिए विशेषकर राजनीतिक अन्यायों का विरोध करने के लिए अपनाए गए सत्याग्रह और हड़तालों द्वारा जागृत मजदूरों एवं कृषक वर्ग की चैतन्यता थी। उस काल की विचारधारा पर इन सबका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। शनैः शनैः भारत स्वतन्त्र होकर गणतंत्र बन गया।

पंचम काल– गणतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमारे देश में राजनीतिक परिवेश का पंचम काल आ जाता है। राजनीतिक विद्रोही भावना समाप्त हो गई। राष्ट्रीय एकता का अंतर्राष्ट्रीयता में विकास हो गया। स्वतन्त्रता प्राप्तिने भारतीयों के दृष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की और उन्होंने विश्व के अन्य दासता में जकड़े हुए लोगों के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया। आंतरिक संघर्ष से अवकाश प्राप्त कर भारतीय राजनीतिज्ञों ने विश्व के अन्यराष्ट्रों से संपर्क बढ़ाया तथा सह अस्तित्व के सिद्धांत को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। इसलिए भारत का स्थानविश्व के अन्य राष्ट्रों में विशिष्टता में आ गया। विश्व शांति एवं पंचशील नीति के लिए प्रशंसा का पात्र बन गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक काल के राजनीतिक परिवेश में कितना परिवर्तन आया है।

(2) सामाजिक

देश सामाजिक क्षेत्र में लगभग पुनर्नवा रूप धारण करने हेतु प्रयत्नशील था। समाज में व्याप्त पाखंड, आडंबर एवं अंधविश्वासों को सुधारवादी नेता समाप्त करने के प्रति सजग हो गए थे। पुरातनवादी इसका विरोध कर रहे थे।ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसी संस्थाओं का बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात आदि में विरोध किया गया। किंतु पुनर्जागरण की चेतना तीव्रता के सम्मुख छोटे छोटे विरोध धराशायी होते गए। देश ने सामाजिक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। हरिजनोद्धार, स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह आदि अनेक सामाजिक सुधार हुए। स्त्री शोषण, दहेज प्रथाका विरोध हुआ। जाति–प्रथा की कट्टरता में ढिलाई, अंतर्जातीय–विवाह आदि अनेक सामाजिक सुधार किए गए।शिक्षा का व्यापक प्रसार किया। निरक्षरता का साक्षरता में परिवर्तन हुआ। पश्चिमी सभ्यता, उच्च शिक्षा एवं भौतिकतावादी दृष्टिकोण ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं।

भारत में अंग्रेजी शासन एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो चेतना आई उसका मुख्य कारण भारतीय स्वतन्त्रता एवं आंग्ल–भारतीय संपर्क है। सामाजिक क्षेत्र की परंपराओं एवं रूढ़ियों पर आंग्ल संपर्क ने आघात किया और भारतीय दृष्टिकोण में व्यापकता आई। अंग्रेजी–शिक्षा का प्रभाव भारतीय दृष्टिकोण में परिवर्तन करने में सहायक हुआ है। नैतिकता का ह्रास हुआ है। मध्यकालीन हिंदू धर्म की कट्टरता शनैः शनैः दूर होने लगी है। वैसे ही मुगलों के पतन के साथ ही हिंदू धर्म की स्थिति दृढ़ एवं सुरक्षित हो रही थी। ऐसे समय में आर्य समाज की स्थापना करने वाले स्वामी दयानंद सरस्वती का आगमन हुआ उन्होंने हिन्दू धर्म कीअनुदारता एवं कट्टरपन को दूर करने के लिए बहुत बड़ी क्रांति उपस्थित की। आर्य समाज के आंदोलन ने हिंदूसमाज को जागृत किया। अन्यथा हिंदू समाज बहुत पिछड़ जाता और निश्चय ही दुर्बल हो जाता। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण विदेशी सरकार की कृपा प्राप्त करने हेतु ईसाई धर्म को मानने से आर्य समाज ने भारतीयोंको बचाया। आर्य समाज ईसाई धर्म आंदोलन के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृतिका प्रभाव पश्चिमी बंगाल से होता हुआ संपूर्ण देश के जीवन को आच्छादित कर रहा था। अंग्रेजी शिक्षा इस विकास में विशेष सहयोगी सिद्ध हो रही थी। प्राचीन वैदिक प्रेरणा लेकर स्वामी दयानंद ने सामाजिक क्षेत्र में अपूर्व क्रांति की। सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार करने के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन का मूल्य बदल गया। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम उत्थान अर्थात् भारतेन्तु युग या पुनर्जागरण काल में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप व्यक्त हुआ। एक ओर विधवा विवाह के पक्षपाती थे तो दूसरी ओर इसे 'अनहोनी' कहने वाले भी वर्तमान थे। इसी प्रकार एक ओर जाति–पांति के विरोधी थे दूसरी ओर इसे 'जगत विदित फुलवारी' को निर्मूल करने की प्रबल धारणा वाले पक्षपाती। इन दोनों धाराओं के मध्य एक धारा उन विचार कों की थी जो प्रत्येक कल्याणकारी सामाजिक आंदोलन की प्रशंसा करने से नहीं चूकते थे।

तत्कालीन सामाजिक दोषों जैसे धार्मिक विवाद, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, जाति–पांति, अंधविश्वास, समुद्र यात्रा निषेध, स्त्री शिक्षा–निषेध, जाति बहिष्कार आदि के प्रति इनकी आंखे खुली रहती थी और वे इन समस्याओं कासमाधान प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहते थे। आर्य समाज के पक्षपाती विचारकों ने कुछ अति भी की और सभी प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों को 'पोप लीला' के अंतर्गत स्वीकारते हुए उनकी कटु आलोचना की जिसके शब्दाडंबर में उनकी सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अति धूमिल हो गया। किंतु जब ये विचारक निष्फल वाद–विवाद को त्यागकर समाज–सुधार एवं देशोद्धार की सक्रिय योजना प्रस्तुत करते हैं तब इनके सदुद्देश्य की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। भारतेंदु युग में सामाजिक क्षेत्र में अत्यधिक परिवर्तन उपस्थित हुआ। जिससे सामाजिक परिस्थिति में अत्यधिक अशांति आई।सन् 1900–1918 तक हिंदी साहित्य आधुनिक काल के द्वितीय उत्थान अर्थात् द्विवेदी युग या जागरण–सुधार–कालमें सामाजिक क्षेत्र की अशांति दूर हो गई और नवीन व्यापक दृष्टिकोण जीवन के नवीन–मूल्य के रूप में स्थापित हो गया। यही कारण है कि इस युग में पूर्व युग के वाद–विवाद, आलोचना–प्रत्यालोचना का प्रायः अभाव है। इसयुग के विचारकों ने समाज सुधार की आवश्यकता को बहुत महत्व दिया और बड़े शांतचित्त से

सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के सुझाव प्रस्तुत किए। स्त्री–शिक्षा सामान्य हो गई। बालविधवाओं के प्रति व्यापक सहानुभूति दृष्टिगोचर होती है। बालविधवाओं के शाप में सामाजिक अद्यःपतन का कारण खोजना इस सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण का परिचायक है। अछूतोद्धार के प्रति सद्व्यवहार हृदय की विशालता, दहेज की कुप्रथा को दूर करनेका प्रयत्न इस युग के समाज सुधारकों में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का विरोध इस युग में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके साथ ही इस युग में नवीन प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। यहप्रवृत्ति मानवतावाद की है। पूंजीवाद की बढ़ोत्तरी से उत्पन्न वर्ग–संघर्ष तथा स्त्री–दुर्दशा, दहेज–प्रथा से उत्पन्न क्षोभ की परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप लोगों को जनवादी विचारों का महत्व ज्ञात हुआ। वास्तव में सामन्तशाही के विनाश एवं देशी राजाओं के पतन के कारण सामाजिक व्यवस्था बदल गई थी। इसके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी मध्यवर्ग का सहयोग अति महत्वपूर्ण प्रतीत होता रहा था। इस कारण इस युग के विचारकों में मानवता के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। देश के महान विचारकों ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना और नारी स्थिति के प्रति करुणा व्यक्त की, उसके 'आंचल में दूध और आंखों में पानी' वाली स्थिति का चित्रण करके सहानुभूति एवं उच्च भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान अर्थात् छायावाद काल सन् 1918–1938 ई. तक सामाजिक क्षेत्र में और अधिक विकास हुआ और मानवतावादी दृष्टिकोण का महत्व बढ़ा। वस्तुतः राजनीति में मानवतावादको आधार बनाया गया इसलिए इसकी मान्यता अधिक बढ़ गई। राजनीतिक स्वतन्त्रता – आंदोलन सामान्य जनसमुदाय को साथ लेकर चला। इस समय तक अंग्रेजी–शिक्षा का प्रचार–प्रसार बहुत विस्तृत एवं व्यापक हो चुका था। इसलिए महान विचारक व्यापक दृष्टिकोण से सामाजिक अवस्था पर चिंतन मनन करने लगे थे। गांधी जी की संपूर्ण क्रियात्मक योजनाएं सामाजिक उत्थान के लिए अत्यधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई। गांधी जी की मानवतावादी भावना ने निम्न स्तर के लोगों की सामाजिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन किया। उनकी मानवतावादी भावना के कई रूप मिलते हैं। शनैः शनैः पश्चिमी संस्कृति के विरोध में और भारतीय संस्कृति के प्रतीक स्वरूप खादी भी उच्च सामाजिक भावनाओं का प्रतीक बन गई। आर्य समाज के आधार पर वैदिक युग का पुनरुत्थान भी इस युग में दृष्टिगोचर होता है। वैदिक उत्थान काल में इसीलिए आध्यात्मिक भावना का भी विकास हुआ और मानवता की सेवा और उसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना पर जोर दिया गया। इसीलिए औद्योगिकता का विरोध किया। यंत्र में वे मानव शोषण की झलक पाते हैं, किसानों की दीनता का उनके जीवन पर अति व्यापक प्रभाव पड़ा था तथा इस महान शाप का निराकरण करने हेतु वे कृषक–वर्ग की जागृति के महान समर्थक थे। जाति–पांति तथा अछूतों के प्रति अत्याचार से उनका हृदय चूर–चूर हो रहा था तथा इन सब में अछूतों को भगवान के मंदिरों से दूर करने की प्रवृत्ति उन्हें घोर नास्तिकता एवं मूढ़ता की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती हुई दिखाई दे रही थी। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिकता के महत्व का प्रतिपादन किया है।

इस युग के दूसरे महान विचारक, समाज सुधारक एवं मानवतावाद के समर्थक विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर हुए। इनकी कविता में मानवतावाद अति व्यापक रूप में व्यक्त हुआ है जिसने उन्हें विश्व कवि का स्थान दिलाया। उनकी मानवतावाद के प्रमुख रूप विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता, अंतर्राष्ट्रीयता, मानव दुख निवारण तथा जाति–पांति का भेद मिटाने की तत्परता आदि हैं। ब्रह्म समाज को स्थिरता प्रदान करने में उन्होंने अत्यधिक सहयोग दिया। उनपर पश्चिम के मानवतावाद के आदर्श का व्यापक प्रभाव था और उन्होंने मानव को समग्र मानव समाज के रूप में देखा। ब्रह्म समाज के द्वारा उन्होंने बंगाल के रूढ़िग्रस्त सामाजिक संगठन में स्वच्छता का संचार किया और सामाजिक व्यवस्था को नवयुग की चेतना से उचित रूप से आत्मसात करने योग्य बनाया। रवींद्रनाथ टैगोर पर विवेकानंद का गहरा प्रभाव था। उनकी मानवता की उपासना में विवेकानंद के दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने दुख को मानवता की एकसूत्रता के मूलमंत्र के रूप में स्वीकारते हुए उसे साधनात्मक रूप दिया है। उनके हृदय की करुण भावनाएं सामाजिक जागृति को दृष्टिगत रखते हुए व्यक्त हुई हैं। मानवता का विकास इन

सबका एकमात्र लक्ष्य है, आधार विश्व शांति है जिसे अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकसित होने पर ही प्राप्त किया जा सकता है।

योगिराज अरविंद इस युग की विचारधारा को प्रभावित करने वाले तीसरे महान व्यक्ति हैं। श्री अरविंद मानव जातिके विकास के लिए ही योग साधना या विचार साधना करने में तत्पर थे। उनका जीवन मानव सेवा में समर्पितथा। उनके मानवतावाद में अध्यात्मवाद की उच्च अनुभूति का सम्मिश्रण था और उनका साधनात्मक जीवन और इच्छा शक्ति की दृढ़ता मानव को पूर्ण मानव बनाने में संलग्न थी।

इस युग में सामाजिक व्यवस्था हेतु अति ठोस परिवर्तन हो रहे थे तथा उनका प्रभाव समाज के साथ–साथ साहित्यपर भी पड़ रहा था। उपर्युक्त सामाजिक अवस्था में और भारतेंदु युग या द्विवेदी की सामाजिक अवस्था में पर्याप्त अंतर है। भारतेंदु युग में नवयुग की चेतना का विकास हुआ और सामाजिक अवस्था में परिवर्तन की पुकार से अत्यधिक अशांति का वातावरण उपस्थित हो गया, द्विवेदी युग में यह अशांति शांति में बदल गई। समाज सुधारक सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का खंडन करने के साथ–साथ सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने हेतु ठोस विचार एवं सुझाव प्रस्तुत करने लगे। शनैः शनैः मानवतावादी भावनाओं का विकास हो रहा था। किंतु हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान अर्थात् छायावाद में सामाजिक अवस्था का मुख्यरूप मानवतावादी भावनाओं में केन्द्रित हो गया था और सामाजिक कुरीतियों के निवारण हेतु कुछ ठोस रूप दृष्टिगोचर हुए जैसे सन् 1929 में "शारदा ऐक्ट" द्वारा बाल–विवाह का निषेध हुआ, सन् 1935 में "गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट" द्वारा अछूतों को मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त विधवा–विवाह आदि के संबंध में भी कानून पारित किएगए। नर–नारी की समानता, एक विवाह, विधवा–विवाह आदि की भावना का विकास पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव है। जनसंख्या निरोध के लिए 'हम दो हमारे दो' से 'हम दो हमारे एक' 'लड़का–लड़की एक समान' गर्भपात अवैध एवं लिंग पता लगाना दंडनीय अपराध घोषित हुए।

बेकारी की समस्या दिन प्रतिदिन गहन होती गई। आंतरिक परिस्थितियों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से समाज पर पड़ने लगा था। द्वितीय महायुद्ध की भयंकरता ने जीवन को अति कटुबना दिया। गहरी निराशा की भावना ने सामाजिक जनजीवन को आच्छादित कर लिया। सन् 1938–1946 तकका काल भयानक हलचल का समय था।

सन् 1946 से आज तक का समय स्वतंत्रयोत्तर काल है। इसमें सामाजिक सुधार हुआ। इस काल की सामाजिक अवस्था के विषय में संक्षेप में कह सकते हैं कि जाति–पांति के भेदभाव की भावना का कानून द्वारा निवारण किया गया। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार किया गया। भारतीय शासन में उन्हें स्थान दिया गया। पंचायत चुनावों में आरक्षण प्राप्त हुआ। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर कृषक वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाई गई। श्रमिक की अवस्था में सुधार तथा उनके जीवन की सुरक्षा को महत्व प्रदान किया गया। उद्योग में भागीदारी तथा सामूहिक बीमा की सुविधा प्रदान की गई।

अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को प्रमुखता तथा विश्वबंधुत्व की स्थापना, विश्व शांति का प्रयास हुआ। नागरिक अधिकारों में सुधार किया। दोहरी नागरिकता की सुविधा मिली। समाजवादी शासन की स्थापना का प्रयत्न किया। पंच–वर्षीय योजनाओं के द्वारा देश निर्माण आदि की सामाजिक अवस्थाएं अस्तित्व में आईं।

(3) आर्थिक – उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में देश की जनता में अंग्रेजी राज्य के प्रति राजभक्ति दिखाने और उनसे सुधार की प्रार्थना करने की प्रवृत्ति थी। पर अंग्रेजी शासन में इससे कोई अंतर नहीं आया और उनकी अत्याचारपूर्ण नीति, में यंत्रों के विकास के साथ ही आर्थिक शोषण और टैक्सों का एक नया अध्याय और जोड़ दिया गया। सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक परिस्थिति का प्रभाव अधिक मुखरित हुआ। वर्ग संघर्ष की बढ़ती भावना ने मार्क्सवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। देश के आर्थिक शोषण से अनेक कठिनाईयां उपस्थित हुईं।

प्रथम उत्थान– राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश के मूल में देश–जनता की आर्थिक अवस्था विद्यमान रहती है।सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के बाद शासन में परिवर्तन हुआ तथा यह आशा जगी कि देश की आर्थिक अवस्था सुधरेगी। प्रारंभ में अंग्रेजी सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास में रूचि नहीं दिखलाई जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संपदा विदेश जाने लगी। प्रथम उत्थान के चिंतकों के लिए यह चिंता का विषय बन गया। अंग्रेजी माल की खपत हेतु सरकार ने कुछ कर भी निश्चित किए। भारतीय कपड़े पर कर का बोझ लादकर अपनीहित साधना में लग गए। शनैः शनैः भारत के बाजारों में विदेशी वस्तुएं भारी मात्रा में दृष्टिगोचर होने लगीं। विदेशीवस्तुओं का प्रचार–प्रसार बढ़ने लगा जिसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग धंधों की स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती चली गई। राष्ट्रीय चिंतक विदेशी वस्तुओं को ही अपनी आर्थिक अवनति का कारण समझ कर विदेशी वस्तुओं का विरोध करने लगे। परिणाम यह हुआ कि महंगाई, अकाल, टैक्स, एवं दरिद्रता आदि प्रथम युग की मुख्य आर्थिक समस्याएं बन गईं। राजनीतिक चेतना को जन्म देने वाली 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' ने भी अपने आदर्शों में आर्थिक स्वतन्त्रता की मांग को समाविष्ट किया।

द्वितीय उत्थान– द्वितीय उत्थान में आते–आते आर्थिक स्वतन्त्रता एवं आर्थिक राष्ट्रीयता का आदर्श राजनीति में महत्वपूर्ण आधार स्वरूप सम्मिलित किया गया। आर्थिक भावना ने कांग्रेस आंदोलन को अधिकाधिक प्रेरित किया। कृषकों की आर्थिक विपन्नता तथा जमींदारों के अत्याचारों ने आंदोलन के आर्थिक पक्ष को और भी अधिक दृढ़ता प्रदान की। भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है। इसलिए कृषकों पर माल–गुजारी का भार डालकर और जमींदारों के अत्याचारों को बढ़ावा देकर अंग्रेज सरकार ने उनको अत्यधिक दरिद्रता के गर्त में धकेल दिया। कृषकों के गृह उद्योग धंधों का विनाश कर दिया। प्रथम महायुद्ध तक भारतीय यह आशा लगाए बैठे थे कि अंग्रेज भारतीय उद्योग धंधों को नवीन रूप प्रदान करेंगे किंतु ऐसा नहीं हुआ। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। यह निश्चय हो गया कि सरकार भारत का औद्योगिक विकास नहीं करना चाहती है क्योंकि उसे कच्चा माल एवं तैयार माल के लिए भारत जैसा बाजार चाहिए। ऐसा निश्चय करते ही कांग्रेसी उग्रपंथियों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का मार्ग अपनाया। भारतीय पूंजीपतियों का इसमें अपूर्व सहयोग मिला।

तृतीय उत्थान–द्वितीय महायुद्ध के बाद अंग्रेजी अर्थ–नीति में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। इसका कारण यहथा कि अंग्रेज इस तथ्य से पूर्ण अवगत हो गए थे कि भारत के प्राकृतिक साधनों का विकास करने में उनके साम्राज्यवादी हितों को बढ़ावा मिलता है। युद्ध काल में ही वे ऐसा अनुभव करने लगे थे। युद्ध काल एवं उसके बाद से ही भारत की औद्योगिक उन्नति की ओर सरकार का विशेष ध्यान गया। परिणाम यह हुआ कि शोषण की प्रक्रिया में भी तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हुई। सरकार ने मात्र उन्हीं उद्योग–धंधों पर ध्यान दिया जिसमें उनकी पूंजी लगी थी। शनैः शनैः भारत में पूंजीवाद की जड़ें गहरी होती गई और भारतीय उद्योग धंधे चल पड़े। अंग्रेजों की व्यापार नीति से प्रभावित भारतीय पूंजीपतियों ने भी स्वतन्त्रता आंदोलन की अग्नि में घी डालना प्रारंभ कर दिया। यांत्रिक विकास प्रक्रिया ने बेकारी को जन्म दिया जो विकराल समस्या का रूप धारण कर उपस्थित हुई। वर्गसंघर्ष बढ़ने लगा क्योंकि मध्य वर्ग एवं मजदूरों में राजनीतिक चेतना का उदय हो चुका था। चतुर्थ उत्थान तकआते आते इस वर्ग–संघर्ष ने अपना प्रबल रूप प्रदर्शित कर दिया। परिणामस्वरूप बेरोजगारी, महंगाई, देशव्यापी दरिद्रता की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। कुछ लोगों के पास पूंजी का अंबार लगने लगा। आर्थिक ढांचा चरमरा गया। पूंजीवाद ने मानव समाज में शुद्ध आर्थिक संबंधों की स्थापना की जिससे श्रमिक वर्ग की चेतनाका आधार भी शुद्ध आर्थिक अर्थात् स्वार्थमय हो गया वे अपने संगठन को दृढ़ता प्रदान करने हेतु एक जुट हो गए। शनैः शनैः युग विचारकों एवं चिंतकों का ध्यान यथार्थ की कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग की करुण–दशा ने पूर्ण रूपेण अपने पर केन्द्रित कर लिया। वर्ग–संघर्ष से व्यापक जागृति आई। दलित वर्ग विद्रोही बन गया। आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावना का स्थान समाप्त हो गया। यथार्थ ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया।

गणतंत्र भारत में आर्थिक परिस्थिति में पूर्ण परिवर्तन आया। श्रमिकों, कृषकों एवं दलितों की आर्थिक स्थिति

में सुधार आया। सभी को रोटी, कपड़ा एवं मकान की सुविधा प्रदान की जाने लगी। पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारादेश की आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रशंसनीय प्रयत्न किए गए जो वर्तमान काल में भी चल रहे हैं। इनके परिणामस्वरूप शिक्षा, यातायात के साधनों, परिवहन की सुविधा, पेय चल, प्रकाश, कृषि, स्वास्थ्य सेवा, परिवार नियोजन आदि सभी क्षेत्रों को उन्नतिशील बनाया गया। साथ ही कल–कारखानों तथा गृह उद्योग–धंधों का विकास कर के आर्थिक प्रगति के पथ पर भारतीय जन जीवन तन–मन–धन से तत्पर है। कानून द्वारा दलित और शोषित वर्ग–कृषक एवं श्रमिक की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन किया गया है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना से पूंजीवादी व्यवस्था में न्यूनता आई है। पंचवर्षीय आयोजनों द्वारा देश के प्राकृतिक संसाधनों का अधिक से अधिक दोहन एवं उपयोग कर देश की आर्थिक स्थिति सुधार ने हेतु निरंतर प्रयत्न चल रहे हैं। पर्वतीय नदियों पर बांध बांधकर जलाशय तैयार कर विद्युत उत्पादन के अनेक कार्य सम्पन्न हो गए हैं तथा अनेक महत्वपूर्ण कार्यचल रहे हैं। सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण किया जा रहा है। पेय जल के लिए तालाबों का निर्माण कर वर्षा जल को एकत्रित किया जा रहा है, नल कूप की व्यवस्था गांव–गांव तक पहुंच गई है। गांव–गांव तक पक्की सड़कों का निर्माण हो चुका है।

सांस्कृतिक – धार्मिक

भारतीयों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा और वर्तमान परिस्थितियों के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो रहाथा। भारत के इतिहास में वास्तव में यह वह परिवर्तन काल है जहां से मध्यकालीन बोध का प्रभाव घटने लगा और उसके स्थान पर आधुनिक चिंतन एवं वैचारिक प्रधानता आई। इस परिवर्तन में पारलौकिक दृष्टिकोण के स्थानपर आधुनिक इहलौकिक दृष्टिकोण को महत्व प्रदान किया जिसके परिणामस्वरूप ईश्वर ने अपना परलोक त्याग कर इहलोक में सामान्य मानव का विकास किया। इसी दृष्टिकोण से स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है –

मैं नहीं संदेश स्वर्ग का लाया,

भूतल को स्वर्ग बनाने आया।

– साकेत

मध्ययुगीन ईश्वर चिंतन आधुनिक काल में आकर मनुष्य चिंतन का रूप धारण कर लेता है। व्यक्तिगत उन्नति का स्थान सामाजिक उन्नति ने ले लिया। मानव चेतना व्यष्टि तक सीमित न रहकर समष्टि चिंता का रूप धारण करगई जिससे राष्ट्रीयता को लांघकर विश्व बंधुत्व एवं विश्व संस्कृति की ओर अग्रसर होकर वैश्वीकरण की भावना से ओत–प्रोत हो गई। आधुनिक साहित्य का यही मुख्य दृष्टिकोण है जो किसी न किसी रूप में साहित्य में पल्लवित, पुष्पित होकर व्याप्त है।

इंग्लैंड से ईसाई मत के वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर प्रचार–प्रसार का आंदोलन चल पड़ा। इसका अभिप्राय यह नहीं था कि इससे पूर्व ईसाई मिशनरियां इस कार्य में कभी संलग्न नहीं हुई थीं वे निरंतर अपने कार्य में लगी हुई थीं किंतु ईसाई धर्मानुयायिओं ने उक्त आंदोलन को तीव्रता प्रदान की जिससे प्रचार की प्रक्रिया में तेजी आ गई। ईसाई मिशनरियों का यह आंदोलन इंग्लैंड से प्रेरित होकर भारत पहुंचा। वे अति उत्साह के साथ अपनेआंदोलन काल में लग गए जिसकी प्रतिक्रिया भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक क्षेत्र पर हुई। भारतीयों में यह धारणा प्रबल हो गई कि अंग्रेज पश्चिमी–शिक्षा पद्धति के नाम पर हमारी संस्कृति का विनाश करने पर तुले हुए हैं। क्योंकि उनका मानना था कि साहित्य और संस्कृति को विनष्ट कर देने से राष्ट्र स्वयं नष्ट हो जाता है। यही उनका परमउद्देश्य था।

दो संस्कृतियों का अंतरावलंबन परिवर्तन हेतु उतना प्रभावकारी नहीं होता है जितना सामाजिक ढांचे को बदलनेवाला बुनियादी ढांचा। ढांचे में परिवर्तन का कारण आर्थिक एवं सांस्कृतिक होता है।

मुगलों की पराजय के साथ–साथ हिंदू जाति के कट्टरपंथी समुदाय का ह्रास होने लगा। नवयुग की चेतना

का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य धार्मिक दृष्टिकोण एवं संस्कृति में परिवर्तन है। इस युग में मध्यकालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाका अति परिमार्जित एवं सुसंस्कृत रूप मिलता है। अन्य धर्मों की सहिष्णुता इस युग की धार्मिक परिस्थितियों की प्रमुख विशेषता है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता धर्मनिरपेक्षता है। भारतीयों की उपासना पद्धति में बदलाव आ गया।

द्वितीय उत्थान– द्वितीय उत्थान में धार्मिक भावना का प्रमुख आधार मानवतावादी विचारधारा बनी। मानवतावादी विचारधारा का शनैः शनैः विकास हुआ। तथा तृतीय उत्थान में गांधी, रवीन्द्र एवं अरविंद द्वारा मानवतावाद ही विश्वधर्म के रूप में स्थापित हुआ। यह मानवतावाद विश्व–मानवतावाद था। इसीलिए गांधी जी में धार्मिक समन्वय कारूप दृष्टिगोचर होता है। गांधी जी ने वैष्णव जन की सबसे बड़ी विशेषता "पीर पराई जानना" बतलाया है। उनके अनुसार वही वैष्णव जन है, वही भगवान का भक्त है, "जो पीर पराई जाने ना"। भगवान एक है। उसके गुणों और कर्मों के अनुसार अनेक नाम हैं। विभिन्न नाम विभिन्न धर्मों के आधार हैं।

शनैः आर्थिक प्रगति और औद्योगिक विकास के कारण मानवतावादी विचारों में निम्न एवं शोषित वर्ग को महत्व दिया जाने लगा। 'कर्म को पूजा' कहा गया। गांधी जी ने हरिजनों को हरिजन स्वीकारा जिन्हें आधुनिक काल से पूर्व अछूत माना जाता था।शिक्षा में पिछड़ेपन के कारण उत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास में गत्यावरोध आया जिसके निराकरण में पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। ईसाई मिशनरियां अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से लोगों को ईसाई बनाकर पुण्य लूटने के चक्र में पड़ी थीं। उच्च शिक्षा के प्रभाव से एक प्रकार का धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण बना जो मध्यकालीन धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण तार्किक एवं इहलौकिक हो सका। आश्रम धर्मी घेरे से बाहर निकल कर व्यक्ति के अपने निर्णय को प्रमुखता मिली। मध्यकालीन धार्मिक कथाओं को विश्वसनीय बनाने और उन्हें आधुनिक युग की समस्याओं से जोड़ने के मूल में भी यही प्रवृत्ति क्रियाशील दृष्टिगोचर होती है। पुराने संकीर्ण विचार भंग हुए।

तृतीय उत्थान– सन् 1550 में पुर्तगालियों ने मुद्रण यत्रं मंगवाकर उनकी स्थापना करके धार्मिक पुस्तकें छापनी प्रारभं की। राजा राममोहन राय ने सन् 1821 में 'संवाद कौमुदी' नामक साप्ताहिक बंगला पत्र निकाला जिसमें सती–प्रथाके विरुद्ध निरंतर लिखना प्रारंभ किया जिससे परंपरावादी हिंदू समाज उनके विरुद्ध हो गया और उस पत्र कोभी क्षति पहुंचायी।

अंग्रेजी सरकार ने भारत की अर्थ नीति, शिक्षा पद्धति, यातायात एवं परिवहन के साधनों में मूल रूप से परिवर्तन किए जिसके परिणामस्वरूप समाज का आधुनिकीकरण प्रारंभ हो गया। जो पुराने धार्मिक संस्कारों, रीति–नीतियों एवं संघटनों से मेल नहीं खाता था। नवीन यथार्थ एवं पुराने संस्कारों के मध्य सांमजस्य स्थापित करने की आवश्यकता अनुभूति की जाने लगी। इस सांमजस्य के साथ ही नव्य भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। व्यक्ति स्वातंत्रय का भारतीय पुनर्जागरण में विशेष महत्व है।

आधुनिक काल में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज एवं आर्य समाज ने पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप परिवर्तित करने का अथक प्रयास किया है। ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज ने नवीन परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से स्वीकारा है किन्तु आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाए रखना चाहता था। उस समय की राजनीतिक, सामाजिकऔर सांस्कृतिक विचारधारा पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव पड़ा। मध्य काल में नए परिवेश के परिणामस्वरूप जाति–प्रथा, छुआछूत, बाह्याडंबर आदि के विरोध में भक्ति आंदोलन खड़ा हो गया था किंतु नवीन युग में नवीनढंग के सांमजस्य की आवश्यकता हुई। मध्यकाल का सांमजस्य भावनामूलक था, उस काल के अधिकांश भक्त एवंसंत अंतर्विरोधों के शिकार थे किंतु अब भावना से काम नहीं चल सकता था। भावना का स्थान तर्क, विवेक एवं बुद्धि ने ले लिया। 'ब्रह्म समाज', 'प्रार्थना समाज', 'रामकृष्ण मिशन', 'आर्य समाज' एवं 'थियोसॉफ़िकल सोसायटी' की मान्यताएं अधिकांशतः बुद्धि विवेक एवं तर्क पर आधारित हैं।

ब्रह्मसमाज– आधुनिक भारत की नींव का प्रथम पत्थर रखने का श्रेय राजा राममोहन राय को है। सन् 1828 में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। वाराणसी जाकर कुछ वर्षों तक उन्होंने गीता, उपनिषद् आदि का गहन अध्ययन किया। इस्लामी एकेश्वरवाद का उन पर स्पष्ट प्रभाव है। ईसाई धर्म से भी वे प्रभावित थे। 'तैत्तेरेय' एवं 'कौशीतकी' उपनिषद् दर्शन में उन्हें समस्त विचारधाराएं मिल गईं। उपनिषद् के द्वारा कर्मकांड एवं अंधविश्वासका खंडन किया। मूर्ति पूजा को धर्म का बाह्याडंबर स्वीकारा। रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ने में तर्क को आधार बनाया।

जाति–प्रथा को अमानवीय एवं राष्ट्रीयता विरोधी कहा। सती–प्रथा का विरोध किया। विधवा–विवाह तथा स्त्री–पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया। ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाने में देवेन्द्र नाथ टैगोर (1817–1905) तथा केशव चन्द्र सेन (1838 –1884) का अपूर्व योगदान रहा है।

देवेन्द्र नाथ टैगोर – इन्होंने ब्रह्म धर्म के प्रसार हेतु सुदूर यात्राएं कीं। मद्रास में 'वेद समाज', मुंबई में 'प्रार्थनासमाज' की स्थापना उन्हीं की प्रेरणा से हुई। वैष्णवों के भजन कीर्तन ने भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। ईसाई धर्म की ओर उनका झुकाव था। ब्रह्म समाज में फूट पड़ने के कारण 'साधारण ब्रह्म समाज' और 'नव वेदांत' नामक नवीन संस्थाओं की स्थापना की।

केशव चन्द्र सेन–1864 में मुंबई और पूना में केशवचंद्र सेन का आगमन हुआ। सन् 1896 में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उनके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद रानाडे थे। सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध निरंतर संघर्षरत रहे। धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। भागवत धर्म के अनुयायी थे। संकीर्णता को कभी प्रश्रय नहीं दिया। प्रतिक्रिया एवं पूर्वाग्रह से मुक्त थे। अतीत के प्रति आदर होते हुए भी अतीत को पुनः उसी रूप में प्रतिष्ठित नहीं करना चाहते थे। पुनरुत्थान वादियों के वे विरोधी थे। क्योंकि उनकायह मानना था कि मृत अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता हैं। वे समाज को जीवित अवयवों का संघटन मानते हैं जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इस प्रक्रिया के रुक जाने पर समाज मृत हो जाएगा।

रानाडे– मनुष्य की समानता पर रानाडे ने बार–बार बल दिया है। जाति–पांति के विरोधी तथा अंतर्जातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री–शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। उनका वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण, तर्क–पद्धति, सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरूचि आदि ये स्पष्ट कर देते हैं कि उन पर पाश्चात्य विचारधारा का पूर्ण प्रभाव था। पाश्चात्य मतको भी अपने तर्क पर कस करके स्वीकारा है। वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुरूप ढालने हेतु प्रयत्नशील रहे हैं।

रामकृष्ण मिशन– राम कृष्ण परमहंस के स्वर्गवासी हो जाने पर विवेकानंद ने उन्हीं के नाम से 'रामकृष्ण मिशन'की स्थापना की। परमहंस अपने संपूर्ण व्यक्तित्व से परमहंस थे। रामकृष्ण गरीब, अनपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्ति पूजक, मित्रहीन हिंदू भक्त थे जिन्होंने बंगाल को अपने व्यक्तित्व से पूर्णरूपेण प्रभावित किया। उनकी छाप पश्चिमी बंगाल पर अब भी वर्तमान है। उनके योग्य शिष्य विवेकानंद ने उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है। जबकि विवेकानन्द बाहर से ज्ञानी और भीतर से भक्त अपने गुरुवर के बिल्कुल विपरीत थे। सन् 1893 में विवेकानंद विश्व धर्म संसद में सम्मिलित होने हेतु शिकागो गए। इतना सुंदर प्रवचन दिया कि समूची सभा मंत्र मुग्ध हो गई। उनके विषय में 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' ने लिखा था–"विश्व धर्म संसद में विवेकानंद सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता था कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।" उनका मुख्य उद्देश्य रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचारकरना था। सामाजिक कार्यों में विशेष रूचि थी। अपने गुरु के कष्टों को साक्षात देख चुके थे, इसलिए उनकी प्रबल इच्छा जनता की सेवा थी जिससे समाज का कोई भी व्यक्ति गरीबी या ग्राम में रहते हुए भी रुग्णता के कष्ट से दुखी न रहे। इसी दृष्टि से स्थान–स्थान पर चिकित्सालयों तथा सेवा आश्रमों की स्थापना हुई। मानवीय समताके विश्वासी स्वामी विवेकानंद ने जाति–पांति, संप्रदाय, छुआछूत आदि का प्रबल विरोध किया। गरीबों के प्रतिउनकी अत्यधिक सहानुभूति थी। शिक्षित वर्ग तथा उच्च वर्ग को हेय दृष्टि से

देखते थे उनकी भर्त्सना करते हुए उन्होंने लिखा है–"तब तक देश के हजारों लोग भूखे हैं अज्ञानी हैं – मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूंगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।... उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मर चुका है।" उन्होंने शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने वाले कृत्य को धर्म की संज्ञा दी है। इससे आत्मगौरव एवं राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहयोग मिलता है। हीनता की भावना से ग्रस्त देश को विवेकानंद ने यह आश्वासन दिया कि भारत की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है तथा इस देश का आध्यात्मिक चिंतन असमानांतर है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य–मनुष्य की क्षमता, एकता, बंधुत्व और स्वतन्त्रता की ओर भी उन्होंने भारतीयों का ध्यानाकर्षण किया। भारतीय पाश्चात्य भौतिकता से अभिभूत हो गया था उसे यह प्रथम बार अनुभव हुआ कि हमारी परंपरा में कुछ ऐसी वस्तुएं अभी भी अवशिष्ट हैं जिन्हें गौरवपूर्ण ढंग से विश्व के समक्ष रखा जासकता है। यह अनुभव कराने का एक मात्र श्रेय विवेकानंद को है।

आर्य समाज–

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में आर्य समाज पूरे भारतवर्ष में फैल चुका है। गुजरात, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आर्य समाज का विशेष प्रभाव है। इन प्रदेशवासियों का स्वभाव बंगालियों से भिन्न है। बंगाली दुबले–पतले होकरभी अपने पौरुष पर गर्व करते हैं तथा अक्खड़ होते हैं। उनमें भावुकता का अभाव होता हैं। बंगाल एवं महाराष्ट्र के पुनर्जागरण में मध्ययुगीन संतों की वाणी का विशेष योगदान रहा है। आर्य समाज में संतों का कोई स्थान नहीं है। सन् 1897 में दयानंद सरस्वती ने मुंबई में 'आर्य समाज' की स्थापना की। दयानंद का व्यक्तित्व असाधारण था। वे संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान, प्रवक्ता एवं अत्यंत मेधावी प्रतिभा संपन्न महान व्यक्ति थे। वे किसी से समझौता नहीं करते थे। दृढ़ संकल्पी थे। उनके विचार अति स्पष्ट होते थे उनमें कहीं रंचमात्र भी अस्पष्टता अथवा रहस्यवादिता नहीं थी। वे वेदों को आर्य समाज का आधार मानते थे। उनके अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। वैदिक धर्म ही सत्य एवं सार्वभौम है। अन्य धर्म अधूरे हैं। आर्य समाज की आचार–संहिता में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। आर्य समाज में जाति–पांति, छुआछूत, स्त्री–पुरुष असमानता आदि का कोई स्थान नहीं है। इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था कह सकते हैं। आध्यात्मिक उन्नति के साथ–साथ भौतिक उन्नति को भी स्वामीजी ने अनिवार्य माना है। इसी दृष्टिकोण से पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1886 में 'दयानंद' 'एंग्लोवैदिक कॉलेज' की स्थापना हुई तथा स्थान–स्थान पर 'दयानंद स्कूल' एवं 'कॉलेज' खोले गए। आर्य समाज हिंदूवादी दृष्टिकोण का पक्षपाती है जिसने राष्ट्रीय विचारधारा को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने में आश्चर्यजनक योगदान किया है। अंग्रेज सरकार ने आर्य समाजी संस्थाओं को बम बनाने का कारखाना मानकर उन्हें दबाने के अनेक बार अनेक स्थानों पर असफल प्रयत्न किए। उत्तर भारत के आचार–विचार, रहन–सहन, एवं साहित्य–संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आर्य समाज के आंदोलन ने गद्य की भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित किया है। अस्पृश्यता पर जितना प्रबल आघात इस आंदोलन ने किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया। मध्य वर्ग में आर्यसमाज ने क्रांतिकारी कार्य किया। इसकी कार्य पद्धति प्रगतिशील एवं प्रतिक्रियावादी है।

थियोसॉफ़िकल सोसायटी–

सन् 1875 में मदाम ब्लावस्तू और ओल्कार्ट ने न्यूयार्क में 'थियोसॉफ़िकल सोसायटी' की स्थापना की। यह आंदोलन भारतीय धार्मिक परंपरा पर आधारित था। सोसायटी के संस्थापक सन् 1879 में भारत आए। सन् 1882 में उन्होंने अडयार (चेन्नई) में इसकी शाखा खोली। श्रीमती एनी बेसेंट इंग्लैंड में इस शाखा से जुड़ी हुई थीं जो सन् 1893 में भारत आई तथा सोसायटी को विकसित करने हेतु अपना तन–मन–धन सब समर्पित कर दिया। उनका व्यक्तित्व अति गतिमान था। उनकी भाषण कला की अनुपम रोचकता एवं आकर्षण शक्ति ने अनेक शिक्षित भारतीयों को आकृष्ट कर लिया। समस्त भारत का भ्रमण करते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता के पक्ष में अनेक ओजस्वी

भाषण दिए। थियोसॉफ़िकल सोसायटी के आदर्शों को व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए उन्होंने अनेक शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना की। वाराणसी का 'सेन्ट्रल हिंदू कॉलेज' उसी की एक कड़ी है।

धर्मसभा–

उत्तर भारत, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदि में अनेक नए धार्मिक–सांस्कृतिक आंदोलन चले जिन्होंने समाज में अनेक सुधार किए किन्तु नवीन धार्मिक आन्दोलनों का विरोध पुनरुत्थानवादी प्रतिक्रियाएं करने लगीं। बंगाल में राजाराममोहन राय के ब्रह्म समाज का विरोध करने के लिए सन् 1830 में राधाकान्त देव ने 'धर्म सभा' की स्थापना की किन्तु धर्म सभा सन् 1857 तक किसी भी प्रकार ब्रह्म समाज का प्रभाव कम करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। सन् 1857 में स्वतंत्रता का प्रथम आंदोलन प्रारंभ हो गया। इस आंदोलन ने सुधारवादी दृष्टिकोण को कमजोर बनादिया जिसके परिणामस्वरूप पुरातनवादी प्रवृत्तियां पुनः सिर उठा कर खड़ी हो गईं। बंगाल में राष्ट्रीयतावादी एवं स्वच्छंदतावादी दो प्रवृत्तियां उभरकर सामने आईं। दोनों के मूल से वैयक्तिकता, अतीत की गौरवगाथा, अंग्रेजी सत्ता के प्रति आक्रोश, ग्रामीण बढ़ती हुई गरीबी के प्रति सहानुभूति, स्वतन्त्रता एवं समानता के प्रति आग्रह आदि की प्रवृत्तियां प्रमुख रूप से क्रियाशील थीं। पुरातत्ववेत्ताओं और पुरालेखविदों ने विस्मृति के गर्भ में खोई हुई विरासत– भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान–विज्ञान, दर्शन, वास्तु कला आदि का पुनरुद्धार करके विश्व में भारत का गौरव बढ़ाया तथा भारतीयों में आत्म सम्मान का भाव जागृत किया। नवीन हिंदूवाद जन्मा। दो दल उभर कर सामने जाए – प्रथम सुधार विरोधी थी। द्वितीय यथास्थान नवीन विचारों के सन्निवेश का पक्षपाती होते हुए भी मुख्यधारा में किसी प्रकार के परिवर्तन की आकांक्षा नहीं करता था। ऐसे विचारकों में बंकिम चन्द्र चटर्जी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है, जो गीता के निष्काम कर्म के पक्षधर थे। उन्होंने कृष्ण से संबंधित 'कृष्ण चरित्र' की रचनाकी। धर्म–सुधारकों की तरह वे आंशिक समाज सुधार में विश्वास नहीं रखते थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म और नैतिकता के समग्र पुनर्जागरण में ही समाज सुधार समाहित होता है। अपने उपन्यासों में देश–प्रेम को उच्च स्थान दिया है। देश–प्रेम एवं धर्म दोनों को एक ही मानते थे, दोनों में कोई अंतर नहीं स्वीकारा। महाराष्ट्र की स्थिति बंगाल से अलग थी क्योंकि बंगाल पर अधिकार करने के पूरे आठ वर्ष बाद महाराष्ट्र अंग्रेजी शासन में आया। पेशवा राज्य की समाप्ति की पीड़ा अभी भूला नहीं पाया था। अपनी परंपराओं के प्रति विशेष अनुराग था। महाराष्ट्र ने देशव्यापी गरीबी, भुखमरी आदि का पूर्ण भांडा अंग्रेजी राज्य के सिर पर फोड़ दिया। चिपलूणकर के निबंधों में देश के पराभव का एक मात्र उत्तरदायी विदेशी शासन को ठहराया गया है। तिलक ने रानाडे के सुधारों का विरोध किया है। उनका कहना है कि सुधार समाज को बांटने वाले तथा राजनीतिक शक्तिप्राप्त करने में बाधक हैं। जनता को एकत्रित करने के लिए गणेश की पूजा का श्रीगणेश किया जो वर्तमान में भी बड़े धूमधाम से 'गणेश वापा मौर्या' के नाम से मनायी जाती है। उत्तरी भारत में सनातन धर्मावलंबियों ने आर्य समाज के विरोध में अपना नारा लगाया। इन विरोधों के परिणामस्वरूप सामाजिक सुधार कार्य की गति धीमी पड़ गई किन्तु राष्ट्रीयता की भावना प्रबलतम रूप में उभरकर सामने आई।

इससे पूर्व धर्म एवं संस्कृति मुख्यतः आकांक्षाओं से संबद्ध थी किन्तु आधुनिक काल में वह इहलौकिक आकांक्षाओं का भी वाहक बनी। धर्म एवं संस्कृति विषयक डॉ. नगेन्द्र का कथन अक्षरशः सत्य है–"भारतीय धर्म एवं संस्कृति के संबंध में अंग्रेज प्रशासकों और ईसाई मिशनरियों के आक्रामक रुख के कारण धर्म–सुधारकों के लिए धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक हो गया। एक ओर उन्हें विदेशियों के समक्ष अपने धर्म और

संस्कृति की वकालत करनी पड़ी और दूसरी ओर देशवासियों के सामने धर्म का नया अर्थापन करना पड़ा। इस प्रकार हर बात को तर्क संगत बनाने की दिशा में जो पहल की गई वह बहुत फलदायक सिद्ध हुई। इस संक्रांतिकाल में धर्म का पल्ला पकड़ना बहुत आवश्यक था क्योंकि धर्म अनिवार्यतः समाज सुधार के साथ जुड़ा हुआ था। पुराणपंथी और सुधारक दोनों ने अपने मत के प्रचारार्थ धर्मशास्त्रों की शरण ली।" राजा राममोहन राय ही एक

मात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें शुद्धि–बुद्धि वादी स्वीकारा जा सकता है। सती–प्रथा कीसमाप्ति करने के लिए उन्हें भी धर्मशास्त्रों के साक्ष्य की आवश्यकता हुई। विद्यासागर ने यह प्रमाणित कर दिया कि धर्म शास्त्रों में वैधव्य का कहीं विधान नहीं है। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक सुधारों को वैध बनाने के लिए वेदों को आधार बनाया तथा अपने मत की पुष्टि हेतु वेदों को नवीन अर्थ भी प्रदान किया "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" जिसका उदाहरण है। तर्क संगति को महत्व मिला, रूढ़ियों का निराकरण आसान हो गया जिसके परिणामस्वरूप परंपरावादी और धर्म–सुधारक दोनों ही अतीत के गौरव को जागृत करने में सफल हुए। भारतीयों को आत्म सम्मान का बोध हुआ। बराबर के स्तर पर पाश्चात्य का सामना करने एवं स्वतन्त्रता की मांग करने का आत्मविश्वास मिला। राष्ट्रीयता में सभी सुधारों की समाविष्टि स्वीकारते हुए राष्ट्रीयता पर अधिक बल दिया जाने लगा। परंपरावादी एवं सुधारवादी दोनों ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में विश्वास व्यक्त किया तथा नवीन शिक्षा संस्थाए ंखोलीं। यद्यपि शिक्षा संस्थाएं तो पहले भी थीं किन्तु अब इनका रूप पूर्ण रूपेण बदल गया। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इसे अधिकांश लोग पश्चिमीकरण न कहकर आधुनिकीकरण की संज्ञा देना श्रेयस्कर समझने लगे। नवीन मानवतावाद का आविर्भाव हुआ। आधुनिक युग में मनुष्य–मनुष्य की समता, स्वतन्त्रता आदि का सामाजिक न्याय के आधार पर समर्थन किया गया। अधिकांश आंदोलनों में अंतर्विरोध दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए स्थान नहीं है किन्तु ऐसा कौन सा बंगाली है जो दुर्गा पूजा न करता हो? आर्य समाज में वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं कर्मणा मानी गई है किन्तु कौन सा आर्य समाजी है जो अपनी जाति में लड़का–लड़की मिलते हुए अन्य जाति वालों को लड़का–लड़की देने को तत्पर है? समाज में एक ओर संस्कृतीकरण की वृद्धि हो रही है तो दूसरी और लौकिकीकरण की।

साहित्यिक

साहित्य पर युग को बनाने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक–सांस्कृतिक आदि सभी परिवेशों काप्रभाव पड़ता है। इन परिवेशों के अलावा साहित्यिक पृष्ठ भूमि तथा अन्य साहित्यों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण होता है। आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य का श्रृंगार काल है। श्रृंगार काल में साहित्य का विकास राजदरबारों में हुआ। रीतिकालीन कवि आश्रय दाता के आश्रय में रहते थे। क्योंकि उन्हें अपने भरण–पोषण केलिए उच्च वर्ग के लोगों का आश्रय खोजना पड़ता था। श्रृंगार काल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है। राज्याश्रय में पले श्रृंगारी काव्य में रीति और अलंकार का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। जो कवि दरबारी संस्कृति से दूर रहे उनमें 'प्रेम की पुकार' का स्वरूप रीति से मुक्त है। लेकिन बहुमत आचार्यों का ही है जो रीतिनिरूपण को लक्ष्य बनाकर चला।

श्रृंगार कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्नलिखित थीं–

श्रृंगार रस की प्रधानता।

अलंकार की प्रधानता। रीति की प्रधानता। मुक्तक शैली की प्रधानता।

ब्रजभाषा की प्रधानता। लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता।

नारी के प्रेम स्वरूप की प्रधानता। प्रकृति के उद्दीपक रूप की प्रधानता।

वीर रस–काव्य।

नवीन परिवेश के परिणामस्वरूप साहित्य को भी संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि आश्रयदाता केन्द्र अति शीघ्रता से छिन्न भिन्न होने लगे।

सामान्यतः रीति कालीन साहित्य भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से रूढ़िबद्ध था। बंधी–बंधाई रीति पर काव्य

सृजन होता था इसीलिए श्रृंगार काल के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीति काल नामकरण करना उचित समझा। काल का उपविभाजन भी इसी आधार पर रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध रूपों में हुआ।

रीतिबद्ध – जो लक्षण लिखनेके बाद उदाहरण स्वरूप काव्य सृजन करते थे,

रीति मुक्त – जो रीति का पालन न करके स्वच्छंद रूप से काव्य

सृजन करते थे। इन कवियों के काव्य में 'प्रेम की पीऱ' का प्राधान्य है। कुछ वीर रस का काव्य भी लिखा गया।

रीति सिद्ध – इन्हें लक्षण का पूरा ज्ञान था। लक्षण सामने रखकर काव्य करते थे किंतु लक्षण लिखकर रीतिबद्ध जैसे उदाहरण स्वरूप नहीं अपितु लक्षणों के आधार पर ही स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना करना इनका उद्देश्य था। रीति कालीन काव्य परंपरा आधुनिक परिवेश के अनुकूल अपना समायोग स्थापित कर पाने में असमर्थ थी जिसके परिणामस्वरूप साहित्य ने स्वयं को युगीन परिवेश के अनुकूल नवीन प्रारूप में जन्म देकर महत्वपूर्ण क्रांति प्रस्तुत की। ऐसे कवियों में भारतेंदु का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने रीति कालीन परंपराओं की रक्षा करते हुएभी साहित्य–क्षेत्र में नवीन दिशाओं का आविष्कार किया। ब्रजभाषा गद्य के साथ–साथ काव्य में खड़ी बोली गद्यके प्रयोग का प्रारंभ हुआ। पद्य के साथ गद्य भी चल पड़ा जिसने चम्पू काव्य को जन्म दिया। इसके पश्चात् गद्यकी अन्य विधाएं उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना प्रमुख गद्य–विधाओं के साथ–साथ आधुनिक अन्य अनेक विधाओं में साहित्य सृजन होने लगा। पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। छापे खाने खुलने लगे। पत्र–पत्रिकाएं इसी युग की देन हैं।

भारतेंदु युग में हिंदी का प्रचार–प्रसार हुआ। द्विवेदी युग में भाषा का संस्कार एवं परिमार्जन हुआ जिसके परिणामस्वरूप 'छायावाद' हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का 'स्वर्ण युग' कहलाया। इस युग में विशुद्ध खड़ीबोली अर्थात् हिन्दी को साहित्य भाषा का माध्यम बनाया गया। छायावादोत्तर युग में पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव बढ़ने के परिणामस्वरूप साहित्य जगत में काव्यांदोलन चल पड़े जो प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नई कविता के रूप में निखर कर सामने आए। नवलेखन, गद्य गीत, अकविता, क्षणिकाएं, लघु कथा, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तांत, आत्मकथा, रेडियो रूपक, डायरी, पत्रात्मक शैली आदि अनेक रूपों में साहित्याभिव्यक्ति होने लगी। साहित्य धारा गद्य–पद्य दोनों रूपों में समानांतर रूप से प्रवाहित होने लगी। वर्तमान समय तक आते–आते आधुनिक हिंदी साहित्य ने विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, आंचलिक, अंतर्राष्ट्रीय तथा अनेक प्रकार की वाद ग्रस्त प्रवृत्तियों से प्रभावित हो, विकास की ओर बढ़ता हुआ पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होकर विशाल साहित्य–कानून–भंडार खड़ा कर दिया है। विभिन्न प्रवृत्तियों एवं परिवेशों में आकर, उनसे प्रभावित होकर साहित्य ने अपनी गति, दिशा में ही परिवर्तन नहीं किया है अपितु स्वरूप परिवर्तन के साथ–साथ मूल्यों में भी परिवर्तन किया है।

4. 1857 ई0 की राज्य क्रांति और पुनर्जागरण

सन् 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकारों में मतभेद हैं। कुछ इतिहासकारों ने इसे 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी है, तो कुछ ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहा। किंतु वास्तव में यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता प्राप्त करने की सुनियोजित जनक्रांति थी, जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह, अमर सिंह, तात्या टोपे आदि ने अपने प्राणों की आहूति दी हिंदी भाषी विशल क्षेत्र में ही यह सबसे व्यापक स्वतंत्रता–संग्राम सबसे पहले प्रारंभ हुआ।

सन् 1857 की क्रांति के विषय में अनेक देशी–विदेशी इतिहास वेताओं ने अपने मत व्यक्त किए है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है। "यह एक सुनियोजित क्रांति थी।विद्रोह के नेता बहुत समय से इसको पूरा करने में लगे थे और निःस्वार्थ देशभक्तों का एक समूह देश के कोने–कोने में इसकी अलख जगा रहा था,जिन्हें अपने देश की

स्वाधीनता से अधिक प्रिय कुछ न था।" डॉ. के.एम. पाणिक्कर ने लिखा–"यह आंदोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने सांप्रदायिक भावना को पार किया। इसमें हिंदू–मुसलमानों ने मिल–जुलकर कार्य किया।" कुलदीप कुमार का मत है कि "स्वाधीनता के लिए भारतीयों द्वारा छेड़े गए पहले युद्ध को अंग्रेजों ने गदर और सिपाही विद्रोह कहा और सुदूर लंदन में बैठकर अमेरिका के अखबार के रिपोर्टिंग करने वाले कार्ल मार्क्स ने उसे भारत का राष्ट्रीय विद्रोह बताते हुए उसकी तुलना फ्रास की क्रांति के साथ की सन् 1857 की इन युगांतरकारी घटनाओं का प्रभाव भारतीय साहित्य पर तो पड़ा ही, यूरोप की चेतना को भी इस विद्रोह ने बहुत गहराई से प्रभावित किया। विद्रोह को कुचलने के बाद अंग्रेजों ने बदले की कार्रवाई करते हुए भारतीय जनता पर कहर ढाया। हजारों लोगों को पेड़ों से लटका कर मार डाला गया। तोपों के मुंह पर बांध कर उड़ा दिया गया और गांव के गांव जला दिए गए। अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को रंगून निर्वासित कर दिया गया जहां उन्होंने अपने दर्द को बयान करते एक नज्म लिखी जिसकी आरंभिक पंक्तियां थीं,

गई यक–बयक जो हवा पलट,
नहीं दिल को मेरे करार है।
करूं उस सितम का मैं क्या बयां,
मेरा गम से सीना फिगार हैं।". . .

सन् 1857 की अनुगूंज यूरोपीय समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के साथ–साथ वहां के साहित्य में भी सुनाई देती है। दरअसल यूरोप के कई देशों में केवल नौ वर्ष पहले सन् 1884 में क्रांतिकारी आंदोलनों को विफलता का मुंह देखना पड़ा था। लेकिन इन आंदोलनों के आदर्शों का वहां के राष्ट्रीय आंदोलनों और उदारवादी तथा मूलगामी विचार धारओं पर गहरा असर पडा था। भारत को अक्सर एक अपरिवर्तनशील और जड़ समाज समझा जाता था और यह धारणा बहुत व्यापक रूप से फैली थी कि उपनिवेशवाद इस देश को आधुनिक और सख्त बनाने के लिए जरूरी है लेकिन 1857 के व्यापक विद्रोह ने इस धारण की जड़ों पर ही हमला कर दिया और यूरोप अचानक अपनी नींद से जाग. . . इस विद्रोह से बुल्गारियो के राष्ट्रवादियों का मनोबल बढ़ा और ऑटोमन साम्राज्य से मुक्ति पाने की उनकी इच्छा और प्रबल हो गई।"

सन् 1857 के विद्रोह के कारण

कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता है। सन् 1857 के विद्रोह के भी राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अनेक कारण थे।

राजनीतिक– सन् 1757 तथा सन् 1764 ई. के प्लासी और बक्सर युद्धों के पश्चात् अंग्रेजों का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप राज्य विस्तार को अपनी महत्वाकांक्षा बना लिया। इस कार्य को युद्ध, नीति, कूटनीति के द्वारा पूर्ण करने का निश्चय कर लिया। अभिप्राय यह कि साम, दाम, दंड एवं भेद किसी भी मार्ग से राज्य विस्तार का लक्ष्य बना लिया जिसके परिणामस्वरूप सरकार ने अवध, हैदराबाद, मैसूर, कर्नाटक, नागपुर, भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर एवं सिंध आदि को अपनी सत्ता में ले लिया। फिर भी उनकी राज्य विस्तार की भूख सुरसा की भूख हो गई जो संपूर्ण भारत को निगल जाना चाहती थी। अंग्रेज सरकार की अन्यायपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध अनेक भारतीय राजाओं तथा जनता में घृणा की भावना बढ़ने लगी। डलहौजी की 'लैप्स नीति' ने आग में घी का कार्य किया। जिसने निःसंतान राजाओं से बच्चा गोद लेने का अधिकार छीन लिया तथा ऐसे राजाओं की मृत्यु के बाद उनके राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित किया जाने लगा। रानी झांसी लक्ष्मीबाई का राज्य इसी आधार पर छीना गया। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने अनेक राज्यों को अपने आधिपत्य में ले लिया। इस नीति के द्वारा ही अंग्रेजों ने पेशवा बाजीराव (द्वितीय) के दत्तक पुत्र नाना साहिब की पेंशन बंद कर दी, जिससे नाना साहिब भी अंग्रेजी सरकार का विरोध करने लगे। अंग्रेजों ने बलात् वाजिद अलीशाह को बंदी बनाकर अवध राज्य

को अपने अधिकार में ले लिया। मुगल सम्राट का निरादर तथा असंख्य बेकार किए गए सैनिकों का रोष राजनीतिक कारण थे जिन्होंने सन् 1857 के विद्रोह को जन्म देने में विशेष भूमिका निभाई है। अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों से दुर्व्यवहार, भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति न करना तथा उनकी दोषपूर्ण न्याय प्रणाली ने लोगों में विद्रोह की भावना जागृत की।

सामाजिक– अंग्रेजों में वर्ण व्यवस्था रंग–भेद की नीति अत्यधिक बढ़ गई थी। अंग्रेज भारतीय जनता के गृह कार्यों एवं उत्सवों में अनाधिकार अपनी टांग अड़ाते थे। ईसाई मत का प्रचार धुआंधार हो रहा था। अछूतों–गरीबों को ईसाई धर्म में दीक्षित करके उन्हें ईसाई बनाया जाता था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भारतीयों को सह्य न था। इतना ही नहीं अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा किए गए अनेक सुधार भी उनके विरुद्ध विद्रोह करने में सहायक सिद्ध हुए। रेल डाक, तार सेवा ने काल–स्थान का अंतराल कम कर दिया। एक प्रांत की जनता को दूसरे प्रांत की जनता के सन्निकट लाकर खड़ा कर दिया जिससे वैचारिक आदान–प्रदान होने लगा जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता की मानसिकता में विद्रोह की भावना गहराई में पैठ गई। समाज की अर्थव्यवस्था चरमरा गई जो विद्रोह का कारण बनी। क्योंकि देश का अधिकांश कच्चा माल सस्ते दामों पर विदेश जा रहा था तथा वहां से महंगा तैयार माल भारत के बाजारों में बिक रहा था इस प्रकार दोनों तरफ की लुटाई जनता को विद्रोही बना रही थी।

धार्मिक– भारतीय सनातनी धर्मभीरू एवं धर्मावलंबी रहे हैं। धर्म के विरुद्ध उन्हें कुछ भी सह्य नहीं है। इंग्लैंड के ईसाई पादरी या मिशनरी भारत आकर हिंदुओं को धन एवं नौकरी का लोभ दिलाकर ईसाई बना रहे थे यह भारतीयों को विद्रोही बना रहा था। सती प्रथा, कन्या हत्या, विधवा विवाह तथा मनुष्य बलि संबंधी कानून बनने लगे। हिन्दुओं ने इसे अपने धर्म के विपरीत समझा क्योंकि ये सब कट्टरपंथी हिंदू अपने गले से नीचे नहीं उतार सके। उन्होंने ऐसा समझा कि ऐसा करके अंग्रेज हिन्दुओं की संस्कृति और धर्म को नष्ट करना चाहते हैं। भारतीय शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों हैं किंतु सवर्ण हिन्दू गाय और सुअर का मांस नहीं खाते हैं। शाकाहारी के लिए मांस अभक्ष्य है। नए आगत कारतूसों की टोपी में गाय–सुअर का मांस प्रयुक्त किया गया है ऐसा उन्हें ज्ञात हुआ इसलिए उसे दांत से अलग करना धर्म भ्रष्टता माना। इन समस्त कारणों से तत्कालीन घटनाओं ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

1857 के विद्रोह के परिणाम

सन् 1857 के विद्रोह को अंग्रेजों ने असफल कर दिया। असफलता में भी भारतीयों को अनेक लाभ हुए–

(1) विद्रोह अंग्रेजों द्वारा असफल बना दिया गया किंतु इस विद्रोह ने देश के लोगों की उन भावनाओं को निश्चित रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है जो अंग्रेजों के प्रति घृणा और क्रोध की भावना से ओत–प्रोत थी।

(2) लोगों की स्वतन्त्रता की प्रबल भावना को विद्रोह ने देश के कोने–कोने तक प्रसारित एवं प्रचारित कर दिया।

(3) स्वतंत्रता आंदोलन की भावना ने राष्ट्रीय स्तर प्राप्त किया तथा उसमें तीव्रता आ गई।

(4) विद्रोह ने 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' तथा अन्य क्रांतिकारी संगठनों को जन्म दिया।

(5) भारतीयों को अपनी कमियों का ज्ञान हो गया जिनके कारण अंग्रेजों को विद्रोह दबा देने में सफलता मिली।

(6) महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के पश्चात् भारतवासियों ने स्वयं को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों में भी नए विचारों से सम्पन्न करने के लिए दृढ़ संकल्प एवं प्रण किया जिसमें नवीन शिक्षा प्रणाली अत्यधिक सहायक एवं सार्थक प्रमाणित हुई।

(7) नई शिक्षा–प्रणाली का निर्माण एवं संचालन अंग्रेजों ने अपने हित एवं लाभ के लिए किया था जिससे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। अंग्रेजों के लिए विकसित शिक्षा प्रणाली उनका उतना हित न कर सकी

जितना इसने भारतीयों का कल्याण किया। यह शिक्षा प्रणाली भारतीयों में नवीन–चिंतन एवं नए दृष्टिकोण को विकसित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है।

(8) इससे प्रभावित होकर भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर अनेक नए आंदोलनों ने जन्म लिया।

5 भारतेंदु युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक काल का प्रारंभ भारतेंदु के समय में हुआ है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र अपने युग के प्रमुख साहित्यकार थे। उनकी बहुआयामी साहित्य सेवा के आधार पर इस युग का नाम उनके ही नाम पर किया गया। भारतेंदु युगीन कवियों की हिन्दीकाव्य रचनाओं का फलक अत्यन्त विस्तृत है। इस युग में ही गद्य साहित्य का अनूठा विकास हुआ है। गद्य की विविध विद्याएँ भारतेंदु युग में अपने अनूठे और प्रेरक रूप में विकसित हुई हैं। इस काल की रचनाओं में एक तरफ मध्य युगीन रीति और भक्ति की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर समकालीन परिवेश के प्रति अनूठी जागरूकता दिखाई देती है। इस कालका कवि समकालीन परिस्थितियों का मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करने में अनूठी सफलता प्राप्त कर चुका है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेंदु के इस योगदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है–"हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था,उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नये–नये विषयों की ओर प्रवृत करने वाले हरिश्चन्द्र ही हुए ।

भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषताएं पर प्रकाश डालने से पहले काल सीमांकन पर भी दृष्टि डाल लेते है। काल सीमांकननाम से अधिक इतिहासकारों ने काल सीमा में मतभेद स्थापित किए हैं।

(1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र (1850–1885) के रचना काल को दृष्टिगत रखते संवत् 1925–1950 विक्रमी. की अवधि नई धारा अथवा प्रथम उत्थान की संज्ञा दी है तथा इस काल को हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतित्व से समृद्ध माना है। किंतु शुक्ल जी द्वारा निर्धारित कालावधि से कुछ अन्य इतिहासकारों का वैमत्य है।

(2) मिश्रबंधु – संवत् 1926 –1945 विक्रमी. तक।

(3) डॉ. राम कुमार वर्मा – संवत् 1927 –1957 विक्रमी. तक।

(4) डॉ. केशरी नारायण शुक्ल – संवत् 1922 –1957 विक्रमी. तक।

(5) डॉ. नाम विलास शर्मा – संवत्1925 –1957 विक्रमी. तक।

(6) डॉ. नगेन्द्र – सन् 1868–1900 ई. तक।

इतिहासकारों ने भारतेन्द्र युग का प्रारंभ संवत् 1922–1927 वि. तक माना है। समाप्ति संवत् 1945–1957 वि. तक माना है।

भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. राष्ट्रीयता–

भारतेंदु युग की राजनीति में देशभक्ति की प्रबल धारा दिखाई देती है। ऐसी ही भावधारा इस काल के काव्य में मिलती है। इस काल की कविता में यदि विदेशी शासन के प्रति रोष है तो प्राचीन भारतीय आदर्श पर गर्व है। भारतेंदु की पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं–

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"

देशप्रेम की भावना के कारण इन कवियों ने एक ओर तो अपने देश की अवनति का वर्णन कर के आंसू बहाए तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार की आलोचना कर के देशवासियों के मन में स्वराज्य की भावना जगाई। अंग्रेजों की कूटनीति का पर्दाफाश करते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा–

सत्रु सत्रु लड़वाइ दूर रहिल खियतमाशा।

प्रबल देखिए जा हिता हि मिलि दी जै आसा

एसी ही भावधारा के दर्शन हमें बालमुकुन्द गुप्त के काव्य में मिलती है।

बहुत दिन बीते राम, प्रभु खोयो अपनो देस।

खोवत है अब बैठके, भाषा भोजन भेष।।

इस काल का कवि भारतीय, राजनीति, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भावनाओं में अनुकूल उत्कर्ष देखना चाहताहै। अतीत के प्रेरक प्रसंगों को प्रस्तुत कर कवि नवयुवकों में नवीनभाव का संचार करना चाहता है। भारतेंदु, प्रेमधन,मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में देशभक्ति की प्रबल भावना अभिव्यंजित हुई है।

2. सामाजिक चेतना–

रीतिकालीन काव्य सुरा–सुन्दरी के चित्रण तक सीमित हो गया था। भारतेंदु युग के साहित्य ने समाज की विभिन्न समस्याओं को व्यापक रूप में प्रस्तुत करने की सराहनीय भूमिका निभाई है। नारी शिक्षा, अस्पृश्यता और विधवा विवाह का मार्मिक चित्रण भारतेंदु युग की कविताओं में मिलता है। इस काल की कविता में एक तरफ मध्य वर्गीय समाज की विषमताओं को रूपायित किया गया है तो दूसरी तरफ समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों का मुखर स्वर से विरोध किया गया है। इस काल की कविता में ब्रह्म समाज और आर्य समाज की नवीन सामाजिक चेतना उभरी है। सुधारवादी दृष्टिकोण इस काल की कविता की प्रमुख विशेषता है। भारतेंदु ने 'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा' नाटक में वर्णव्यवस्था और सामाजिक अंधेर के संकीर्ण विचारों का खुलकर विरोध किया है–

"बहुत हमने फैलाए धर्म।

बढ़ाया छुआछूत का कर्म।"

इस काल के काव्य में भारतीय समाज और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेरक अनुराग दिखाई देता है। सामाजिक विषमताऔर निर्धनता को देखकर कवि का हृदय चीत्कार कर उठता है। यहाँ के जनजीवन के शिथिल विचारों अकाल औरमहंगाई में पिसते हुए मध्यम वर्ग को देखकर उनकी वाणी करुणा भाव से भीग उठती है–

"रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई

हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

ऐसे ही विचार हमें प्रतापनारायण मिश्र के काव्य में मिलते है। जो वर्ण–व्यवस्था और सामाजिक बुराइयों का खुलकर विरोध करते है–

निज धर्म भली विधि जानैं, निजगौरव को पहिचानैं।

स्त्री–गण को विद्या देवें, करि पतिव्रता यज्ञ लेवैं।।

3. भक्ति भावना

भारतेंदु युग में भक्ति भावना का सीमित और सामान्य रूप सामने आता है। इस काल की भक्ति भावना सम्बन्धी रचनाएँ भक्तिकाल की रचनाओं से बहुत भिन्न हैं। ऐसी रचनाओं में भक्ति और देश प्रेम को एक ही धरातल पर

प्रस्तुत कियागया है। जिसमें संवेदना का प्रबल रूप दिखाई देता है। इस काल की भक्ति में निर्गुण, वैष्णव और स्वदेशानुराग समन्वित तीन धाराएँ मिलती हैं। भक्ति भावना में उपदेशात्मक रूप है। ऐसी भक्ति भावना में माधुर्य भक्ति के साथ रीति पद्धति भी उभर आई है। यत्र–तत्र राम और कृष्ण पर आधारित रचनाएं मिलती हैं। 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' ने निर्गुण भक्ति का अनुराग प्रस्तुत किया है–

"सांझ–सवेरे पंछी सब क्या करते हैं कुछ तेरा है

हम सब इक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार बसेरा है।।"

ऐसी भक्ति भावना पर श्रृंगार पद्धति का प्रभाव दिखाई देता है–

"सुखद सेज सोवत रघुनन्दन जनक लली संग कोरे

प्रीतम अंक लगी महाराणी, शापित सुनि खग सोर।"

राम काव्य की अपेक्षा कृष्ण काव्य अधिक विस्तृत रूप पा सका है। यत्र–तत्र उर्दू शैली का भी रूप मिला है। अनेक रचनाओं में ईश्वर भक्ति और देश भक्ति का अनुपम समन्वय मिलता है। 'प्रतापनारायण मिश्र' की पंक्तियाँ उद्धरणीय है–

"हम आरत–भारत वासिनी पै अब दीन दयाल दया करिये।"

4. श्रृंगारिकता–

भारतेंदु काल में रस को काव्य की आत्मा मानकर रचना की जाती रही है। श्रृंगार रस विविध रंगों के साथ सर्वत्र अल्पाधिक रूप में प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण सन्दर्भ में तो सौन्दर्य और श्रृंगार का वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो गया है।इस काल की श्रृंगार भावना में संक्षिप्त नखशिख वर्णन है और षड़ ऋतु वर्णन और नायिका भेद के साथ उर्दू और अंग्रेजी की संवेदना और अभिव्यंजना भी प्रकट हुई है। भारतेंदु की प्रेम सरोवर, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, प्रेम फुलवारी में भक्ति और श्रृंगार दोनों ही भावों का समावेश हुआ है। भारतेंदु के प्रेम वर्णन की सरसता अवलोकनीय है–

"आजु लौं न मिले तो कहा हम तो तुमरे सव भांति कहावैं

मेरे उराहनों कहु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं. . .

प्यारे जू है जग की यह रीति विदा की समे सब कण्ठ लगावै।।"

5. जनजीवन चित्रण–

रीतिकालीन साहित्य राज दरबार के परिवेश में रचा गया और उसमें जनसामान्य के चित्रण का प्रायः अभाव ही रहा। भारतेंदु युग का काव्य जन सामान्य के मध्य रखा गया है। उसमें जन सामान्य की समस्याओं का विशद और विस्तृत चित्रण मिलता है। इस युग का प्रत्येक कवि रूढ़ियों कुरीतियों और अत्याचार आदि को समाप्त करने का प्रेरक स्वर प्रस्तुत करता है। क्योंकि रीतिकाल का कवि राजा को प्रसन्न देखना चाहता था तो भारतेंदु युग का कवि जनसामान्य को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था। वह स्वस्थ समाज और प्रसन्न मनुष्यों को देखने की इच्छा रखता है। यही कारण है कि इस युग की कविता में युगीन यथार्थ के साथ प्राचीन संस्कृति का अनुपम गौरव गान मिलता है।

6. प्रकृति चित्रण–

भारतेंदु युग के कवियों ने उत्तर मध्य युग की उसी कमी को पूरा किया जिसमें प्रकृति के स्वतन्त्र और प्रेरक चित्रण

का अभाव था। इस युग की कविता में प्रकृति–सौन्दर्य का स्वच्छन्द रूप मिलता है। प्रकृति के माध्यम से नायक नायिकाओं की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के चित्रण में इस काल का कवि सराहनीय रूप में सफल हुआ है। प्रकृति का हरा भरा रूप, वीरान रूप, उत्प्रेरक रूप विभिन्न कविताओं में अपनी विशेषताओं के साथप्रस्तुत हुआ है। प्रकृति का बिम्बात्मक और चित्रात्मक रूप निश्चय ही अवलोकनीय है।

"पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगी अम्बर चूमै

निहारत दीहि भ्रमैं पगिया गिरिजात उत्तंगता ऊपर झूमै।।"

7. काव्य रूप–

भारतेंदु युग की प्रायः सभी रचनाएँ मुक्तक काव्य पर आधारित हैं। 'हरिनाथ पाठक' की 'श्री ललित रामायण' और 'प्रेमधन' की 'जीर्ण जनपद' आदि कुछ एक प्रबन्धात्मक रचनाएँ अपवाद स्वरूप हैं। इस काल के अधिकांश कवियों ने गीत, लोक संगीत और विनोद से सम्बन्धित रचनाओं को मुक्तक में ही प्रस्तुत किया है। भारतेंदु जैसे कुछ कवियों ने गज़ल के रूप में भी रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इनकी हिन्दी रचनाओं में उर्दू का भावात्मक रूप स्पष्ट दिखाई देता है। इस युगका काव्य परम्परागत मुक्तकों के साथ नवीन प्रयोग भी सामने आया है। इस काल में काव्य के साथ गद्य की निबन्ध, समीक्षा, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि विधाओं का सुन्दर विकास हुआ है।

8. भाषायी चेतना–

भारतेंदु युग में राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति प्रबल प्रेम दिखाई देता है। इस काल का कवि सहज, सुगम और उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग करता था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र की भाषा में भी उर्दू ही नहीं अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों काप्रयोग मिलता है। सरलता और सहजता के साथ भाषा में प्रभावोत्पादक रूप लाने के लिए लोकोक्ति और मुहावरों काभी अनुकरणीय प्रयोग इस काल की कविता की प्रमुख विशेषता है। इस काल की कविता में विभिन्न अलंकारों का सहजप्रयोग विशेष प्रभावोत्पादक बन गया है। सभी रसों का सुन्दर परिपाक भी मिलता है। हिन्दी के प्रति अनुपम अनुराग इस युग की कविता की प्रमुख विशेषता है।

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।"

भारतेंदु युग की प्रवृत्तियों पर विशद चिन्तन करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह हिन्दी साहित्यका नवजागरण काल है जिसमें राष्ट्रीयता, सामाजिकता और भाषायी प्रेम की अनुपम त्रिवेणी बहती है। भारतेंदु युग पुरातन और नवीन के संधि स्थल पर अवस्थित है जिसके परिणामस्वरूप कवियों में मध्यकालीन वैयक्तिकता के साथ–साथ समाज और राष्ट्र उद्‌बोधनकारी, लोकमंगलकारी दृष्टि अर्थात् समष्टि या सामाजिकता की ओर आकर्षण पैदा हुआ है। विचार–दर्शन में या तो एक प्रकार की उलझन है अथवा समकालीन परिवेश में उन्हें परस्पर विरोधी दृष्टिकोण अपनाने हेतु बाध्य कर दिया है। इस युग में, 1 प्रवृत्ति मूलक प्रेम काव्य, 2 दास्य भक्ति या माधुर्य भक्ति की रचनाएं, एवं 3 सुधारवादी जीवन दृष्टि वाली रचनाएं तीन काव्य प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं।

इस प्रकार भारतेंदुयुग साहित्य के नवजागरण का युग था। जिसमें शताब्दियों से सोये हुए भारत ने अपनी आँखें खोलकर अंगड़ाई ली और कविता को राजमहलों से निकालकर जनता से उसका नाता जोड़ा। उसे कृत्रिमता से मुक्तकर स्वाभाविक बनाया श्रृंगार को परिमार्जित रूप प्रदान किया और कविता के पथ को प्रशस्त किया। भारतेंदु और उनके सहयोगी लेखकों के साहित्य में जिन नये विषयों का समावेश हुआ। उसने आधुनिककाल की प्रवृत्तियों को जन्मदिया। इस प्रकार भारतेंदु युग आधुनिक युग का प्रवेशद्वार सिद्ध होता है।

6 द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

डॉ. नगेंद्र के शब्दों में "इस काल–खंड के पथ–प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम 'द्विवेदी युग' उचित ही है। द्विवेदी इस युग के प्रवर्तक आचार्य हैं।" आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सरस्वती के प्रकाशन भार संभालने से लेकर सन् 1918 तक के समय को 'द्विवेदी युग' की संज्ञा दी जाती है। इस युग की पृष्टभूमि वैचारिक, सुधारवादी तथा बैद्धिक है। इस युग में भारतेंदु युग में स्थपित 'ब्रह्मसमाज', आर्य समाज, थिओसाफिकल सोसायटी और राष्ट्रीय कांग्रेस की क्रियाशीलता का सीधे जीवन पर प्रभाव पड़ना आरम्भ हुआ। इन संस्थाओं के प्रभाव स्वरूप पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिक्रिया स्वरूप देश में बुद्धिवाद, वैज्ञानिकता, समानता, सहिष्णुता, न्यायप्रियता, मानवतावादी, दृष्टिकोण जैसे लोकान्मुखी दृष्टि का विकास हुआ। इन सभी का प्रत्यक्ष प्रभाव इस युग के साहित्य पर पड़ा और विषय वैविध्य में इसकी परिणति हुई और छोटे से छोटे विषय से लेकर गंभीर से गंभीर विषय को लेकर साहित्य लिखा जाने लगा।

काल सीमांकन–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी युग की काल सीमा संवत 1957–1977 विक्रमी. अर्थात् 20 वर्षों की कालावधि स्वीकारी है। डॉ. नगेन्द्र ने इस काल खंड का प्रारंभ 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन काल से माना है। सौभाग्य की बात है कि जनता की रूचि एवं आकांक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा–निदेशक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप सन्

1900 ई. में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। कालावधि 18 वर्ष मानते हुए सन् 1900–1918 ई. तक 'द्विवेदी युग' की सीमा स्वीकारी है।

हिंदी साहित्य में द्विवेदी जी का विशेष महत्त्व है क्योंकि उन्होंने तत्कालीन साहित्य में प्रचलित रूढ़ियों का संगठित और खुलकर विरोध किया। उस समय साहित्य में तीन तरह की रूढ़ियां और शिथिल परंपराएँ प्रभावी हो रही हैं।

1. कवियों और आलोचकों का एक बहुत बड़ा वर्ग इस बात की वकालत करने में लगा हुआ था कि खड़ी बोली में कविता हो ही नहीं सकती, क्योंकि उसमें वह लालित्य और माधुर्य नहीं है, जो ब्रजभाषा में है।
2. श्रृंगाररस, नायिका भेद, उक्ति वैचित्र्य के साहित्य में सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा था।
3. उस समय कविता में समस्यापूर्ति की ऐसी धूम मची हुई थी कि बहुतेरे कवि किसी न किसी समस्या का सहारा लिए बिना कविता लिख ही नहीं सकते थे।

द्विवेदी जी ने पूरी शक्ति के साथ इन शिथिल परंपराओं और रूढ़ियों का विरोध किया। आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में भारतेंदु के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण नाम द्विवेदी जी का है। इसलिए भारतेंदु युग के पश्चात् हिंदी साहित्य में जिस नवीनयुग का आविर्भाव हुआ, उसे द्विवेदी युग कहा गया। इस युग में श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में काव्य–रचना करते हुए प्रकृति को आलंबन रूप में ग्रहण करने का आग्रह किया। छंद संबंधी नये–नये प्रयोग किये और कविताओं में रहस्य संकेत दिऐ। पाठक जी की कविता अपने युग से आगे थी।

मैथिलीशरण गुप्त ने आदर्श चरित्रों की सृष्टि की और उन्हें अलौकिकता के आकाश से उतार कर मानवीयता की भूमि पर खड़ा किया। व्याकरण सम्मत और स्वाभाविक भाषा के प्रयोग में जितनी महारत गुप्त जी को प्राप्त थी, उतनी उस काल के किसी अन्य कवि को नहीं। रामनरेश त्रिपाठी ने कल्पित कथानकों के माध्यम से देश–प्रेम की भावना जगायी। उनकी 'पथिक' और'मिलन' काव्य कृतियाँ क्रमशः स्वतंत्रता प्राप्ति और हिंसात्मक क्रांति की कहानियाँ हैं। खड़ी बोली में सर्वप्रथम महाकाव्य कीरचना करने वाले हरिऔध जी रीतिकालीन नायिका के स्थान

पर पति, परिवार, लोक और विश्व सेविका की प्रतिष्ठा करने में कृत्कार्य हुए। इस युग के हिंदी काव्य की उल्लेखनीय प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. देशभक्ति– उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतदुं, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों के काव्य में देशभक्ति का जो स्वर सुनाई पड़ा था, द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्य में उसका उत्तरोत्तर विकास होता गया और उसका चरमोत्कर्ष मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में दृष्टिगोचर हुआ। द्विवेदीयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना भारतेंदुयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना से किंचित् भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं मुखर है। भारतेंदुयुगीन काव्य में देशभक्ति के साथ–साथ राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है, किन्तु द्विवेदीयुगीन काल शुद्ध राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित है। उनमें अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की भावना तथा भारतीय जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उद्‌बुद्ध और प्रेरित करने वाला क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। कवि शंकर की 'बलिदान गान' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।

प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

सामान्य जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए भारत के गौरवपूर्ण अतीत और उसकी प्राकृतिक छटा की भावपूर्ण छवि अंकित की गई है। गुप्त जी ने 'भारत–भारती' में भारत की श्रेष्ठता का उद्‌घोष इस प्रकार किया है–

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?

फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।

सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।

उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।

समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों, कुरीतियों, ईर्ष्या–द्वेष, आदि का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कर कवियों ने भारतीय जनमानस को उसकी कमियों से अलग कराते हुए परस्पर संगठित होकर देश की उन्नति करने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रेरित किया। रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि भारत' शीर्षक कविता में देशवासियों को द्वेष का परित्याग कर देश की उन्नति में योग देने के लिए प्रेरित किया गया है–

उठो त्याग दे द्वेष एक ही सबके मत हों।

सीऊ ज्ञान–विज्ञान कला–कौशल उन्नत हों।।

सुख सुधार सम्पत्ति शान्ति भारत में भर दें।

अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें।।

2. नैतिकता का प्राधान्य– भारतेंदु युग के कवियों ने अपनी कविताओं में यद्यपि नए–नए विषयों का समावेश किया फिरभी वे रीतिकालीन श्रृंगारी भावना का परित्याग न कर सके। द्विवेदीयुग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में रीतिकालीन श्रृंगारिकता का स्पष्ट विरोध किया गया और कविता के भीतर आदर्श एवं नैतिकता की प्रतिष्ठा हुई। मात्र मनोरंजन की भावना से दूर हटकर कविता में उचित उपदेशात्मक का समावेश करने पर बल दिया गया–

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।

क्यों आज 'रामचरितमानस' सब कहीं सम्मान्य है।।

सत्काव्यगत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है।।

–मैथिलीशरण गुप्त

वासनात्मक प्रेम के स्थान पर प्रेम के उस स्वर्गिक रूप की झाँकी प्रस्तुत की गई जो ईश्वर का प्रतिरूप है और इसलिए यह प्रेम हृदय को आलोकित करने वाला है–

गन्ध विहिन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन।

यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन।।

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक।।

–रामनरेश त्रिपाठी

कविता के माध्यम से मनुष्य के हृदय में स्वार्थ त्याग, कर्त्तव्यपालन, आत्मगौरव आदि उच्चादर्शों की स्थापना का प्रयास किया गया। इसके लिए कहीं तो सद्‌गुण और सत्संग की महिमा का वर्णन हुआ और कहीं दुर्गुण और कुसंग की बुराईयों पर सीधी–सरल भाषा में प्रकाश डाला गया। कुसंग के संबंध में रामचरित उपाध्याय की निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं–

अति खल की संगति करने से जग में मान नहीं रहता है।

लोहे के संग में पड़ने से घन की मार अनल सहता है।।

सबसे नीतिशास्त्र कहता है, दुष्ट संग दुख का दाता है।

जिस पय में पानी रहता है, वही खूब औटा जाता है।।

3. मानवतावादी दृष्टिकोण– आधुनिककाल से पूर्व भारतीय समाज में जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि आधारों पर भेद–भाव कीअनेक दीवारें खड़ी की गई थीं। पुरुषों द्वारा स्त्रियों को मात्र वासनापूर्ति का साधन समझकर उनका निरंतर शोषण हो रहा था। आधुनिक काल में बौद्धिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रभाव से मानव–मात्र की समानता का भाव विकसित हुआ। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार देने की बात सोची जाने लगी। धीरे–धीरे परम्परागत धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने धर्म के इस आभ्यंतर स्वरूप को अच्छी तरह पहचाना और मानव के प्रति प्रेम तथा दीन–दुखियों की सेवा को सच्चा धर्म बताया–

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।

विश्व प्रेम के बन्धन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार।।

–गोपालशरण सिंह

खोजे मैं हुआ वृथा हैरान, यहाँ ही था तू हे भगवान्।

दीन–हीन के अश्रु नीर में, पतितों के परिताप पीर में।

सरल स्वभाव कृषक के हल में, श्रमसीकर से सिंचित घन में।

तेरा मिला प्रमाण।।

– मुकुटधर पाण्डेय

राम और कृष्ण को अवतारी सिद्ध करते हुए उन्हें मानवता का प्रतिनिधित्व करने वाले आदर्श पुरुष के रूप में कल्पितकिया गया है गुप्त जी ने 'साकेत' में राम के मुँह से स्पष्ट कहलवाया है–

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया।

जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।।

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

नारी को समाज में उचित प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पाठकों का ध्यान ऐसे नारी पात्रों की ओर आकृष्ट किया गया जिनको प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय महाकाव्यों में कोई स्थान नहीं दिया गया था। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न किये। गुप्त जी ने 'साकेत' के माध्यम से उपेक्षित उर्मिला की मर्मव्यथा का चित्रांकन किया। 'हरिऔध जी' ने 'प्रियप्रवास' में राधा को लोक सेविका के रूप में लोगों के सम्मुख रखा और अपने प्रसिद्ध रीतिग्रंथ 'रसकलश' में परंपरागत नायिका–भेद से किंचित दूर हटकर पति, प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, लोकसेविका आदि नायिकाओं की नई कोटियाँ निर्धारित कीं।

4. आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण– भारतदुं युग के कवियों की दृष्टि प्रकृति के स्वंतत्र रूप की आरे गयी थी, किन्तु वे अपने को परम्परागत रीतिकालीन प्रकृति चित्रण से सर्वथा मुक्त नहीं कर सके थे। भारतेंदु ने 'चन्द्रावली' और 'सत्यहरिश्चन्द' में क्रमशः यमुना और गंगा की प्राकृतिक सुषमा का स्वतन्त्र वर्णन करने का प्रयास किया, किन्तु अलंकार प्रियता और शब्दचमत्कार के लोभ में उसका नैसर्गिक सौन्दर्य दब सा गया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा और उसे पूर्णतः आलम्बन रूप में स्वीकार किया। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन सिंह, रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं में प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के संश्लिष्ट चित्र देखने को मिलते हैं। रामचन्द्र शुक्ल की ग्राम–सौन्दर्य से संबंधित कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

गया उसी देवल के पास है ग्राम–पथ

श्वेतधारियों में कई घास को विभक्त कर

थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे

गोरज से धूमिल जो खड़े हैं किनारे पर।

रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्यों में प्रकृति के मोहक चित्र भरे पड़े हैं। 'स्वप्न' नामक खण्डकाव्य में वर्णित वेगवती पहाड़ी नदी का यह चित्र दर्शनीय है–

पर्वत शिखरों पर हिम गलकर, जल बनकर नालों में आकर।

छोटे बड़े चीकने अगणित शिला समूहों से टकरा कर।।

गिरता उठता फेन बहाता अति कोलाहल हर हर।

वीरवाहिनी की गति से कहता रहता निसिवासर।।

5. इतिवृत्तात्मकता– भारतेंदुयुग के कवियों ने काव्यशैली के क्षेत्र में नवीन प्रयोग न अपनाकर रीतिकालीन शब्द–चमत्कार प्रधान तथा प्रवाहपूर्ण शैली में काव्य रचनाएँ की थीं। द्विवेदी युग में कविता कथात्मक प्रवाह के साथ चलती थी। 'साकेत', 'यशोधरा' आदि रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा कवियों को छोड़ शेष सब ने रीतिकालीन अभिव्यक्ति–प्रणाली का विरोध किया। उनकी कविताओं में संस्कृति साहित्य के नये–नये छंदों

और तथ्य प्रधान सीधी–सपाट भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। कल्पना की लम्बी उड़ानों के सहारे रचे गये संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती है। 1907 की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित एक कविताकी निम्नलिखित पंक्तियों में इतिवृत्तात्मक शैली का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा–

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रंथ होते यदि विद्यमान।

तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।

हे ग्रंथ! द्रव्यादि न एक लेते, तो भी सुशिक्षा तुम नित्य देते।

खड़ी बोली के पूर्णतः समृद्ध हो जाने के उपरान्त उसमें सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाली चित्रमयी लाक्षणिक शैली का विकास हुआ; जिसका चरम उत्कर्ष आगे चलकर छायावादी कवियों की कविता में देखने को मिलता है।

6. खड़ी बोली की प्रतिष्ठा– द्विवेदी युग में गद्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के साथ–साथ पद्य के क्षेत्र में भी खड़ी बोली कीव्यापक प्रतिष्ठा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आचार्य महावीर द्विवेदी के प्रयत्नों से उनके समय में खड़ी बोलीके प्रतिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना हुई और पहले से चली आने वाली व्याकरणिक असमानताएँ समाप्त हो गईं। द्विवेदीजी ने स्वयं अपनी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ समास प्रधान पदावली का प्रयोग किया और दूसरों को भी इस दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। द्विवेदीयुग की कविता में खड़ी बोली के दो स्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ते हैं – एक उसका वह स्वरूप है जिसमें बोलचाल के सीधे सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और दूसरा उसका वह रूप है जिसमें संस्कृतनिष्ठ समास प्रधान शब्दावली देखने को मिलती है। महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'हरिऔध जी' की कविताओं में भाषा के इन दोनों रूपों के नमूने एक साथ देखने को मिल जाते हैं –

अलौकिकानन्द विधायिनी महा,

कवीन्द्र कान्ते कविते अहो कहाँ।

–महावीर प्रसाद द्विवेदी

रूपोद्यान प्रफुल्ल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।

तन्वंगी तनहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली।।

–हरिऔध

द्विवेदी युगीन कविता की समग्र काव्य चेतना को रूपनारायण पाण्डेय की निम्नलिखित पंक्तियों से भावित किया गया है –

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख–ईसाई।।

कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई–भाई।

पुण्यभूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।

इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर में जगह नहीं।।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता खड़ी बोली के आधार पर गंभीर भावों से अनुप्राणित है। उसमें मात्र मनोरंजन ही नहीं है, वरन् उसमें गहरा उपदेश समाहित है जो उस युग की अपेक्षा थी। बहुविधा स्वातंत्रय भावना की दृष्टि से, नये–नये विषयों की उद्भावना की दृष्टि से, नयी चेतना की व्याख्या की दृष्टि से, भाषा–संस्कार की दृष्टि से द्विवेदीयुगीन कविता बड़ी विशिष्ट–विशेष है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी युगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता जागरण, सुधारवादी एवं उच्चादर्शों का काव्य है, जिसमें विषयगत वैविध्य एवं व्यापकता तथा आयाम विस्तार मिलता है। सभी काव्य रूपों का सफल प्रयोग किया गया है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण तथा विकास का एक मात्र श्रेय इसी युग को है। द्विवेदी युग में छंद का जो वैविध्य मिलता है वह अन्य युगों में दुर्लभ है। युगीन काव्य में अपेक्षित गहनता का अभाव है। वास्तविक कलात्मकता की समृद्धि नहीं हो पाई है। किंतु राष्ट्रीय उद्‌बोधन, जागरण, सुधार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अद्‌भुत सामर्थ्य, खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारणवं संस्कार के परिणामस्वरूप हिंदी काव्य के इतिहास में द्विवेदी युग का अत्यधिक महत्व है।

7 . छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

आधुनिक हिंदी काव्य में छायावाद को 'स्वर्ण युग' कहा जा सकता है। यह युग साहित्य के क्षेत्र में एक क्रांति था जिसमें कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनों दृष्टिकोण से उत्कर्ष का चरम दिखाई देता है। सन् 1920 से सन् 1936 तक के काव्य को छायावाद कहा जाता है।

इस काव्यधारा में अनेक महान कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। छायावाद साहित्य के कला और भाव क्षेत्र में एक अनूठे आन्दोलन के रूप में सामने आया है। इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित अनूठा व्यक्तिवाद दिखाई देता है। इस काव्यधारा में जीवन दर्शन और सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुंदर आंकलन (विवेचन) किया गया है। यह काव्यधारा स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा से कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य है। इसपर अंग्रेजी साहित्य का भी कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई देता है। छाया शब्द विशेष संदर्भ से लिया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार बंगला साहित्य में छाया शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ। जयशंकर प्रसाद के मन्तव्य से छाया और छायावाद का अर्थ स्पष्ट होता है– "मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है. . .छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति व अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है।. . .अपने भीतर से पानी की तरह अन्तःस्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया. . . कान्तिमय होती है।"

परिभाषा– विभिन्न विद्वानों ने इस प्रमुख काव्यधारा को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। जिसमें कुछ इस प्रकार हैं–

1. प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"
2. डॉ. रामकुमार वर्मा ने रहस्य के संदर्भ से कहा है – "परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छायापरमात्मा में, यही छायावाद है।"
3. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार – स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह बताते हुए कहा गया है –

   "छायावाद एक विशेष प्रकार की भावपद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भाव दृष्टिकोण है।"
4. महान कवयित्री महादेवी वर्मा ने – "छायावाद को आत्माभिव्यक्ति के लिए मनुष्य के हृदय की अकुलाहट का परिणाममाना है।''
5. डॉ. रामविलास शर्मा ''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। यह विद्रोह समय वर्ग के तत्वावधान में हुआ था इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुड़ी हुई है।''
6. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी''छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस श्रेणी की मूल

प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भाव धारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें संदेह नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई संतों की रहस्यवादी साधना अवश्य थी।''

इन विभिन्न परिभाषाओं को दृष्टिगत कर यह कह सकते हैं कि छायावाद द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता की प्रतिक्रियाहै। जिसमें मानवीकरण की प्रधानता के साथ प्रकृति में चेतना का आरोप किया गया है और परमात्मा के प्रति प्रकृति केमाध्यम से प्रणय भाव प्रकट किया गया है।छायावादी काव्य अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य में विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। कुछ महत्वपूर्ण रेखांकन योग्यविशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. व्यक्तिवाद की प्रधानता – द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक विचारधारा के कारण छायावाद में व्यक्तिवादी भाव उभर आया है। इस काव्यधारा में जहाँ आध्यात्मिक पक्ष सामने आया है वहीं व्यक्तिवादी भाव भी उभरा है। हिन्दी कविता जाति विशेष के सुख–दुख तक ही सीमित न रहकर समस्त मानव के सुख–दुख की कहानी बन गई है। इस काव्यधारा का कवि विभिन्न समस्याओं और बाधाओं के समाधान को बाह्य जगत में न खोजकर मानव मन में खोजता है। यही कारण है कि छायावाद में वैयक्तिक सुख दुख की अभिव्यक्ति खुलकर हुई है। जयशंकर प्रसाद की 'आँसू' और पंत की 'उच्छवास' कविता में व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति को अत्यंत आकर्षक रूप मिलाहै। छायावादी काव्य में यह व्यक्तिवाद 'मैं' के रूप में उभरकर सामने आया है। यह 'मैं' प्रतीकात्मक रूप है जिसमें लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना अपनायी गयी है। भावात्मक केन्द्र होने के बाद भी इसमें प्रेषणीयता और अभिव्यक्तिप्रबल होती है।

"मैंने 'मैं शैली अपनायी, देखा एक दुखी निज भाई।

दुख की छाया पड़ी हृदय में, झट उमड़ वेदना आयी।।"

इस प्रकार कह सकते हैं कि छायावादी काव्य में व्यक्तिगत सुख–दुख की अपेक्षा मानव सुख–दुख की अनुभूति और अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया है।

2. रहस्यानुभूति और देश–प्रेमछायावादी काव्य में रहस्यात्मक भावना का प्रबल रूप है। इन कवियों ने ऐहिक व्यक्तिकता की क्षुद्रता से उसे बचाने के लिए उस पर रहस्यात्मकता का आवरण डाल दिया। छायावाद में रहस्य भावना का सामाजिक आधार यही है। डॉ. नामवार सिंह के अनुसार– "काव्य में रहस्य–भावना एक प्रकार से परोक्ष की जिज्ञासा है।. . . अब वह प्रकृति और सृष्टि को जानना–समझना चाहता है। स्वच्छंदतावादी काव्य की यह खास विशेषता है।

न जाने, नक्षत्रों से कौन

निमंत्रण देता मुझको मौन ।

इस अज्ञात को जानने की जिज्ञासा ही रहस्य भावना है। छायावादी कवियों ने रहस्य–भावना की अभिव्यक्ति कई रूपों में की है।

3.राष्ट्रीय भावना – इसमें राष्ट्रीय जागरण के साथ रहस्यात्मक भाव का विलक्षण योग दिखाई देता है। इसी राष्ट्रीय जागरण भाव ने छायावाद को असामाजिक पदों पर भटकने से बचा लिया है। छायावादी कवि अलौकिक आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति में युगीन सन्दर्भों को देखता चलता है। यह छायावादी काव्यकी आदर्श प्रवृत्ति है। प्रसाद देश और युग पर दृष्टि रखकर ही कहते हैं–

"अरुण यह मधुमय देश हमारा

जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"

माखनलाल चतुर्वेदी 'पुष्प की अभिलाषा' के संदर्भ से राष्ट्रीय भाव दर्शाते हुए अनूठी भावना सामने रखते हैं–

"मुझे तोड़ लेना वन माली,

उस पथ पर देना तुम फेंक,

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।"

इस प्रकार छायावादी काव्य में देशकाल को ध्यान में रखकर प्रबल राष्ट्रीय भाव को अभिव्यक्ति दी गई है।

4. नारी भावना छायावादी कवियों ने युग–युग से कारा में बन्द नारी को मुक्त करने और समाज में महत्व दिलाने के लिए उद्घोष किया है। उनकी लेखनी से नारी को श्रद्धा पात्र कहा गया है। नारी को सर्वाधिक आदर छायावादी काव्य में मिला है। प्रसाद ने 'कामायनी' में नारी को महत्व देते हुए लिखा है–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में

पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।"

उक्त काव्य में नारी चित्रण अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और शील है। इसमें नग्नता और अश्लीलता को स्थान नहीं मिला। प्रसाद ने श्रद्धा के सौन्दर्य का अनूठा रूप प्रस्तुत किया है–

"नील परिधान बीच सुकुमार

खुल रहा मृदुल अधखुला अंग

खिला हो ज्यों बिजली का फूल

मेघवन बीच गुलाबी रंग।"

नारी सौंदर्य के चित्रण में उसकी अनूठी लेखनी बहुरंगी रंग भरती हुई सामने आती है। नारी जीवन प्रणय गाथा आशा,निराशा से आप्लावित दिखाई देता है। मिलन और विरह की अनुभूतियाँ अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी हैं। नारी स्वयं कोही नहीं पुरुष को भी समरसता के मार्ग तक पहुँचाती है। **"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी कीसमरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।"**

5. वेदना का चरित्र–

छायावादी काव्य में वेदना का प्रभावी चित्रण मिलता है।

"वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।

उमड़ कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।"

इस प्रकार आदर्श तथ्यों के समावेश से छायावाद के लौकिक धरातल पर अनुकरणीय और प्रेरक भाव पक्ष का अनुपमेय उदय हुआ है।

6. मानवतावाद–

छायावाद भारतीय सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद से प्रभावित हुआ है। इतना ही नहीं भारतीय दार्शनिकों के दर्शन से भी प्रभावित हुआ है। इसमें भावनाओं की संकीर्णता नहीं वरन् विस्तृत रूप पाकर विश्व मानवतावाद स्थापित हुआ है। उक्तकाव्य में नारी के अंग प्रत्यंगों का वर्णन न होकर उसके मानसिक सौन्दर्य का अनूठा रूप प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार छायावादी काव्य में श्रृंगार का आदर्श रसात्मक रूप है। जिसमें विलासिता नहीं सात्विकता है। छायावादी कवि युगीन अबला को मुक्त कर मानवतावाद लाना चाहता है।

"खोलो हे मेखला युगों की, कटि प्रदेश से तन से

अमर प्रेम हो उसका बन्धन, वह पवित्र हो मन से।"

या

"शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं। निरूपाय।

समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाये।।।"

(मानव तुम सबसे सुन्दरतम्)

इस धारा की कविता में जाति, धर्म प्रदेश और देश की सीमाएं नहीं हैं। वरन् विश्व के समस्त मानव की उन्नति का स्वर है। प्रसाद ने 'कामायनी' में वह मानवतावाद स्थापित करने के लिए कहा है–

"औरों को हँसते देखे मनु हंसो और सुख पाओ

अपने सुख को विस्तृत कर दो, जीवन सुखी बनाओ।"

7. आदर्शवाद–

छायावाद में बाह्य सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य का प्रबल रूप मिलता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि छायावादी कवियों की आदर्शवादी शैली अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के आधार पर विकसित हुई है। यथार्थ के साथ आदर्श तथ्यों के चित्रणमें कल्पनात्मक दृष्टिकोण अत्यंत अनूठा बन पड़ा है। आदर्श विचार अथवा कल्पना के कारण छायावादी कविता भाव और कला दोनों ही पक्षों में अनुकरणात्मक विशेषता प्राप्त कर सकती है।"नरवत की आशा किरण समान, ह्रदय के कोमल कवि की कान्तकल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस हलचल शान्त।"

8. प्रकृति चित्रण – छायावादी काव्य में प्रकृति के सर्वाधिक आकर्षक लौकिक तथा अलौकिक रूपों का चित्रण किया गया है। इस धारा के समस्त कवि प्रकृति के पुजारी हैं। पंत, प्रसाद, निराला, दिनकर आदि ने प्रकृति को परम रूपसी नारी के रूप में चित्रित किया है।

"पगली हाँ सम्भाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा आँचल

देख बिखरती है मणिराणी अरी उठा बेसुध चंचल।"

प्रातः और सान्ध्यकालीन दृश्यों का चित्रण इन कवियों की लेखनी से अत्यन्त अनूठे रूप में हुआ है। संध्या सुंदरी का अनूठा चित्रण निराला के शब्दों में–

"दिवसावसान का समय

मेधमय आसमान से उतर रही है

वह सन्ध्या सुन्दरी परी – सी

धीरे – धीरे – धीरे।।"

इस काव्यधारा के कवियों के प्रकृति चित्रण में कहीं भी वासनात्मक और ऐन्द्रिक चित्रण नहीं है। विषाद और दुख में भी आदर्श चित्रण दृष्टिगोचर होता है। छायावादी काव्य का प्रत्येक चित्र विस्मय कार्य है। प्रकृति का रहस्यात्मक रूपमन को बांध लेने वाला होता है।

9. आत्माभिव्यक्ति की भावना– छायावादी कवियों ने काव्य की विषय वस्तु अपने व्यक्तिगत जीवन से ही खोजने का प्रयास किया। अपने जीवन के निजी प्रंसगों, घटनाओं एवं व्यक्तिगत भावनाओं को अनेक छायावादी कवियों ने

काव्य–वस्तु बनाया। छायावादी कविता में वैयक्तिक, सुख–दुख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई। प्रसाद कृत 'आंसू' काव्य और पंत कृत 'उच्छवास' नामक कविता इस कथन के समर्थन में पेश की जा सकती है। पन्त जी ने अपनी 'प्रिया' को मन मन्दिर में बसाकर उसे पूजने का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया है।

विधुर उस के मृदुभावों से तुम्हारा कर नित नवश्रृंगार।

पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि, मूंद दुहरे दृग द्वार।।

–सुमित्रानन्दन पंत

निराला की कई कविताओं में उनके व्यक्तिगत जीवन का सत्य व्यक्त हुआ है। 'राम की शक्तिपूजा' में राम की हताशा, निराशा में कवि के अपने जीवन की निराशा की अभिव्यक्ति हुई है। उन्हें जीवन भर लोगों के जिस विरोध को झेलना पड़ा उसकी गूंज निम्न पंक्तियों में है –

''धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध।

धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।।

– निराला

छायावाद में उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त गेयता, चित्रात्मकता, बिम्ब विधान और प्रतीक योजना और वेदना चित्रण आदि के सन्दर्भों से अपने अनूठे भावात्मक और कलात्मक पक्षों को महत्वपूर्ण रूप में सामने प्रस्तुत करता है। निश्चय ही छायावाद हिन्दी साहित्य में विभिन्न वादों में सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक वाद है।

8. उत्तर छायावादी कवि और उनका काव्य

डॉ. रमेश रावत के अनुसार, "छायावादी काव्य सांस्कृतिक नवजागरण स्वर लेकर आयी थी, किन्तु सन् 1930 के बाद से उसमें परिवर्तन के कुछ लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। वस्तुतः 'उत्तरछायावाद' नाम से जिस काव्य प्रवृत्ति को रेखांकित किया जाता है वह एक अल्पकालिक काव्य प्रवृत्ति रही है। उसका कार्य छायावादी काव्य में आवश्यक सुधार तथा एक जागृत युग की पृष्टभूमि तैयार करना है। सन् 1934 और सन् 1937 के बीच इस वर्ग के कवियों ने छायावाद विरोधी पृष्टभूमि तैयार कर ली थी। एक ओर कामायनी के माध्यम से छायावाद ने अपनी मानसिक योजनाओं को साकार कर संभावनाओं को निःशेष कर दिया था। दूसरी ओर पंत ने युगांत की घोषणाकर दी थी। इस घोषणा को ऊँचे स्वर में पहले से ही परिवर्तन के लिए कटिबद्धता मध्यवर्गीय कवियों ने ग्रहण किया। सन् 1934 में आचार्य नरेन्द्र देव के सभापतित्व में समाजवादी दल की स्थापना और सन् 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना जैसे राजनीतिक और साहित्यिक संगठनों से कवियों को पर्याप्त शक्ति मिली।"

वैसे तो उत्तर छायावादी काव्य की अनेक प्रवृत्तियाँ हैं क्योंकि इसे अनेक वादों एवं धाराओं को पार करना पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप अनेक जीवन दृष्टियां तथा काव्य की वस्तु और शिल्प संबंधी मान्यताएं दृष्टिगोचर हुई। वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता हुई। रोमानी दृष्टिकोण व बुद्धिवादी यथार्थ दृष्टि का प्राधान्य हुआ। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर छायावादी काव्य धारामें उत्तर छायावाद, वैयक्तिक गीति काव्य, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत तथाकविता आदि अनेक काव्य धाराओं का आविर्भाव हुआ जिसमें राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य एवं उत्तर छायावाद धाराएं नवीन नहीं हैं। छायावादी काव्यधारा छायावाद में अपना चरम विकास करने के पश्चात् परंपरा का निर्वाह करती हुई परवर्तीकाल तक आई। इन कृतियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है–

राष्ट्रीय सांस्कृतिक– 'नहुष', 'अर्जित', 'जयभारत', 'कुणालगीत', 'हिमतरगिनी', 'हिमकिरीटिनी', 'माता', 'समर्पण', 'युग

चरण', 'अपलक', 'क्वासि', 'हम विषपायी जनम के', 'विनाबा स्तवन', 'नकुल', 'नोआखाली', 'जयहिंद', 'आत्मोत्सर्ग', 'उन्मुक्त', 'गोपिका', 'हुंकार', 'द्वंद्वगीता', 'इतिहास के आंसू', 'कुरुक्षेत्र', 'दिल्ली', 'रश्मिरथी', 'धूप और धुंआ', 'कुणाल', 'वासव–दत्ता', 'भैरवी, चित्रा','युगाधार', 'सूत की माला', 'हल्दीघाटी', 'जौहर', 'विक्रमादित्य', 'मानसी', 'विसर्जन', 'अमृत और विष', 'यथार्थ और कल्पना', 'युगदीप', 'विजयपथ', 'एकला चलो रे', 'काल दहन', 'कैकेयी', 'दानवीर कर्ण' आदि। इनमें 'गोपिका', 'क्वासि', 'अपलक एवं चित्रा' आदि में राष्ट्रीय स्वर गौण है तथा प्रेम का स्वर प्रधान है।

उत्तर छायावाद– 'तुलसीदास', 'अर्चना', 'अणिमा', 'आराधना', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'मधु ज्वाल', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'रजतशिखर', 'शिल्पी', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चांद', 'लोकायतन', 'दीपशिखा, रूप अरूप', 'शिप्रा', 'अवन्तिका', मेघगीत आदि। अणिमा में कुछ कविताएं राष्ट्रीय और सांस्कृतिक व्यक्तियों पर आधारित हैं। पंत की इस काल की सभी उत्तर छायावादी कृतियों में सांस्कृतिक स्वर सुनाई पड़ता है। भौतिकवाद एवं अध्यात्मकवाद के समन्वय की एक बेचैनी इनमें बराबर लक्षित होती है। इस तरह इन कृतियों का मूल स्वर छायावाद है किन्तु विषय की दृष्टि से इन्हें अन्याय धाराओं से भी जोड़ा जा सकता है। वैयक्तिक गीतिकाव्य– 'निशा–निमत्रंण', 'आकुल अतंर', 'सतरंगिनी', 'मिलन', 'यामिनी', 'रसवती', प्रभात फेरी', 'प्रवासी केगीत', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल', 'कदली वन', 'मधुलिका', 'अपराजिता', 'लाल चूनर', 'किरण बेला', 'संचयिता', 'कलापी','जीवन और यौवन', 'पांचजन्य', 'रूपरश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल', 'मन्वंतर', 'दिवालोक', 'पंछी', 'पंचमी', 'रागिनी', 'नवीन', 'नींद के बादल', 'मंजीर तथा छवि के बंधन आदि। वैयक्तिक गीति काव्य की रोमानी धारा में आने वाली कृतियां छायावाद से अलग हैं। ये कृतियां नई प्रवृत्ति की सूचक हैं।

प्रगतिवादी धारा– 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'कुकुरमत्ता', 'युग की गगां', 'युगधारा', 'जीवन के गान', 'प्रलय सृजन', 'अजेय खडंहर','पिघलते पत्थर', 'मेधावी', 'मुक्ति मार्ग', 'जागते रहो आदि कृतियों के अतिरिक्त नरेंद्र शर्मा', 'अंचल', 'आरसी प्रसाद सिंह तथा शंभूनाथ सिंह की उपर्युक्त कृतियों की अनेक कविताएं इसी धारा के अंतर्गत आती हैं। प्रगतिवादी और वैयक्तिक धारा की

कविताओं का श्रीगणेश सन् 1935 ई. के आस पास हो गया था।

प्रयोगवादी धारा– तार सप्तक (प्रथम)', 'इत्यलम्' , 'हरी घास पर क्षण भर', 'नाश आरै निर्माण', 'ठडां लाहेा', 'तार सप्तह (द्वितीय)। प्रगतिवादी और वैयक्तिक कविता धारा की कृतियों के साथ–साथ कुछ ऐसी भी सामने आईं जिन्हें प्रयोगवादी कहा गया। प्रयोगवादी कविताओं का आरम्भ सन् 1943 ई. के आस–पास हुआ। फिर भी दोनों धाराएं साथ साथ चलती रहीं।

नई कविता– 'तारसप्तक' (द्वितीय) कुछ कविताए' , 'तार सप्तक (तृतीय)', 'बावरा अहेरी', 'अरी ओ करुण प्रभामय', 'इद्रं धनुषरौंदे हुए', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'आंगन के पार द्वार', 'शिलापंख चमकीले', 'धूप के धान', 'अनागता की आंखे', 'अर्द्धशती', 'माध्यम मैं', 'कुछ और कविताएं', 'कुछ कविताएं', 'खंडित सेतु', 'गीत फ़रोश', 'बुनी हुई रस्सी', 'चकित है दुख', 'स्वप्न

भंग', 'अनुक्षण कोपल', 'चांद का मुंह टेढ़ा', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'वनपाखी सुनो', 'संशय की एक रात', 'सात गीत वर्ष', 'अंधा युग','कनुप्रिया', 'मृग और तृष्णा', 'मछलीकर', 'काठ की घंटियां', 'बांस के पुल', 'एक सूनी नाव', 'चक्रव्यूह', 'आत्मजयी', 'परिवेश हमतुम', 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्म हत्या के विरुद्ध', 'वंशी और मादल', 'नाव के पांव', 'माया दर्पण', 'इतिहास पुरुष', 'अकेले कंठ की पुकार', 'एक कंठ विषपायी', 'मुक्ति प्रसंग', 'अतुकांत', 'आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएं', 'अभी बिलकुल अभी','पक गई धूप', 'उजली कसौटी', 'इतिहास का दर्द आदि तथा वे सभी कृतियां जिनकी चर्चा तार सप्तकों के बाहर के कवियों के संदर्भ में की गई है', 'नई कविता की कृतियां हैं। प्रतीक', 'नई कविता', 'निकष', 'संकेत', 'विविधा', 'आदि में संकलित कविताएं भी नई कविता के अंतर्गत आती हैं। कल्पना', 'कृति', 'लहर तथा ज्ञानोदय आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएं भी नई कविता में आती हैं।

प्रयोगवाद ही आगे चलकर नई कविता में परिवर्तित हो गया है। इसलिए नई कविता में प्रयोगवाद के अनेक तत्वों का समावेश मिलता है फिर नई कविता का स्वतंत्र विकास हुआ है। बहुत से ऐसे कवि भी हैं जो दोनों धाराओं में कविता करते रहे हैं। इसलिए उनकी कृतियों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनका मिश्रित रूप है। यह कहना कठिन है कि कहां तक प्रयोगवादी है कहां से नई कविता के कवि बन जाते हैं। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि सन् 1950 ई. के बाद की नए भावबोध की कविताओं को नई कविता की संज्ञा दी जा सकती है और प्रयोगवादियों की भी सन् 1950 ई. के बाद की कविताओं को नई कविता कह सकते हैं। फिर भी सन् 1952 ई. में प्रकाशित तारसप्तक (द्वितीय) की अधिकांश कविताएं अपने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण प्रयोगवाद में ही समाविष्ट की जाती हैं। इसलिए नई कविता को प्रयोगवाद के क्रम में ही मानना औचित्यपूर्ण है। यदि सन् 1950 ई. को विभाजक रेखा मान लिया जाये तो द्वितीय तार–सप्तक की कुछ कविताएं नई कविता के अंतर्गत आ जाती हैं।

उत्तर छायावादी काव्य– उपर्युक्त काव्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के पश्चात् काव्य रूप में इस प्रकार मोड़ आया जो सर्वथा नवीन था उसे प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई। उसके बाद परिवर्तन आते गए। किन्तु छायावाद के पश्चात् ऐसा निश्चित मोड़ नहीं आया जिसे नया नाम दिया जा सके। भारतेंदु युग से चली आती राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा इस काल तक आई। यही स्थिति वैयक्तिक गीतों की रही। छायावाद के बाद काव्य प्रणाली में परिवर्तन आया। यद्यपि छायावादी कुछ प्रवृत्तियां विद्यमान रहीं। इस दृष्टि से उत्तर छायावादी काव्य को – (1)उत्तर छायावाद, (2) वैयक्तिक गीत काव्य तथा (3) राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता तीन उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

(1) उत्तर छायावाद

छायावाद की काल सीमा सन् 1918 से सन् 1939 ई. तक मानी गई। छायावादी महान चतुष्टयी के मूर्धन्य महाकवि जयशंकर प्रसाद की मृत्यु सन् 1936 ई. में हो गई। चतुष्टयी के मात्र तीन ही उत्तर छायावाद में अवशिष्ट हैं। पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत तथा महादेवी वर्मा जिनकी काव्यकृतियों में छायावाद के बाद विशिष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला–निराला के गीत नई संभावनाओं के सूचक हैं। उनमें लोकोन्मुखता की शक्ति का विकास परिलक्षित होता है। यह लोकोन्मुखता निराला काव्य में प्रारंभ से दृष्टिगोचर होती है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक–संपृक्त था। इसलिए स्वाभाविक रूप से वे प्रेम सौंदर्य के साथ–साथ जीवन के अन्य अनुभवों को भी अपने में समेटे हुए हैं। वे व्यक्तिगत प्रणय के गीत न गाकरलोक जीवन से संबंधित सुख–दुख, मानव यातना एवं जीवन संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति करते आए हैं। ऐसे समय में उनकी वैयक्तिक प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न होकर लोक–गंधित हो उठती है। निराला की इस प्रवृत्ति को उत्तर छायावाद कालमें विशेष रूप से विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिसके परिणामस्वरूप उनकी इस प्रवृत्ति ने दो रूप धारण किए –

(1) छायावाद इतर प्रगतिवादी कविताएं लिखना (2) छायावादी काव्यधारा के स्वर का अधिक लोकोन्मुखी होना। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा एवं भाव सभी दृष्टियों से छायावादी प्रभाव से पूर्ण मुक्तता परिलक्षित होती है। इस प्रकार की कविताओं में 'कुकुरमुत्ता', 'प्रेम संगीत', 'गर्म पकौड़ी', 'रानी कानी', 'मास्को डायलाग्स', 'खजोहरा', 'नए पत्ते' तथा 'स्फटिक शिला' आदि। विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें प्रगतिशीलता दार्शनिक रूप में नहीं अपितु लोकानुभूतियों के रूप में है। इनकी भाषा लोकभाषा है। मुहावरे लोक तथा शैली भी लोक हैं। लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली प्रयुक्त है। निराला इस तथ्य से अवगत थे कि लोक जीवन को केवल उसके भाव, दृश्य एवं व्यापार से नहीं ग्रहण किया जा सकता अपितु उस हेतु भाषा अपेक्षित है। निराला ने छायावादी 'अणिमा', 'अर्चना' तथा 'आराधना' आदि कविताओं में एक से स्वानुभूतिपरक गीतों की संरचना की है दूसरी ओर 'विजय लक्ष्मी पंडित', 'प्रेमानंद', 'संत रविदास', 'प्रसाद एवं बुद्ध' आदि व्यक्तियों को अपनी प्रशंसात्मक कविताओं का विषमबनाया है। ये

गीत विभिन्न प्रकार के हैं – प्रेम–संवेदना, प्रार्थना, मानवीय संवेदना आदि की इनमें अभिव्यक्ति हुई है। सन् 1938 ई. से पूर्व की कविताओं में भी निराला की ये विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। अनुपात भिन्नता अवश्य है। 'तुलसीदास' उत्तर छायावाद को निराला की विशिष्ट देन है। जिसमें भारत को सांस्कृतिक एवं सामाजिक पराजय के ग्हवरगर्त से उबारने का दृढ़ संकल्प है। निराला की लोकवादी कविताएं इस युग की नवीन देन हैं यद्यपि उन्हें कविता की इस उपलब्धि के स्वरूप को स्वीकारा नहीं गया है किंतु भाषा एवं नवीन प्रयोग के रूप में उनका विशेष महत्व है। इन कविताओं में ठहराव को तोड़ने की शक्ति है जो जनजीवन से समग्र रूप से जोड़ती है। निराला इस काल की कविताओं में जीवनानुभूति के स्वरों में टूटन एवं पराजय की प्रमुखता है। जो उन्हें भक्ति भावना की ओर प्रेरित करती है। साथ ही कवि का संतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन एवं उलझाव का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएं उस उलझाव से ग्रसित हो जाती हैं।

सुमित्रानंदन पंत–

पंत इस कालावधि में स्वचिंतन एवं विषय में अधिक विकासशील रहे। सन् 1936 ई. में 'युगांत' की घोषणा करके पंत ने सन्1939 ई. में 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। जहां वे मार्क्सवाद, भौतिक दर्शन तथा जन–जीवन के सत्यों की ओर झुक गए। निराला ने चिंतन के द्वारा नहीं अपितु संवेदना और अनुभव के द्वारा जन–जीवन को अपनाया। इसलिए उनके काव्य को मार्क्सवादी या समाजवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं मिल सका। जनजीवन अपने समस्त संवेदन के साथ व्यक्त हुआ। पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्वर पर स्वीकारा। इसलिए वे मार्क्सवादी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति करने में व्यस्त रहे। कवि ने मार्क्सवादी दृष्टि के प्रकाश में ग्रामीण जीवन की विविध छवियों का अति रमणीय चित्रांकन किया है। कुशल शिल्पी पंत को ग्रामीण बाह्य जीवन के यथार्थ ने जितना अपनी ओर आकर्षित किया है उतना आंतरिक चेतना ने नहीं।'ग्राम्या' के पश्चात् का कवि अरविंद के प्रभाव में आकर प्रगतिवाद के भौतिक भटकाव से मुक्त होकर आध्यात्मिक लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। जिससे वैचारिक स्तर पर छायावाद को एक नवीन दिशा एवं समृद्ध आधार सुलभ हो जाता है। मार्क्सवाद से संतुष्ट न होकर उसकी आवश्यकता को स्वीकारता है। प्रारंभ से ही कवि मानस मात्र के सुख, प्रेम एवं शांति का प्रबल आकांक्षी रहा है। पंत इस तथ्य से अवगत थे कि एकांगी मार्क्सवाद मात्र भौतिक योग क्षेम की व्यवस्था करने में समर्थ है। इसे पर्याप्त न मानकर पंत अरविंद में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद को समन्वित करने की अन्वेषणा करने में लग जाते हैं। समन्वय का यही स्वर उनकी परवर्ती रचनाओं 'स्वर किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'शिल्पी' तथा 'लोकायतन' में दृष्टिगोचर होता है। पंत की काव्य विकासीय यात्रा में काव्य पक्ष दबता गया है, धारणा पक्ष उठता गया है जिसके परिणामस्वरूप वे मानव समाजकी समस्याओं, उनके समाधानों तथा नवीन विचारों को धारणा एवं आकांक्षा के स्तर पर स्वीकारते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। मार्क्सवाद एवं अरविंद दर्शन दोनों ही पंत काव्य को समृद्ध बनाने में सहायक एवं सफल नहीं हो सके हैं।

महादेवी वर्मा–

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा का उत्कृष्ट काव्य है। प्रेम उनका प्रमुख विषय है। संयोग–वियोग के उभार में प्रेम को विभिन्न दृष्टिकोणों से उन्होंने अपने अनुभव के आलोक में झांका है। वेदना उनकी मूल संवेदना है जो विरह जन्य है। करुण वेदना एवं निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' कुछ आलोक प्राप्त करने में सफल हो सका है। आशा, उल्लास एवं मिलन भाव द्रष्टव्य हैं–

(1) सब बुझे दीपक जला लूं।

फिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(2) हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन।

अगरु धूम सी सांस सुधि गंध सुरभित।

महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की अति संभावना है। लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता कोकुंठित करने में सफल हो जाता है। संवेदनाएं सीमित हैं जो विभिन्न प्रतीकों एवं रूपकों के आधार पर अभिव्यक्ति प्राप्त करतीहैं। प्रतीक एवं रूपक भी अति सीमित एवं अभिजात हैं। लौकिक संवेदनाएं रहस्यवादी आभास से संपृक्त होकर नए अर्थ का विस्तार करती हैं किन्तु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षतातथा तीव्रता विलीन हो जाती है। महादेवी के प्रमुख प्रतीक चंदन, दीप, मेघ, क्षितिज, मंदिर, करुण, आकाश, धूलि, सागर, विद्युत हैं जिन्हे पुनः–पुनः भावाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता है। परिणाम यह होता है कि रहस्यात्मक संकेत उन्हें उलझा लेते हैं। वैयक्तिक एवं छायावादी सीमाओं के होते हुए भी महादेवी छायावाद की विशिष्ट ही नहीं समर्थ कवयित्री हैं तथा 'दीपशिखा'उनकी विशिष्ट कृति है। रहस्य एवं संकोच के आवरण के होते हुए भी कवयित्री की अंतरंग निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। कहीं–कहीं उनकी पारदर्शिता समग्र दृश्यों को समेटकर उसी की ओर सांकेतित करने लग जाते हैं वहां उनके गीतोंकी रचना अति उत्कृष्टता को प्राप्त करती है। महादेवी के गीतों में सूक्ष्म चित्रात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। उनके चित्र रूप जगत तथा भाव जगत दोनों के हैं। रूप जगत के चित्रों की संयोजना कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही की गई है। लोक परिवेश और लोक भाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करने वाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द चयन, पद संतुलन, बिंब ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर लय में अपनी अति विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं। वैयक्तिक गीति काव्य– कवि दृष्टि एवं विषय के दृष्टिकोण से छायावाद एवं वैयक्तिक गीति काव्य में अत्यधिक समानता है। कवि दृष्टि रोमानी है वस्तु जगत के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अत्यंत भावुक है। इनका संबंध वस्तु जगत से नहीं अपितु वस्तु जगतकी प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न स्व सुख–दुखात्मक आवेग से था। इनकी कविताओं में भयंकर आत्म संपृक्ति एवं उत्तेजना मिलती है। इनका काव्य विषय मूलतः सौंदर्य एवं प्रेम तथा उसके कारण उत्पन्न उल्लास एवं विषाद की अनुभूति थी। गीति को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। क्योंकि इनके काव्य विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। इनकी कृतियों में संकोच, रहस्यमत्यता तथा आदर्शवादिता को स्थान नहीं मिला है। बड़े उत्साह के साथ स्पष्ट तौर पर ये अपने वैयक्तिक प्रेम संवेग एवं सुख–दुख को व्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं। इनकी वेदना सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव का बिंब उकेरने में पूर्ण सफल हैं। 'मैं' द्वारा वैयक्तिक गीत स्व अनुभव व्यक्त करते हैं। वैयक्तिक गीत काव्य का 'मैं' बिना किसी संकोच, मर्यादा, भय या आतंक डर के निर्बाध भाव से राग विराग के साथ स्वतः बह निकलता है। वैयक्तिक गति काव्य धारा का मूल स्वर प्रेम है। प्रेम जन्य व्यथा एवं उदासी सर्वत्र व्याप्त है। इनकी स्वच्छंद वृत्ति सौंदर्य और प्रेम की पिपासा लिए उड़ान भरती है, उसकी तृप्ति कहीं नहीं हो पाती थी जिससे उड़ान की तीव्रता में इनका सामाजिक प्रतिबंधों से टकराव होता था। परिणाम टूट जाते थे। टूटन विरह व्यथा का रूप धारण कर लेती थी जिससे कवि को यह अनुभूति होती थी कि विश्व को उसके ये गीत वासना के गान प्रतीत हो रहे हैं। अनुभव के इन सत्यों को उसका स्वच्छंद हृदय अनियंत्रित, निर्लिप्त भाव से गाना चाहता था। हरिवंश राय बच्चन ने अपने और सामाजिक तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में लिखा है–

(1) "कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्‌गार मेरा।"

(2) "वृद्ध को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।"

"शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।"

निराशा एवं उदासी के स्वर की मुखरता मात्र प्रेम मूलक नहीं है अपितु जीवन के अन्य संदर्भों को भी उसकी मुखरता का अवलोक कहा जा सकता है। देश की परतंत्रता, सामाजिक कुरीतियों अंध विश्वासों, धार्मिक बाह्याडंबरों, आर्थिक विषमता आदि के अनुभव की भयंकरता से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानव पुनः पुनः अपनी टूटन का अनुभव कर रहा है। उसका वैयक्तिक आक्रोश का स्वर संपूर्ण कुरूपताओं को अस्वीकारता हुआ,

स्वयं को कहीं स्वीकृत न पाता हुआ 'स्व' में ही प्रत्यावर्तित हो जाता था। अपने को आत्मपीड़न, कुंठा, संत्रस, टूटन, घुटन की एक नवीन चादर से आच्छादित कर उन्हीं अनुभूतियों को गाता चलता था। इनके पास जीवन दृष्टि का अभाव था न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि थी न नवीन

समाजवादी दृष्टि। इनके अनुभव ही इनका परिचालन कर रहे थे। इनके अनुभव भावुक हृदय के अनुभव थे। उनका दृष्टिकोण रोमानी था अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके न आध्यात्मिक आदर्शों से। जीवन दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, मृत्यु की छाया और नियति बोध से ग्रसित हैं। इनका अनुभव जहां अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, किंतु खुले हुए बिंबों की रचना में एक नवीन साहित्यिक सौंदर्य की सृष्टि करता है। वहां अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और अपने दोहराव में क्षयोन्मुख दृष्टिगोचर होने लगता है। जहां यह काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाता है वहां अपनी सार्थकता किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाता है।

"कितना अकेला आज मैं

संघर्ष में टूटा हुआ

दुर्भाग्य से लूटा हुआ

परिवार से छूटा हुआ, किंतु अकेला आज मैं।"

–एकांत संगीत

वह अकेला अपने चारों ओर मात्र अवसाद देखता है। अवसाद खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि का साथ ईश्वर ने भी छोड़ दिया है। देवता भी नहीं है। समाज की रूढ़िवादिता भी नहीं है। कोई संस्था नहीं है। उसे किसी का आश्रय अर्थात् तिनके का भी सहारा प्राप्त नहीं है। सहारा मात्र प्रेयसी के मिलन की आशा है जो दूर कहीं तारा सी टिमटिमा रही है किन्तु मृग मरीचिका में प्रेयसी से मिलन भी नहीं हो पाता है। ऐसी अवस्था में कवि अपनी नंगी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष झेलता हुआ जीवन को असफल एवं निराधार अनुभव करता है। इस प्रकार की वैयक्तिक, निराशापूर्ण, निराधार अनुभव–यात्रा के दो परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं–(1) यह विश्वास निश्चित हो गया है कि जीवन क्षणभंगुर है। इस अवसाद–विषय के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो। भोग के समय आगा–पीछा मत देखो।

(2) कवि को विश्वास है मद्यपान दुखों से छुटकारा दिलाता है इसलिए अपने दुखों को भुलाने के लिए मधु का सहारा लेता है। क्योंकि अन्य सहारों का उसे सहारा नहीं है। इतना ही नहीं वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास की उत्तेजना को तीव्र करने हेतु मधुशाला के मार्ग पर चल पड़ता है क्योंकि मधुपान करना चाहता है। यह मधु शनैः शनैः इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन सत्यों का प्रतीक बन जाता है। 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला'में ऐसा ही हुआ है। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं–कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ है जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल' नरेन्द्र शर्मा के 'अग्निशस्य' अंचल की 'किरण बेला' तथा शंभुनाथ सिंह के 'मन्वंतर' आदि में। समाज में व्याप्त असंतोष तथा वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबल भावना के कारण कवियों में विद्रोही भावना परिलक्षित होती है। विद्रोह के ये दो प्रमुखकारण हैं किन्तु इस धारा में व्याप्त समस्त विद्रोह स्वर मूलरूप से समान है। उसमें वैयक्तिक भावावेश का आधिक्य है। सामाजिक दर्शन तथा रचनात्मक चिंतन अपेक्षाकृत न्यून है।

अभिव्यक्ति की सादगी वैयक्तिक गीति काव्य की प्रमुख विशेषता एवं देन है। कवि अति सीधे–सादे शब्दों का प्रयोग करके अपने गहनातिगहन भावों की अभिव्यक्ति अति सहजता एवं सरलता से करता है। सर्व परिचित चित्रों, तथा सरल, लघु, सारगर्भितकथन भंगिमा से अपने कथ्य को सहृदय तक प्रेषित कर देता है। इसलिए कवि की शक्तियां–अशक्तियां दोनों अति स्पष्टता से उभर कर सामने आती हैं। शक्तियों की यह विशेषता है कि वे अस्पष्ट बिंबों में अपने को उलझाकर अपनी तीव्रता एवं प्रभाव नष्ट नहीं करती हैं तथा अशक्तियां रहस्यात्मकता का

लाभ उठाकर अपनी महानता को आभासित नहीं कर पातीं। गीति काव्य के कवियों की संवेदना भक्तिवादी है। किन्तु वे अपने को जिस माध्यम, परिवेश, प्रकृति चित्र, बिम्ब, उपमा, भाषा आदि के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह अति परिचित होता है, लोक का निकटस्थ होता है इसलिए मांसल एवं मूर्त की प्रतीति करवाता है। काव्य भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी शब्द चयन, पद विन्यास हमें अपना सा प्रतीत होता है। बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग भाषा को जीवंत रूप प्रदान करता है। वैयक्तिक गीति काव्य धारा के कवियों में हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम प्रमुख हैं–

हरिवंशराय बच्चन–

वैयक्तिक गीति काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हरिवंश राय बच्चन हैं। धारा की समस्त संभावनाएं एवं सीमाएं बच्चन में एकत्रित हैं। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। आत्मानुभूति की सघनता वाली कृतियां तीव्र प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी हैं। आत्मानुभूति के साथ अवधारणा का समावेश हो जाने के परिणामस्वरूप प्रभावान्विति टूट–टूट गयी है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से यदि गीत काव्य की उपलब्धियां हैं तो अवधारणाएं अनुभूतियों के रंग में सरोबार हैं। बच्चन ने स्वानुभूति जन्य सौंदर्य, सुख–दुख तथा प्रेम विषयक गीत अति उन्मुक्तता तथा सहजता से गए हैं। यहीं तक अपने को सीमित न करके सामाजिक विकृतियों के चित्रण तक पहुँचाया है। उनके प्रति विद्रोही भावना भी दृष्टिगोचर होती है। बच्चन के गीतों ने अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के फलस्वरूप गीति काव्य को नवीन गरिमा प्रदान की है। लेकिन जब उनमें उत्तेजना आ जाती है, भाषा सपाट हो जाती है, शब्द बिंबों का अपव्यय होता है तथा स्फीति आ जाती है तब अप्रभावी हो जाते हैं। बच्चन के काव्य सौंदर्य के धरातल, ऊंचाई–निचाई एवं सपाटता की अत्यधिक विषमता दृष्टिगोचर होती है। बच्चन ने निर्भय भाव से अपने परिचित विश्व का परित्याग कर यथार्थवादी नवीन विश्व में पदार्पण किया है तथा उसके अनुसार भाषा की खोज की है।

नरेंद्र शर्मा

नरेंद्र शर्मा के गीत अपनी विशिष्टता के फलस्वरूप औरों से भिन्न हैं। उनमें आत्मीयता एवं चित्रात्मकता की प्रधानता है। सुख–दुख का निवेदन बिना किसी माध्यम के सीधे प्रेम पात्र को किया गया है। माध्यम के अतिरिक्त किसी अवधारणा या छलकपट अथवा बांकपने को भी अवसर नहीं मिला है। गीतों के परिवेश में कवि एवं सहृदय दोनों के परिवेश का समन्वय होता है। जो कवि के अनुभवों को जीवंत बनाता है। ऐसा लगता है नरेंद्र शर्मा के गीत अपने हैं। इनमें प्राकृतिक परिवेश भी होता है। नरेंद्र के गीति काव्यों का विषय मानवीय सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य तथा तज्जन्य विरह मिलन की अनुभूतियां हैं। इन्होंने सामाजिक यथार्थ का सफल चित्रण किया है। सामाजिक विसंगतियां इनके लिए असह्य हैं इसलिए उनके प्रति इनकी विद्रोही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। नरेन्द्र की दृष्टि रोमानी है जिसमें सामाजिकता का समावेश है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' व्यक्तित्व– रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का जन्म सन् 1915 ई. में किशनपुर में हुआ था। एम.ए. की शिक्षा प्राप्त करके जबलपुर के इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजेज़ ऐंड रिसर्च के हिंदी विभागाध्यक्ष रहे। बाद में राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रायगढ़ के आचार्य हो गए।

साहित्यिक विशेषताएं– 'अचंल' तीव्र रोमानी संवेदना के कवि हैं उनकी यायावर प्रवृत्ति के फलस्वरूप उनक सामाजिक यथार्थ वाले काव्यों में रोमानी संवेदना प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती है। रूपा सक्ति, वासना, पीड़ा एवं जिजीविषा में इनका अनुपम रूप ही दिखलाई पड़ता है जिसने इनके काव्य का सृजन किया है। वासना की प्रबलता इनके काव्य को सामाजिक संयम से अलग कर देती है। रचनात्मक स्तर पर उनमें गहनता तथा संश्लिष्टता का अभाव आ जाता है उसका स्थान उत्तेजना ग्रहणकर लेती है। 'अंचल' के व्यक्तित्व पर स्नायविक तनाव इतना हावी

है कि वे लगातार येन केन प्रकारेण काव्य में श्रृंगारिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते रहते हैं इसके अभाव में उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती है।

9. प्रगतिवादीः प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

पंत के अनुसार– "छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अदृश्य शिखर पर विराम करने वाली कल्पना" को जन जीवन का सच्चा मित्र अंकित करने के लिए "एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती" की आवश्यकता थी। प्रगतिवाद उपर्युक्त व्यष्टिगत भावना की अवहेलना कर समष्टिगत स्वरूप को लेकर आगे बढ़ा और उसने "अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली" कल्पना को "एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती" पर उतार कर उसे जन–जीवन का चित्रण करने के लिए प्रेरित किया। जिस समय छायावाद अपने व्यष्टि की साधना में तन्मय, जगत की वास्तविकता की ओर से आंखें बंद करके आत्म विभोर होकर आगे बढ़ा जा रहा था उसी समय जगत की नग्न वास्तविकता, "रोटी का राग" और "क्रांति की आग" लिए प्रगतिवाद आगे आया तथा उसने झकझोर कर साहित्यकार को एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना का आलोक दिखाया। उसने छायावाद की अति सूक्ष्म काल्पनिक भावनाओं का विरोध कर उसे स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता के समक्ष खड़ा कर दिया। कुछ लोगों की मान्यता है कि प्रगतिवाद विचारधारा की देन है।

प्रगति का सामान्य अर्थ है– प्रगति शब्द अंग्रेजी के 'प्रोग्रेस' का रूपांतर है। 'प्रोग्रेस' का अर्थ आगे बढ़ना। ऐसा परिवर्तन लाना जो किसी गुण या परिणाम में वृद्धि ला सके। प्रगति का अर्थ है, जीवन को आगे बढ़ाना,जो व्यवस्था है उसमें परिवर्तन लाना। इस प्रकार प्रगतिशील साहित्य का अर्थ हुआ– "ऐसा साहित्य जो परिवर्तन की अपेक्षा रखता है, जीवन की स्थितिशीलता के स्थान पर उसमें गतिशीलता ला देता है।"

ई.एम. फोटेर ने 1935 में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' की स्थापना की थी। 1936 में उसी की एक शाखा के रूप में भारत में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद की विशेष भूमिका थी। शुरू में प्रगतिशील लेखक संघ काढाँचा काफी उदार था और प्रगतिशील विचार रखने वाले सभी लोग, चाहे उनकी विचारधारा कोई भी हो, उससे जुड़ते थे। कुछ ही समय में स्पष्ट हो गया कि यह मंच मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थन को प्रगतिशील होने की शर्त मानता था। यह धारणा स्पष्ट होने के बाद इस संगठन में वही रचनाकार बचे जो मार्क्सवाद में निष्ठा रखते थे। शेष रचनाकारों ने स्वयं को इस मंच से अलग कर लिया और दावा किया कि प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद दो अलग धारणाएँ हैं।

कुल मिलाकर, वर्तमान में प्रगतिवाद से आशय उन कवियों के आंदोलन से है जो मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर अपनी विषय–वस्तु और रचना प्रक्रिया निर्धारित करते हैं। ऐसे कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, गजानन माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, रामविलास शर्मा आदि प्रमुख हैं। दिनकर भी काफी हद तक प्रगतिवाद की धारा में शामिल होते हैं, यद्यपि वे सिर्फ मार्क्सवाद के प्रति न होकर कई विचारधाराओं में संतुलन साधने की कोशिश करते हैं।

प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. रूढ़ियों का विरोध– प्रगतिवादी कवियों का ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परमात्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उनकी दृष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि है। उनके लिए धर्म एक अफीम का नशा है। प्रगतिवादी कवियों ने अंधविश्वास और रूढ़ियों पर गहरा प्रहार किया है।

2. शोषकों के प्रति विद्रोह– शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रगतिवादी कवियों ने शोषक वर्ग को घोर स्वार्थी, निर्दयी एवं कपटी के रूप में चित्रित किया है। इनकी मान्यता है कि पूँजीपति निर्धनों का रक्त चूस–चूसकर सुख की नींद सोते

हैं। वह बड़े व्यापारी, जमींदार तथा उद्योगपति जैसे शोषकों के चिथड़े–चिथड़े होते हुए देखना चाहता है। उनकी दृष्टि में शोषण की नींव पर खड़े समाज का नष्ट हो जाना ही श्रेयस्कर है– दिनकर के शब्दों में –

"श्वानों को मिलता वस्त्र, दूध बच्चे अकुलाते हैं,

माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।।"

इस काव्यधारा का मूल केन्द्र शोषित वर्ग है। कवियों ने शोषण से पीड़ित मजदूरों और किसानों की करुण दशा का सुन्दर चित्रण किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'भिक्षुक' का वर्णन इस प्रकार करते हैं – "वह आता दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।"

3. क्रांति की भावना– प्रगतिवादी कवियों ने शोषित वर्गों के प्रति सहानुभूति दर्शाने तथा प्राचीन परम्पराओं को नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया है। वे समानता स्थापित करने के लिए समाज में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की यह पंक्तियाँ देखने योग्य हैं–

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,,

जिससे उथल–पुथल मच जाए।"

4. यथार्थ चित्रण– प्रगतिवादी काव्य में निम्नवर्ग के जीवन की प्रतिष्ठा हुई। इससे पहले साहित्य में मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ था। कवियों ने प्रकृति के रमणीय चित्र खींचने की बजाय नगर और ग्रामीण जीवन के नग्नयथार्थ रूप का चित्रण किया है। शोषण के दुष्परिणाम दिखलाने के लिए उन्होंने ऐसा वर्णन किया है। निम्न वर्ग के कुरुचिपूर्ण जीवन के साथ उन्होंने सहानुभूति व्यक्त की है। एक उदाहरण देखिए–

"सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर,

महक जिन्दगी के गुलाब की भर जाती है।।" –केदारनाथ अग्रवाल

कवि को व्यक्ति तथा समाज के कटु सत्यों के सामने ऐश्वर्य, विलास एवं मादक वसंत सभी फीके लगने लगते हैं। जीवन के अनाचार, पीड़ित की हाहाकार ने उसे व्यथित बना दिया है। ताजमहल के संबंध में पंत जी लिखते हैं–

"हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन

जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।"

इसी प्रकार भारत के ग्रामों का वर्णन करते हुए कवि पंत लिखते हैं–

"यह तो मानव लोक नहीं है, यह है नरक अपरिचित।

यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित।"

5. मानवतावादी दृष्टिकोण– प्रगतिवादी साहित्यकार मानव की शक्तियों पर असीम आस्था रखता है। उसके अनुसार ईश्वर नहीं, मानव ही अपने भाग्य का निर्माता है। ईश्वर के नाम पर हो रहे शोषण से कुपित होकर वह कहता है–

"जिसे तुम कहते हो भगवान
जो बरसाता है जीवन में
रोग, शोक, दुःख–दैन्य अपार
उसे सुनाने चले पुकार।"
उसे ईश्वर पर आस्था नहीं है।

6. मार्क्स का गुणगान– प्रगतिवादी कवियों ने इस बात का बिना विचार किए हुए कि रूस की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी हैं या नहीं, धारा के बहुत से कवियों ने मार्क्स और रूस का गुणगान किया है। पंत जी कार्ल मार्क्स के प्रति कुछ इस प्रकार के भाव प्रदर्शित करते हैं –

"धन्य मार्क्स चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।"

उपर्युक्त पंक्तियों में पंत जी ने मार्क्स को प्रलयंकारी शिव का तीसरा नेत्र बताया है तो नरेन्द्र शर्मा रूस का गुणगान करते हुए कहते हैं–

"लाल रूस है ढाल साथियों
सब मजदूर किसानों की।"

7. सांस्कृतिक समन्वय– प्रगतिवादी साहित्यकार की दृष्टि व्यक्ति, परिवार, स्वदेश तक सीमित न होकर सम्पूर्ण विश्व तकव्याप्त है। उसका स्वर मानवतावादी है। जापान के ध्वस्त नगरों की पीड़ा से वह भी व्यथित है। अतः यह क्रन्दन और चीत्कार कर पुकार उठता है–

"एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जाएगा
जिसने मिटाया है मुझे, वह भी मिटाया जाएगा।"

प्रगतिवादी कवि की दृष्टि में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी मानव के नाते बराबर हैं।

8. नारी भावना– प्रगतिवादी कवि नारी–स्वतंत्रता का पक्षधर है। उसने नारी को पुरुष के समकालीन उसकी सहयोगिनी के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही उसे उसका हक दिलाने के लिए प्रबल आवाज भी उठाई है। प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है जो कि युग–युग से सामंतवाद की धारा में पुरुष की दासता की श्रृंखलाओं में बन्दिनी के रूप में पड़ी है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी है और वह पुरुष की वासना–तृप्ति का उपकरण मात्र रह गई है। अतः पंत कहते हैं –

"योनि नहीं रे नारी, वह भी मानव प्रतिष्ठित है।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रे न नर पर अवसित।।"
कवि पंत पुनः कहते हैं – "मुक्त करो नारी को।।"

9. वेदना चित्रण– प्रगतिवाद की वेदना संघर्षों से जूझने की सामाजिक वेदना है। निराशा के लिए उसमें कोई स्थान नहीं। प्रगतिवादी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं जिसमें वर्ग भेद, शोषण और रूढ़ियों का नामोनिशान नहीं होगा। कवि केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'बाप बेटा बेचता है' में गरीब आदमी की दशा का चित्रण किया है।

"बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर,
धर्म धीरज प्राण खोकेकर, हो रही अनरीति बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है।।"

नागार्जुन आज की थोथी आजादी पर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं –

"कागज की आजादी मिली
ले लो दो–दो आने में।।"

10. शिल्प योजना– प्रगतिवादी साहित्य जनता का साहित्य है। इसलिए उसकी भाषा भी जनभाषा है। भाषा सरल है। प्रगतिवादी कवियों का आदर्श था ''जन–जन तक अपने विचारों को पहुँचाना।'' इसके लिए उन्होंने बोलचाल की शब्दावली को भी ग्रहण किया है। प्रायः इस युग का साहित्य अभिधा प्रधान है। अलंकारों के सहज प्रयोग से अभिव्यक्ति स्पष्ट है। प्रगतिवादी काव्य में मुक्तक और अतुकान्त छंदों के साथ गीतों और लोकगीतों की शैली का भी प्रयोग किया गया है। प्रगतिवादी काव्य का अपना अलग महत्व है। वह जीवन के भौतिक पक्ष का उत्थान करना चाहता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में – "भारत में प्रगतिवाद का भविष्य साम्यवाद के साथ बंधा हुआ है। लेकिन फिर भी आधुनिक काव्य के अध्येयता को उसका अध्ययन आदर और धैर्यपूर्वक करना होगा। उसने हिंदी काव्य को जीवंत चेतना प्रदान की है। इसका निषेध नहीं किया जा सकता।" इस प्रकार प्रगतिवादी कविता का अपना महत्व है।

10. प्रयोगवादी प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

छायावादी एवं प्रगतिवादी कुछ कवियों का विद्रोह अपनी मूल प्रवृत्ति में दब नहीं सका वह अनुकूल परिवेश एवं वातावरण में उभरता रहा और प्रयोगवाद के रूप में विकसित हुआ। वैसे प्रयोग प्रत्येक काल, युग या समय में होता रहता है किन्तु इस कालावधि में प्रवृत्ति विशेष के रूप में विकसित हुआ। अपने क्रमिक विकास में प्रगतिवाद ने प्रयोगवाद को विकसित किया। हिंदीमें काव्य की नवीनतम प्रवृत्तियों का आरम्भ 'तार सप्तक' के प्रकाशन सन् 1943 ई. से माना जा सकता है। पुरानेपन के प्रति सबके मन में असंतोष की भावना थी जिससे नवीनता की खोज में नए–नए प्रयोगों में जुट गए। ऐसे ही वैचारिक संक्रांति बिंदुपर 'अज्ञेय' ने अपने मित्रों – डॉ. रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा भारतभूषण अग्रवाल के सहयोग से 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया। जिसके संबंध में पंत ने लिखा कि अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का संपादन करके हिंदी पाठकों के लिए प्रयोगशील कविता का सर्वप्रथम संग्रह प्रस्तुत किया। 'तारसप्तक' के सात कवियों के एकत्र होने का एक विशिष्ट कारण एवं प्रयोजन था। वे एक स्कूल के नहीं थे, किसी मंजिल पर पहुँच हुए राही नहीं थे, राही नहीं वे राहों के अन्वेषी थे। काव्य के प्रति इनका एक अन्वेषी दृष्टिकोण था और दृष्टिकोण की समानता ने ही इन्हें एकत्रित किया था।

'तारसप्तक' के समान अज्ञेय द्वारा संपादित सन् 1946 ई. की पत्रिका 'प्रतीक' को भी प्रयोगवादी कविता का मुख्यपत्र कहा जा सकता है क्योंकि द्वितीय महायुद्ध के आस–पास ही साहित्यिक चेतना 'प्रतीक' के माध्यम से ही सर्वप्रथम मुखरित हुई थी। प्रयोगवाद नाम से भ्रम उत्पन्न होता है कि इन कवियों ने प्रयोग को साध्य मानकर एक नया वाद चलाया। अज्ञेय के दृष्टिकोण से प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है वरन् वह साधन है। दोहरा साधन–

(क) सत्य को जानने का साधन जिसे कवि प्रेषित करता है।

(ख) उस प्रेषण–क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है।

'तारसप्तक' के कवियों में एकरूपता नहीं है। इनके तीन वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं–

(1) कुछ ऐसे हैं जो विचारों से समाजवादी हैं और संस्कारों से व्यक्तिवादी –

जैसे शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन।

(2) कुछ ऐसे हैं जो विचारों और क्रियाओं दोनों से समाजवादी हैं –

जैसे रामविलास शर्मा तथा गजाननमाधव मुक्तिबोध।

(3) कुछ ऐसे हैं जो प्रगतिशील कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन–मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य यासत्याभास मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन में तड़पने वाली गहरी संवेदनाओं को ही रूपायित करना चाहते हैं।

छायावादी काव्य की भाव–वस्तु और उसके शिल्प विधान के प्रति विद्रोह, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों का जन्म एक ही परिवेश में हुआ। प्रगतिवाद के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली प्रतिक्रियावादी विचारधारा प्रयोगवाद है।

इस काव्यधारा की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. वैयक्तिकता– प्रयोगवादी कविता में वैयक्तिकता की अभिव्यंजना अनेक रूपों में हुई है। सामान्य रूप में, रचनाकार की यही आत्मानुभूति सर्वानुभूति बनकर साहित्य की संज्ञा धारण करती थी, और करती है, लेकिन सबसे पहले प्रयोगवादी काव्य में नितान्त व्यक्ति की अपनी अनुभूति और भावना अभिव्यंजित हुई है। प्रयोगवादी कवियों के अहंभाव से ही उनमें गहन वैयक्तिकता पैदा हुई है। वहाँ पर अहं एक सम्पूर्ण वाद के रूप में आया है। कवि नरेश कुमार कहते हैं–

"विश्व के इस रेल–वन पर
मैं अहं का मेघ हूँ
क्या नहीं तुम देखते?
आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ है।"

अज्ञेय ने भी इस अहंनिष्ठ वैयक्तिकता को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है। अज्ञेय को इस बात का पूर्वाभास था कि प्रयोगवादी कवि जिस गहन वैयक्तिकता से परिधित हैं, वह उनका वरेण्य नहीं हो सकता है, जिससे उनको निकाल नहीं पड़ेगा। 'हरी घास पर क्षण भर', 'कितनी शांति', 'छंद है यह फूल' आदि कविताओं में अहं की काया से मुक्त होने की कामना को कवि ने रेखांकित किया है।

2. अति बौद्धिकता– अतिश बौद्धिकता प्रयोगवादी काव्य की अन्यतम विशेषता है। प्रयोगवादी कवि सारे तथ्यों का दर्शनबुद्धि के ही आलोक में करते हैं। धर्मवीर भारती के अनुसार 'इस बौद्धिकता का जन्म हर भावना के आगे लगे हुए एक प्रश्नचिन्ह से होता है। वे लिखते हैं कि 'प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिन्ह उसी की ध्वनिमात्र है।' डॉ. नगेन्द्र को इस काव्य में 'बौद्धिकता के व्यवहार पर चिन्ता है। वे कविता में राग तत्व को ही प्रधान मानते हैं, क्योंकि उनका दृष्टिकोण है कि जिस काव्य में बुद्धित्व रागतत्व से प्रबल हो जाता है, वहाँ काव्यात्मकता धूमिल हो जाती है।'

प्रयोगवादी कविता की अतिशय बौद्धिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्रयोगवादी कवियों ने आक्रोश, झुँझलाहट, व्यंग्य, विद्रोह, सत्यकथन, स्वविश्लेषण, पर–विश्लेषण तथा तथ्य–निरूपण पर अपने बौद्धिक उत्कर्ष का परिचय दिया है। अज्ञेय की 'हरी घास पर क्षणभर' काव्य संग्रह में अनेक कविताएँ बौद्धिकता से उत्पन्न हुई हैं। एक उदाहरण अवलोकनीय है–

"चलो उठें अब
अब तक हम थे बन्धु
सैर को आए
और रहे बैठे तो
लोग कहेंगे
धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी
तो यह हरी घास ही जाने"

संशय और प्रश्नाकुलता इस अवतरण–संदर्भ को बौद्धिकता से बांध रही है। कवि के मन में समाज से एक अज्ञात भयसमाया हुआ है। यहाँ पर तर्क का आश्रय लेकर कवि ने अपनी उसी सन्देहास्पद स्थिति को स्पष्ट करना चाहा है।यह बौद्धिकता प्रयोगवाद में कई रूपों में प्रकट हुई है। अज्ञेय और मुक्तिबोध आदि तो स्वयं अपने का विश्लेषण करते हुए इसका सहारा लेते हैं और प्रभाकर माचवे तथा भारतभूषण आदि वार्तालाप की शैली में इसकी अभिव्यक्ति करते हैं।

3. अनास्था– बौद्धिकता से रागतत्व नष्ट हो जाता है और रागात्मिका शक्ति के विनाश से ही सशंय और अनास्था की उत्पत्ति होती है। अतिशय बौद्धिकता के कारण ही प्रयोगवादी कविता में अनास्था की भावना उत्पन्न हुई है। इसी अनास्था के कारण प्रयोगवादी कवियों के मन में निराशा, कुण्ठा, पाप–बोध, वेदना और पराजय की भावना को स्थान मिला है। अज्ञेय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध आदि रचनाकार ने अपने काव्य में अनास्था के कारण पूजा की एक नयीं व्याख्या करते हुए कहते हैं –

"मैं छोड़ कर पूजा
क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार
बाँधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ।।
सुन रही है तू?
मैं खड़ा तुमको यहाँ ललकारता हूँ।।"

'सागर–मुद्रा' में अज्ञेय ने युग–युग से कृष्ण के पवित्र–प्रतिष्ठित प्यार को प्रश्न के घेरे में घेर दिया है। वे 'कन्हाई ने प्यार किया' नामक कविता में कृष्ण के प्यार पर उँगली उठाते हुए कह रहे हैं कि –

"कन्हाई ने प्यार किया कितनी गोपियों को कितनी बार।
पर उड़ेलते रहे अपना सारा दुलार
उस एक रूप पर जिसे कभी पाया नहीं
जो कभी हाथ नहीं आया।
कभी तो प्रेयसी में उसी को पा लिया होता
तो दोबारा किसी को प्यार क्यों किया होता?"

4. आस्था की भावना– प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविताओं में अनास्था और शंका को ही नहीं, आस्था और विश्वास को भी स्थान दिया है। उनकी यह आस्था उनकी अनास्था से ज्यादा सहज और शक्तिवान् लगती है। यद्यपि ये कवि निराशा, कुण्ठा, वेदना और पराजय की भावना से ग्रस्त हैं, फिर भी ये उसी के अन्तराल से ऊर्ध्वगामी चेतना का उन्मेष करते हैं, अपनी रुग्ण मानसिकता को स्वस्थ आलोक प्रदान करते हैं। अज्ञेय आस्था के प्रति कृतज्ञता और उसकी सुदृढ़ता की कामना व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि–

"हम में तो आस्था हैं, कृतज्ञ होते।. . .
आस्था न काँपे
मानव फिर मिट्टी का भी, हो जाता है।।"

प्रयोगवादी कवियों ने पराजय, अविश्वास तथा मरण का ही वरण नहीं किया। यदि उनमें ऐसा ही भाव होता तो प्रभाकर माचवे प्रकाश–प्रसन्न ऐसी उत्साहित कविता क्यों लिखते–

"नया प्रकाश चाहिए, नया प्रकाश चाहिए

पुकारती दिशा–दिशा

मिटे तृण्णा, मिटे निशा

बहुत हुआ उदास मन

हमें सुहास चाहिए"

प्रयोगवाद के सम्पूर्ण भाव–बोध को देखकर कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कवियों की पराजय और अनास्था की भावना एक सीमा तक है। उसके बाद उनकी समस्त रुग्ण मानसिकता आस्था की सजल सरिता में स्नान होकर स्वस्थ और सबल बन जाती है। यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जीवन की निर्मिति एक जैसे प्रकृति तत्वों के सम्मेल से नहीं हो सकती है। सुख–दुःख, आस्था–अनास्था, जय–पराजय के ताने–बाने से ही उनकी सफल रचना होती है। ये द्वंद्व ही जीवन को अस्तित्व प्रदान करते हैं। और जीवन को अपने चक्राकार भ्रमण से व्याप्त बनाते हैं।

5. यथार्थ चित्रण– माना जाता है कि प्रगतिवाद में समाजवाद की और प्रयोगवाद में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा हुई है लेकिन जहाँ तक दोनों के तात्त्विक स्वरूप का प्रश्न है, दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्ति का अध्ययन समाज से शुरू होकर व्यक्ति पर पहुँचता है और प्रयोगवाद के अंतर्गत यही अध्ययन व्यक्ति से शुरू होकर समाज तक पहुँचता है। दोनों धाराओं के अंतर्गत व्यक्ति की सत्ता को अस्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि समाज की निर्मित व्यक्ति से ही तो होती है। डॉ. रघुवंश ने प्रयोगवादी सामाजिकता के संदर्भ में लिखा है कि इन सभी कवियों में सामाजिकता के प्रति जागरूकता है, इनमें से कोई भी उस कोटि का असामाजिक नहीं है, जिस कोटि के यूरोप के पिछले युग से ही भिन्न वादों के अंतर्गत हुई हैं।

अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा आदि सभी कवियों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ पर एक तथ्य और इंगित कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि तारसप्तक अथवा प्रयोगवाद के कवि का यह सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण कहीं–न–कहीं मार्क्सवादी चिन्तनधारा और उसके समाजवाद से अवश्य अनुप्रेरित है। मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा और नेमिचन्द्र जैन तो अपने को मार्क्सवादी स्वीकार भीकर चुके हैं। अज्ञेय पर व्यक्तिवादी होने का सबसे बड़ा आरोप लगाया जाता है। उनके काव्य को पढ़ने के उपरान्त यह स्थापना मिथ्या प्रतीत होने लगती है। अज्ञेय ने समाज को उसकी विराटता और यथार्थता के साथ स्वीकार किया है। 'इन्द्रधनुष रौंदे हुये' नामक कविता में अज्ञेय ने समाज को उसकी समग्र यथार्थता के साथ ग्रहण किया है–

"रुई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है,

मशक से सड़क सींचता है,

रिक्शा में अपना ही प्रतिरूप लादे खींचता है,

जो भी जहाँ भी पिसता है

पर हारता नहीं, न मिटता है–

पीड़ित श्रमरत मानव

कमकर, श्रमकर, शिल्पी सृष्टा

उसकी मैं कथा कहता हूँ

दूर दूर दूर... मैं वहाँ हूँ..."

6. क्षणवाद– क्षणवादी प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में अस्तित्ववादी विचारधारा काम करती हैं। प्रयोगवादी काव्यधारा के अर्तंगत यह प्रवृत्ति पाश्चात्य चिन्तन के परिणामत आई है। क्षणवादियों की मान्यता है कि जीवन का एक आनन्दमय क्षण सम्पूर्ण जीवन से अधिक वरेण्य होता है। क्षणवादी वर्तमान में ही जीता है, भविष्य के प्रति उसके मन में कोई स्वर्णिम सपना नहीं होता है। हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों ने क्षणवाद को बड़ी व्यापकता के साथ ग्रहण किया है। अज्ञेय तो इस क्षण की जोरदार वकालत करते ही हैं और धर्मवीर भारती भी इससे ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं। क्षण की इसी पकड़ ने प्रयोगवादी कवियों को अस्तित्व का भी बोध कराया। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप', गिरिजाकुमार माथुर के 'शिलापंख चमकीले', 'पृथ्वीकल्प', मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और भारती का 'टूटा पहिया' नामक कविताओं अथवा काव्य–संग्रहों में अस्तित्वबोध का गहरा भाव विद्यमान है। सम्पूर्ण 'अंधायुग' त्रासद अस्तित्व की गाथा है। पौराणिक आख्यान के माध्यम से धर्मवीर भारती लघु से लघुतर और लघुतम व्यक्ति और पदार्थ की अस्मिता को अस्तित्व प्रदान करते हुए लिखते हैं कि –

"मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ

लेकिन मुझे फेंको मत

क्या जाने कब इस दुरूह चक्रव्यूह में

अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ

कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये

बड़े–बड़े महारथी

अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी

निहत्थी अकेली आवाज को

अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें

तब मैं रथ का टूटा हुआ पहिया

उनके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ।।"

7. मानवतावाद– मानव और मानवतावाद की उपेक्षा करके कोई भी साहित्य रचा नहीं जा सकता है। रचनाकार का परिवेश उसकी रचना में विद्यमान रहता है। परिवेश रचनाकार को विषयवस्तु देता है। सारे सुखद और दुखद भाव, उछलती और घुटती जिन्दगी अपनी सर्वांगीणता के साथ रचना के अमूर्त रचनात्मक उपादान होते हैं। कतिपय समालोचकों की मान्यता है कि प्रयोगवादी कविता व्यक्तिनिष्ठ है समाज सापेक्ष नहीं, इसलिए वहाँ मानवतावादी विचारधारा को स्थान नहीं मिला है, लेकिन इस दृष्टिकोण की संगति प्रयोगवादी कविता के प्रतिपाद्य–पदार्थ के साथ नहीं बैठती। कहने का केन्द्रीय पदार्थ–प्रतिपाद्य मानव ही है। यह मानव विराट्–जगत् में कहाँ–कहाँ किस–किस प्रकार से जी रहा है। इसका जीवन्त और सजल चित्रण प्रयोगवादी कविता में हुआ है। अज्ञेय (इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये), प्रभाकर माचवे (बीसवीं सदी), गिरिजाकुमार माथुर (धूप के धान), मुक्तिबोध (चाँद का मुँह टेढ़ा है), सर्वेश्वर दयाल (पोस्टर और आदमी), भारती (सातगीत वर्ष) की अधिकांश रचनाओं में समसामयिक मानव के वास्तविक रूप

को ग्रहण किया गया है। अज्ञेय जीवन जीने के लिए और रोजी–रोटी के लिए संघर्ष करने वाले मनुष्यों की कथा कहने की प्रतिबद्धता की घोषणा करते हुए लिखते हैं कि–

"जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, सृष्टा
उसकी मैं कथा कहता हूँ"

अज्ञेय हों चाहे धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध हों चाहे सर्वेश्वरदयाल सक्सेना या कुँवर नारायण आदि कवि हों, सभी की रचनात्मक प्रकृति अस्तित्ववादी और क्षणवादी चिन्तन से प्रभावित हैं। हाँ, यह अवश्य है कि अज्ञेय और भारती इससे अधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

8. शृगांरिकता– प्रयोगवादी कवियों ने फ्रायड के मनो–विश्लेषणवाद से काफी कुछ ग्रहण किया है। इसीलिए इनकी रचनाओं में जहाँ एक तरफ शृंगार की पवित्र और सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है वहीं दूसरी तरफ मांसल शृंगार और भोग–भावना का भी व्यापक चित्रण हुआ है। कविवर अज्ञेय ने आधुनिक मानव को यौन वर्जनाओं का पुंज माना है। वे 'तारसप्तक' में लिखते हैं कि –'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है. . . आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं सेलदा है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है, उसके उपमान सब यौन–प्रतीकार्थ रखते हैं। 'सावन मेघ' नामक कविता में अज्ञेय ने उक्त मान्यता के आलोक में एक बिम्ब बनाया है। देखें–

"घिर गया घन, उमड़ आए मेघ काले,
भूमि के मम्पित उरोजों पर झुका सा
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
बाध्य देख, स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्लबद्ध
वासना के पंक–सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य की निर्लज्ज नंगी और समर्पित।"

उक्त अवतरण में कवि ने पर्वत पर होने वाली वर्षा और रतिक्रिया का एक जैसा रूप बिम्बित किया है। सामान्य रूप से, प्रयोगवादी कविता के अन्तर्गत भोग और वासना को ही प्रमुखता मिली है। प्रयोगवादी कवियों ने शृंगार को जिस रूप में लिया है, उसको देखकर यह कहना पड़ता है कि उन्होंने इसको प्रकृत रूप में ही ग्रहण किया है। इन रचनाकारों ने प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से अपनी कुण्ठित और दमित संवेदनाओं को शब्दाकार प्रदान किया है।

9. कुण्ठा और निराशा– डॉ. शिवकमुार मिश्र ने लिखा है कि 'निराशा, कुण्ठा और घुटन का व्यापक प्रदर्शन प्रयोगवादी काव्यकी एक महत्वपूर्ण दिशा है, जिसका स्रोत भी उसके निर्माताओं की एकान्त व्यक्तिवादिता, आत्मलीनता एवं सामाजिक विषमताओं से एकाकी ही संघर्ष करने से प्राप्त असफलताओं में ही निहित है तथा जो बहुत कम अनुभूत और अधिकतर गढ़ी हुई है। मुक्तिबोध, अज्ञेय, दुष्यंत कुमार आदि अनेक प्रयोगवादी कवियों ने अपनी रचनाओं में इन रूपों को चित्रित किया है।

भारतभूषण अग्रवाल निराशा का निरूपण करते हुए लिख रहे हैं कि–

"न देखो नयन कोरों से
गिरा दो पलक का परदा
कि मूँदों कान
हो सुनमान
दरवाजा करो सब बन्द
सपनों की अटारी के
कि बाहर गरजता हुआ तूफान आता है।।"

संत्रास, दुःख, कुण्ठा, निराशा, जुगुप्सा आदि से सारे प्रयोगवादी कवि अभिभूत दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इन कवियों ने आशा, आह्लाद, आस्था आदि उज्ज्वल भावों का निरूपण किया ही नहीं है। वस्तुतः संत्रास, कुण्ठा, अनास्था की ही काख से आशा, आह्लाद और आस्था का जन्म होता है।

10. प्रकृति चित्रण– छायावादी कवि ने प्रकृति को जिस बहुरंगी आभा के साथ प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत विलक्षण है। प्रयोगवादी कवि में वैसा रूप नहीं दिखाई पड़ता है जैसा छायावादी कविता में है। इस कविता में कवि मनुष्य के जीवन की विसंगतिपूर्ण स्थिति को शब्दायित करने में सचेत और संलग्न है। प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि की रचनाओं में प्रकृति का सुंदर और हृदयाकर्षी रूप दिखाई पड़ता है। प्रकृति के विविध रूप हैं। कहीं पर उसका स्वतंत्र (आलम्बनगत) रूप अपनी सहजता के कारण आकर्षित करता है और कहीं उद्दीपनगत रूप चित्त को चंचल बनाकर आनन्दित–पीड़ित करता है। अज्ञेय की 'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा 'ऋतुराज' में प्रकृति का आलम्बनगत तथा 'बावरा अहेरी' की कतिपय कविताओं में प्रकृति का उद्दीपनगत रूप उकेरा गया है।

"यह झकझक रात
चाँदनी उजली कि सुई में पिरोलो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नर्म चूने से
पुत रहे हैं द्वार
चाँद पूरा साथ"

भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। 'गीत फरोश' नामक उनके काव्य संग्रह में प्रकृति बड़े सहज और आत्मीय रूप में स्वयं आकर बैठ गयी है–

"सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डुबे हुए से
ऊंघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं और आँख मींचे।।

11. आंचलिकता– प्रयोगवादी कविता में अंचल प्रेम की भी छवि छायी हुई है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर

भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भवानीप्रसाद मिश्र आदि की कतिपय रचनाओं में अंचल विशेष की जीवंत चेतना की खनक सुनीजा सकती है। 'वैशाख की आँधी' (अज्ञेय), 'सावन का गीत' और 'झूले का गीत' (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), 'मंगल वर्षा' (भवानीप्रसाद मिश्र), लेण्डस्केप (गिरिजाकुमार माथुर) आदि कविताओं में आंचलिक परिवेश का सचेत समाहरण हुआ है।

12. भदेस या नग्नता– गर्हित, घृणित और अश्लील शब्द चित्रों को भदेस कहा जाता है। प्रयोगवादी कवियों ने भदेस दृश्योंका भी आयोजन अपने काव्य में किया है। इस योजना से एक तरफ तो कवि की दमित भावनाओं की अभिव्यंजना होती है और दूसरी तरफ उनका नवीनता के प्रति आग्रहवादी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत होता है। सामान्य रूप से ये चित्रण काव्य सौन्दर्य के संवर्धन में सहायक नहीं हैं, लेकिन कतिपय आलोचक इसे भी सौन्दर्याभिव्यक्ति का शक्तिशाली उपादान स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से, लक्ष्मीकांत वर्मा का दृष्टिकोण है 'विरूपता अश्लीलता नहीं है। असुंदर में भोड़ापन नहीं है परिवेश खोखला नहीं है। इन सबका सौंदर्य पक्ष में महत्व है। ये सब सौन्दर्य को सम्पूर्ण बनाते हैं। उनके आयामों को विकसित करते हैं, यह वर्मा का अतिवादी दृष्टिकोण है। यदि असुंदर को भी सुंदर मान लिया जाएगा फिर असुंदर किसे कहा जाएगा। अंतर की सीमा समाप्त हो जाएगी।

प्रयोगवादी कविता में भदेस का निरूपण कवियों ने निस्संकोच भाव से किया है। अज्ञेय जैसा सुसंस्कृत और बहुपठ रचनाकार भी इसके चित्रण का व्यामोह संवरित नहीं कर पाया–

"निकटतर धसती हुई छत, आड़ में निर्वेद

मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृक्ष में

तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव

धैर्य मन गदहा।"

13. भाषा शैली– प्रयोगवादी कवियों ने भावपक्ष में जिस प्रकार से वैविध्यपूर्ण प्रयोग किए हैं, वैसे ही वे शैल्पिक क्षेत्र में भीनवीनता के आग्रही रहे हैं।

(अ) काव्य भाषा– प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अंगीकार किया है। शब्द चयन में वे अत्यंत उदार हैं। जीवन और समाज को बिम्बित करने में जो स्पष्ट हो वही भाषा और वे ही शब्द उन्हें ग्राह्य हैं। हरिनारायण व्यास भाषा के संदर्भ में लिखते हैं भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शास्त्र है, किन्तु उसे जीवन से अलग होकर नहीं जीवन में ही रहना है। यदि कविता की भाषा दुर्बोध रही तो उसका कर्म अर्थात् लड़ने में मनुष्य का सहायक होना अधूरा ही रह जाता है।. . . पुरानी मान्यताओं, पुराने शब्दों, पुरानी कहावतों को नए अर्थ से विभूषित करके कविता में प्रयोग करने से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रयोगवादी कवि भाषा में सुस्पष्टता, सहजता और सुबोधता के पक्षधर रहे हैं। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी के तत्सम तथा ग्रामीण बोलचाल के शब्दों का निस्संकोच व्यवहार किया है। प्रयोगवादी कवियों की भाषा भावानुकूल है। भावानुरूप शब्दों का व्यवहार करके उन्होंने अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय दिया है। उनके ऐसे शब्द बिम्बात्मकता तथा भाव संवर्धन में विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं।

(आ) व्यंग्यात्मकता– व्यंग्यात्मकता प्रयोगवादी काव्यभाषा की एक विशेष प्रवृत्ति है। इसके आविर्भाव के मूल उत्स पर प्रकाश डालते हुए 'मदन वात्स्यायन' ने लिखा है कि 'जहां दारिद्रय की दवा दया नहीं, पंचवर्षीय योजना है, वहां कवि की प्रतिक्रिया व्यंग्यात्मक हो सकती है।' प्रयोगशील कवियों में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल आदि अच्छे व्यंग्यकार माने गए हैं। 'साँप' के माध्यम से आज के जहरीले शहरीपन पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय लिखते हैं कि –

"सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछ! उत्तर दोगे
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।"

(इ) छंदयोजना– प्रयोगवादी कवियों ने प्रगतिवादी कवियों की ही तरह छंद के रूढ़ बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने मुक्त छंद में काव्य रचना की है। गिरिजाकुमार माथुर इस संदर्भ में लिखते हैं कि 'कविता में मुक्त छंद ही पसन्द करता हूँ। मुक्त छंद में अधिकतर मैंने विरामान्त (एण्ड स्टाफ) पंक्तियाँ नहीं रखीं, धारावाहिक (रन ऑन) ही रखी हैं। आगत पंक्ति के आरम्भ में विगत पंक्ति की ध्वनि सम संगीत उत्पन्न करने के लिए वर्तमान रहने दी है। इसी कारण मैं मुक्त छंद में संगीत प्रधान गीत सम्भव कर सका हूँ जिन्हें गाते समय तुक की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। प्रयोगवादी काव्यधारा के कवियों ने नवीन छंदों के व्यवहार के साथ अंग्रेज़ी के कवियों के प्रमुख छंदों (लिरिक, एलेजी, सोनेट, ओड आदि) और उर्दू के ग़ज़ल एवं रुबाई से भी प्रभाव ग्रहण करके काव्य रचनाएँ की हैं। प्रयोगवादी कवियों ने लोक धुनों में भी छंद रचनाएँ की हैं। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि छंद और लय की दृष्टि से भी प्रयोगशील कविता अत्यंत सम्पन्न है।

(ई) बिम्ब योजना– काव्य की सम्प्रेषणीयता और सजीवता के लिए आचार्यों ने बिम्ब योजना को आवश्यक माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो यहां तक कह डाला कि बिना बिम्ब ग्रहण के अर्थ ग्रहण हो ही नहीं सकता है। वस्तुतः आचार्य शुक्ल का यह कथन बहुत कुछ सही है। प्रयोगवादी कवियों ने सर्वथा नवीन और विविध बिम्बों का प्रयोग किया है। प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में प्राकृतिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब, दृश्यात्मक बिम्ब, सान्द्र बिम्ब आदि दिखाई पड़ते हैं। कतिपय बिम्ब योजना द्रष्टव्य है। अज्ञेय दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि–

"उठी एक किरण,
धायी,
क्षितिज को नाम गयी,
सुख की स्मित,
कसक भरी,
निर्धन की नैन कोरों में काँप गयी,
बच्चे ने किलक भरी,
माँ की नस–नस में वह व्याप गयी"

प्रयोगवादी कवि बिम्बों के विधान में बड़े निष्णात हैं। वे बड़ी सफलता से साथ स्पर्श, रंग, स्वाद, श्रवण, स्मृति आदिगुणों के आधार पर भी अत्यंत सारगर्भित और सान्द्र बिम्ब की रचना कर देते हैं।

(उ) प्रतीक योजना– प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है 'चिह्न'। जो वस्तु हमारे सामने नहीं है उसको प्रत्यक्ष करना। काव्य के अंतर्गत सम्प्रेषणीयता के लिए प्रतीकों का बहुत बड़ा महत्व है। प्रयोगवादी कवियों ने व्यापक धरातल पर प्रतीकों की नियोजना अपने साहित्य के अंतर्गत की है। मुख्य रूप से प्रयोगवादी रचना कलात्मक, प्राकृतिक, पौराणिक, वैज्ञानिक और यौन प्रतीकों का व्यवहार किया गया है। प्रतीकों के कुछ उदाहरण देखें– कलात्मक प्रतीक–

"हम सबके दामन पर दाग

हम सबकी आत्मा में झूठ

हम सबके माथे पर शर्म

हम सबके हाथों में

टूटी तलवारों की मूठ।"

युग की राजनीतिक और वैज्ञानिक प्रगति ने प्रयोगवादी कवियों को बहुत प्रभावित किया है। इसीलिए उनकी कविता में वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। गिरिजाकुमार माथुर की 'रेडियम की छाया', भारतभूषण अग्रवाल की 'विलायती स्पंज' आदि कविताएँ इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अज्ञेय की सोन मछली जीवन की जिजीविषा का प्रतीक बनकर आई है–

"वह उजली मछली है

भेद गयी जो मेरी

बहुत–बहुत पहचानी

बहुत–बहुत अपनी यह

बहुत पुरानी छाप।"

प्रयोगवादी कविता के विषय में डॉ. नगेन्द्र का कथन उद्धरणीय है। एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे की पर्त की तरह जमती जाती है। छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म सरल भावना चिन्तन के स्थान पर यहाँ ठोस बौद्धिक तत्व का बोझिलपन है। ये कविताएँ अनिवार्य रूप से ही नहीं, सिद्धान्त रूप से भी दुरूह हैं।

प्रयोगवादी कविता जीवनानुभूत कविता है, सीधे मिट्टी और आदमी की गहरी संवेदना से संलिप्त है। वह आदमी की सम्पूर्ण चेतना को प्रकृत रूप में शब्दायित करती है। डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा ने प्रयोगवादी कविता के अस्तित्व और प्रदेय के संदर्भ में बिलकुल उचित ही लिखा है कि 'यह कहना सर्वथा असंगत है कि प्रयोगवाद ने हिन्दी साहित्य को कुछ दिया ही नहीं। उसने और कुछ भले ही न दिया हो, परन्तु सड़ी–गली परम्पराओं और जीवन मूल्यों के विरुद्ध विद्रोह की भावना अवश्य दी। साथ ही भाषा और शैली के नए–नए प्रयोग करने की प्रेरणा प्रदान कर भाषा को और अधिक सशक्त और प्रांजल बनाया।'

11. नवगीत : प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

नवगीत को नव्य गीत या नए गीत भी कहा गया है। पद्य काव्य की एक विद्या गीत है। समसामयिक परिवर्तनों की दृष्टि से इसे चिरंतन विद्या की संज्ञा दी जा सकती है। युगीन संदर्भानुसार मानव मन के संवेग, भाव या विचार परिवेश में नए–नए रूप ग्रहण करते रहते हैं। इन संवेगों की अभिव्यक्ति हेतु मानव मन आकुल–व्याकुल रहता है जब तक इन्हें मुक्त कंठ से गा नहीं लेता उसे संतुष्टि नहीं मिलती है। यह कटु सत्य है कि काल एवं परिवेश मानव मन के संवेगों को परिवर्तित करते रहते हैं। यही कारण है कि आधुनिक व्यक्ति के सुख–दुख, राग–विराग, ईर्ष्या–द्वेष आदि की संवेदना आदिम कालीन मानव संवेदना की भांति प्रत्यक्ष, सीधी और आवेगात्मक नहीं हैं क्योंकि उसमें बौद्धिक युग की अनेक जटिलताएं समाहित हो गई हैं। इसलिए आधुनिक संवेदना आदिकालीन, मध्ययुगीन संवेदना रूमानी गीतों की संवेदना की भांति एक लय में वेग से नहीं फूट चलती है अपितु वह एक विशिष्ट मानसिक परिवेश में अपने अनुकूल बिखरे हुए संवेगों से जुड़ती है। अभिप्राय यह है एक संवेग दूसरे से संक्रांत होता है। ये संक्रांत संवेग एक आंतरिक एकता से अनुशासित होते हैं। देखने में ये संवेग बिलकुल भिन्न–भिन्न प्रतीत होते हैं

किंतु मूलतः आंतरिक संगीत से समन्वित होते हैं। वर्तमान में यह सत्य भाव नई कविता और नवगीत दोनों में व्यक्त हो रहा है। इन संक्रांत संवेगों को रूपायित करने के लिए कवि को अनिवार्य रूप से बिंबों, प्रतीकों और लाक्षणिकता की योजना करनी पड़ती है। बिंबों और प्रतीकों के बिना संवेगों की संश्लिष्टता और सूक्ष्मता व्यंजित नहीं हो पाती है।

हिंदी गीतकाव्य के इतिहास में 'नयी कविता' के समानांतर रचे जा रहे नए गीतों की वैधानिक एवं भाषिक संरचना का प्रारम्भ डॉ. शम्भूनाथ सिंह 1960 ई. के उपरांत स्वीकार करते हैं। कुछ विद्वान अज्ञेय जी को ही नवगीत परम्परा के सूत्रधर मानते हैं। नवगीत की पहली बार विशद चर्चा राजेन्द्र सिंह द्वारा सम्पादित गीतांगिनी (1958) में हुई। इन्हें ही नवगीत नामकरण का श्रेय दिया जाना चाहिए। 'जीवनप्रकाश जोशी' ने 'केदारनाथ अग्रवाल' तथा 'ठाकुरप्रसाद सिंह' को नवगीत के आरम्भकर्ता का श्रेय दिया है, जबकि कुछ अन्य लोग 'उमाकान्त मालवीय' को नवगीत का जनक मानते हैं। निष्कर्ष यह कि इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं।

'गीतांगिनी' के सम्पादकीय में राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 5 तत्त्वों को माना हैं –1.जीवनी दर्शन 2. आत्मनिष्ठा 3. व्यक्तित्व बोध 4. प्रतितत्व 5. परिसंचय ।

हिंदी में प्रायः गीतों का एक आकार स्वीकार कर लिया गया है। उस आकार में अधिक से अधिक सामग्री अर्थात् विषय वस्तु भरने का अथक प्रयास किया जाता है। जितना संभव था उतना उसमें ठूंस–ठूंसकर भरा गया। जिसके परिणामस्वरूप नया कवि गीतों को अच्छी दृष्टि से न देखकर उससे घृणा का भाव रखने लगा है। उन गीतों को आज के लिए अनावश्यक तथा अपर्याप्त स्वीकार ने लगा है। गीत की इन व्यावहारिक सीमाओं के कारण उसकी मौलिक शक्तियों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किंचित इन्हीं शक्तियों के कारण बहुत से अच्छे नए कवि गीतकार भी हैं। उनके गीतों की तरलता, अनुभूति सघनता और प्रभावान्विति का प्रभाव उनकी नई कविताओं पर भी पड़ता है। प्रचलित रंगमंचीय अश्लील एवं भद्दे गीतों से अलग करने के लिए इन गीतों को नवगीत कहा गया है। समसामयिक गीतकारों में प्रमुखतः अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, जगदीशगुप्त, शंभू नाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदार नाथ सिंह, रवींद्र भ्रमर तथा वीरेंद्र मिश्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इन सभी गीतकारों का अपना–अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है किंतु इनके गीतों की एक सामान्य भूमि भी है। अनुभूति की सच्चाई, अनुभूति की अपनी–अपनी विशिष्टता, नवीन सौंदर्य बोध, आकार लघुता, नवीन बिंब–प्रतीक, उपमान–योजना इनकी सामान्य विशिष्टता है। इसलिए ये गीत प्रभावान्विति की दृष्टि से अंतर्दीप्त प्रतीत होते हैं। इन सभी गीतों में लोक जीवन का आनंद है। इस अर्थ में नहीं कि इन्होंने प्रचलित गीतों की भांति लोकभाषा से अपने गीतों 'दूध–बताशा', 'पनघट', 'वंशीवट', 'चुनरिया' तथा 'ओढ़निया' आदि अनेक शब्दों को चुना है अपितु इसलिए कि इसमें इन्होंने लोक जीवन की वस्तु योजना को पकड़ा है। उसकी संवेदना को स्वीकारा है। ये गीत जिस भूमि पर उत्पन्न हुए हैं, उस भूमि के रसगंध को अपने में समेटे हुए हैं। इसलिए इन गीतों में नागरिक, ग्रामीण, व्यक्तिगत, सामाजिक, प्रेम की प्रेमेत्तर प्रकार की संवेदनाओं के भिन्न–भिन्न स्वरूप कवियों के व्यक्तित्वों एवं मानस संस्कारों के अनुसार लक्षित होते हैं। नव गीत में रस का बासीपन सा सड़ांध नहीं होती है अपितु अंतर की दमक होती है। इन गीतों की उपलब्धि इनके तरल, सरल, रसमय, उच्छल प्रवाह और आवेगों में नहीं है अपितु इनकी बुद्धि संयत हार्दिकता, संवेदना के अनुभूत स्तरों में नियोजन, एक विशेष प्रभाव भूमि के अंतर्गत आने वाले बिखरे किंतु एक दूसरे से संक्रमित बोधों के संश्लेषण और अनुकूल बिंबो, प्रतीकों और लाक्षणिक प्रतीकों की खोज में हैं। कवि अपने अपने संस्कारानुसार इस सामान्य भूमि पर नूतन बिंब प्रतीकों का विधान करते हुए चले हैं।

नवगीत के अंतर्गत प्रयोगवादी एवं नई कविता के अधिकांश कवि आ गए हैं। नव कवि की प्रतिभा इसी में है कि वह इन्हें नव संदर्भों में जांच–परखकर नवगीत की संरचना करे। नवगीत के प्रयोजन को रसानुभूति नहीं कहा जा सकता है। अनुभूति को नकारा नहीं जा सकता है। साधारणीकरण का रूप बदल गया है। आज पहले की भांति

सामान्य प्रतीतियां नहीं है जिनमें सभी लोग सांझी हो सकें। विभक्त प्रतीतियों के समय में प्रेषणीयता का कार्य पर्याप्त कठिन हो गया है। नवगीत में प्रेषणीयता अनिवार्यतत्व है। नवगीत में पुरानी काव्य–रूढ़ियां भी मिलेगीं, पर युगीन संदर्भ से युक्त होने के कारण वह नव होकर रूढ़ि मुक्त हो गया है। परंपरा से कटकर लिखे गद्य नव गीत की संपृक्तता सर्वथा संदिग्ध है। परंपरा को नया संदर्भ देना उसे जीवंत बनाना है। गीत विहीन जीवन शुष्क एवं नीरस हो जाता है। गीत के भाव सीधे हृदय से आते हैं। महादेवी वर्मा ने नवगीत को परिभाषित करते हुए लिखा है– "सुख–दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। साधारण गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र और सुख दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके। "गीत का संबंध मानव के अंतस्तल से होता है जो सुख–दुख से प्रेरणा प्राप्त करके तीव्रतम भावों की अभिव्यक्ति करता है। वही भाव संगीत के साथ लयबद्ध होकर गीत कहलाते हैं। प्रायः सभी कालों में गीत की संरचना हुई है किन्तु नई कविता के बाद के नवगीत उन सबसे अपना अस्तित्व भिन्न बनाए हुए हैं। परंपरा से अपने को मुक्त कर के इन्होंने अपना संबंध जन–जीवन से जोड़ा है। गीतकारों ने आधुनिक गीत को नया भावबोध तथा विस्तृत आयाम प्रदान किया है जिसमें सर्वसाधारण मानव के जीवन–संघर्षों का चित्रण किया गया है। निराला के गीतों में नवगीत का आरंभिक स्वरूप देखने को मिलता है। छायावाद युग में ही नवगीत का बीजवपन हो चुका था। नवगीत आंदोलन नहीं अपितु विकास की परंपरा है। नवगीतकारों ने गीत को छायावादी गीत से बाहर निकाला है तथा समष्टि के यथार्थ एवं परंपरागत सौंदर्य से निकालकर नए सौंदर्य से भंडित किया है।

गीतकार– गीतकारों में हरिवंश राय बच्चन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, गोपाल सिंह नेपाली, नरेन्द्र शर्मा, नीरज, जानकी वल्लभ शास्त्री तथा सोम ठाकुर आदि प्रमुख हैं।

नवगीत बीसवीं सदी के छठे दशक की देन है। सन् 1958 ई. में राजेन्द्र सिंह ने मुजफ्फरपुर बिहार से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'गीतांगिनी' में इन गीतों को 'नवगीत' नाम से विभूषित किया। राजेन्द्र सिंह को 'नवगीत' का प्रवर्तक स्वीकारा गया।

नवगीत के बीज छायावादोत्तर गीत लेखन में अर्थात् बच्चन, भगवती चरण वर्मा एवं रामेश्वर शुक्ल अंचल में खोजे जा सकते हैं। इसके बाद यह गीतधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के गीतकारों के कंठों को सुसज्जित करती हुई नई कविता धारा में पहुंच गई तथा पंत, निराला, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, अज्ञेय, शंभूनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र आदि का सानिध्य प्राप्त किया।

नवगीत की भाव चेतना के आधार पर नवगीतकारों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) आधुनिकता बोध सपंन्न– आधुनिकता की प्रवृत्ति निम्नलिखित गीतकारों में दृष्टिगोचर होती है : – ओमप्रभाकर, सामे ठाकुर ,भगवान स्वरूप नईम, विनोद गौतम, विजय किशोर, डॉ. सुरेश, राजेन्द्र गौतम, उमा शंकर तिवारी, राम चन्द्र भूषण, कुमार रवींद्र, शंभू नाथ सिंह, श्री कृष्ण तिवारी, रामसेंगर तथा अमरनाथ।

(2) लोकबोध सम्पन्न– ठाकुर प्रसाद सिंह, दिनशे सिंह, अनूप अशेष, सुधाशु उपाध्याय, गुलाब सिंह, अखिलेश कुमार आदि।

(3) प्रकृति बोध सम्पन्न– देवेन्द्र कुमार, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवबहादुर सिंह भदौरिया, अनूप अशेष तथा गुलाब सिंह आदि।

(4) जातीय बोध सम्पन्न– उमाकांत मालवीय, देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र', सोम ठाकुर, शंभूनाथ सिंह, राधे श्याम शुक्ल तथा नीरज आदि।

सामजिक यथार्थ : 'नवगीत यथार्थ के प्रति आग्रही रहा हैः वस्तुत दैहिक रोमान तथा काल्पनिक आख्यान से मुक्त होकर आधुनिक जीवन के विसंगत पक्षों को अभिव्यक्त करने के पीछे यही यथार्थ–बोध काम कर रहा था।

"नवगीत" के संदर्भ में 'सोम ठाकुर' ने लिखा है–'नवगीत सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के नग्न चित्र प्रस्तुत करता है, परन्तु वह उसे निरीह नग्न रूप में अकेला नहीं छोड़ता, वरन् उसके शरीर पर उभरे हुए अनेक घावों का वैद्य बनकर रोगी की मरहम पट्टी करता है तब उसमें दिखावा, बनावटीपन एवं कृत्रिमता लेशमात्र भी दिखाई नहीं देती। उसने पूर्व के गीत से चली आ रही विसंगति पर खुलकर चोट की,उसके पारंपरिक ढांचे को ध्वस्त किया और नवीन जीवन दृष्टि लेकर जनसाधारण के बीच खड़ा होकर दैनिक समस्याओं का सामना किया है। "सोम ठाकुर ने आगे लिखा है– "नवगीत का कथ्य हमारे देश की निजी, कड़वी–मीठी संवेदनशीलता का आसव है और उसका शिल्प निजी अभ्यासों के अनुकूल अपनी मिट्टी की नई तराश और पकड़ की गुंजाइश का पात्र, जिसके सर्जक की कसौटी में स्वयं का व्यक्तित्व स्पष्ट निजताके साथ ध्वनित हो रहा है। यह सार्वजनिक निजता ही नवगीत का परस्तरित सेतुबंध है।" नवगीत में सामाजिक यथार्थ का निरूपण, नगरी एवं महानगरीय परिवेश का चित्रण, व्यवस्था का विरोध, बौद्धिकता कीप्रधानता, ग्रामीण एवं आंचलिक चित्रण, प्रेम एवं श्रृंगार की अभिव्यक्ति, राष्ट्रचेतना का चित्रण आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं।

वीरेंद्र मिश्र ने 'नवगीत सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के नग्न चित्र प्रस्तुत करता है।

"दूर होती जा रही कल्पना

पास आती जा रही है जिंदगी।।

इसी प्रकार का भाव हमें ओमप्रभाकर की 'पुष्प' रचना में दिखाई देता हैं।

खण्डहर मरूस्थल, बीहड़ जगंल से होकर हम

आये जिस ठौर वियाबान है – अँधेरा है।

नवगीत के शिल्प

डॉ. कुंवर बेचैन ने नवगीत के शिल्प के विषय में लिखा है– "आकार–प्रकार में सक्षिप्त गेयता को सुरक्षित रखने वाली उस काव्य विद्या को नवगीत कहेंगे, जिसमें सामाजिक यथार्थ की छाया में वैयक्तिक अनुभूतियों को प्रतीकों, बिंबों एवं ऐसी नई शब्दावली में अभिव्यक्त किया जाता है, जिसमें समसामयिक बोध की दीप्ति बलवती है। अनुकृति की सच्चाई, रागात्मकता की चमक, नवीन लाक्षणिक प्रतीकों की खोज, सामाजिक यथार्थ से व्यक्ति की समझ का टकराव, रचनात्मक स्तर पर जड़ परंपराओं का विरोध, भाव और विचारों का समन्वय ऐसे तत्व हैं जिनकी छाया में नवगीतों को पहचाना जा सकता है।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नवगीत पारंपरिक गीतों से भिन्नता में विशेष रूप से पहचाना जाता है। शब्दों का चयन ग्रामीण अंचल एवं नागरिक परिवेश से किया जाता है। वस्तु पक्ष की भांति ही नवगीत का शिल्पपक्ष भी अति विशिष्टता एवं व्यापकता लिए हुए है।

जिजीविषा का नया सौंदर्य–बोध

माधवेंद्र प्रसाद ने कहा है "नवगीत नये सौंदर्य–बोध का काव्य है जिसे शिल्प और कथ्य दोनों स्तरों पर नवता प्राप्त हुई है। जिजीविषा का सौंदय भाव–प्रवणता का निदर्शक है. . . नवगीत में वर्तमान जीवन का विसंगति बोध है। ऊपर से सब ठीक लग रहा है, लेकिन भीतर गड़बड़ है। शीशे की दीवार की तरह. . . नवगीतकार इसे तोड़ना चाहता है, क्योंकि मूल्यहीनता का प्रारंभ 'जिसकी परिणति निराशा में होती हैं, यही से होता है। इसलिये वह कहता है–

"कोईतो हाथों में

पत्थर ले

तोड़े शीशे की दीवार को।

– माहेश्वर तिवारी

इस प्रकार नवगीतकार लिखते है कि जिजीविषा के चलते ही वह परिवर्तन की पुकार करता है। प्रगतिशीलता ने जनवादी चेतना को जगाया जिसका प्रभाव के बाद में प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता में आया परंतु "नवगीत में यह चेतना पूंजीपति तथा सर्वहारा वर्ग की चेतना के रूप में नहीं आयी, वरना जो सत्ता पर काबिज थे और जिनके हाथ में व्यवस्था थी, भले ही वे जनता के प्रतिनिधि क्यों न हो नवगीतकार के लिए शोषक थे।

12. समकालीन कविता : प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

समकालीन कविता से पूर्व गद्य विद्या में कहानी के पश्चात् अकहानी तथा लघु कथा का रूप प्रचलित हो चुका था उसी का आधार बनाकर नवगीत के पश्चात् पद्य विधा में जिस नवीन विधा का आविर्भाव हुआ उसे अकविता, अतिकविता, अस्वीकृत कविता, विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी आदि अनेक नाम दिए गए। सन् 1960 ई. के आस–पास नई कविता और नवगीत की धारा अपने से कुछ अलग होती हुई परिलक्षित है जिसे अनेक नाम

दिए गए हैं। उपर्युक्त नामों में दो वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं

(1) अकविता, अति कविता, अस्वीकृत कविता।

(2) विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी।

प्रथम वर्ग के तीनों नामों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन की निर्मिति नञ् समास के आधार पर हुई। दो मदों को समस्तपद रूप से समन्वित करके नामकरण किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्योमितीय शब्दावली में कहा जा सकता है कि 'कविता' शब्द और 'अ' उपसर्ग उभयनिष्ठ हैं। उभयनिष्ठ को अलग कर दिया जाए तो 'अ' एवं 'कविता' शब्द शेष रहजाते हैं ये दोनों ही बहुचर्चित पद हैं इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं है। नकारात्मक 'अ' का अर्थ विहीनता एवं न होना है। कविता के तत्वों को नहीं नकारा गया है जो नहीं है वह क्या है? लगता यह है कि मात्र अकहानी के आधार अकविता कहां कैसे कविता एवं अकविता में कोई भेदक तत्व प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह तथ्य अवश्य सामने आया है कि अकविता में नकारात्मक नहीं अपितु विशिष्टता अथवा चमत्कार का भाव भरा गया है। यथा 'खालिस' शुद्धता का द्योतक शब्द है उसमें 'नि'नकारात्मक उपसर्ग इसी अर्थ में नहीं लिया जाता है अपितु विशिष्टता या चमत्कारी अर्थ देने के लिए 'खालिस' से 'नि' +'खालिस' त्र निखालिस शब्द का निर्माण किया गया है जो विशेष शुद्धता का द्योतन करता है। उसी प्रकार 'कविता' से अलग उसमें विशिष्टता तथा चमत्कार का भाव भरने के लिए 'अकविता' शब्द का निर्माण किया।

द्वितीय वर्ग के नामों के विश्लेषण से ज्ञात है यह नामकरण भी दो समस्त पदों से निर्मित है। ये पद विद्रोही, कबीर, क्रुद्ध तथा भूखी एवं पीढ़ी है। पीढ़ी पद उभयनिष्ठ है। 'पीढ़ी' का अर्थ वर्ग होता है। मानव सभ्यता का विकास पीढ़ी दर पीढ़ी अग्रसर है। इसी प्रकार नई कविता, नवगीत के पश्चात् आने वाले वर्ग को पीढ़ी का नाम दिया गया है। पीढ़ी विकास वंश परंपरा का विकास होता है। दादा के पश्चात् पिता, पिता के पश्चात् पुत्र अस्तित्व

में आता है। दादा–पोते की धारणा, भाव, चिंतन एवं दर्शन में समयांतराल के परिणामस्वरूप परिवर्तन आ जाता है यह परिवर्तन ही संघर्ष का कारण है। कुछ समयपूर्व तक दादा–पोता से संघर्ष पीढ़ी संघर्ष का रूप धारण कर गया अर्थात–पिता–पुत्र में पीढ़ी संघर्ष आया। वर्तमान में यह पीढ़ी संघर्षदशक संघर्ष का रूप धारण कर गया है अर्थात् दस वर्ष के अंतराल में वैचारिक भिन्नता आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप पुरातन नवीन का संघर्ष चलता है। यह संघर्ष अनादि काल से चलता रहा है चल रहा है चलता रहेगा। पुरातन पीढ़ी नवीनपीढ़ी को जन्म देती है तथा उससे संघर्ष करती है।

नई कविता एवं नवगीत ने समकालीन कविता को जन्म दिया। अब रह गया प्रश्न पीढ़ी से पूर्व लगे पूर्व पदों 'विद्रोही', 'कबीर', 'क्रुद्ध' तथा 'भूखी'। इन शब्दों में रूप भेद हैं किन्तु आत्मा एक है इसलिए अर्थ भेद नहीं है। विद्रोह का अर्थ पुरानी मान्यता को अस्वीकारना तथा नवीन मान्यता की स्थापना करना है। इस कार्य में प्राचीन पुरातनवादी कवि नवीनतावादियों का विरोध करता है, नवीनतावादी कवि प्राचीनतावादी अथवा पुरातनवादियों का विरोध करता है। यह विरोध विद्रोह या संघर्ष कहलाता है। कबीर विद्रोही कवि थे इसलिए कबीर को विद्रोह का प्रतीक बना दिया गया। कबीर को बाह्याडंबर, अंधविश्वास तथा रूढ़ियों से अत्यधिक नफरत थी इनको देखते ही वे क्रुद्ध हो जाते थे उनमें क्रोध भावना का उदय हो जाता था। 'क्रोध' विद्रोह का पर्यायवाची बन गया। अधिकांश समकालीन कविता के कवियों का संबंध निम्न मध्यवर्गीय परिवार से था जो भूख प्यास से आकुल–व्याकुल होकर क्षुधा मिटाने के लिए विद्रोही हो गया। भूखी–नंगी पीढ़ी विद्रोही होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समकालीन कवि विद्रोही, कबीर जैसे विद्रोही, क्रुद्ध एवं भूखी–नंगी पीढ़ी अर्थात् वर्ग था। इन सभी नामों का एक ही अर्थ अपनी पूर्व पीढ़ी के विद्रोह में नवीन मान्यता एवं धारणा की स्थापना करना था। अपने उद्देश्यानुसार उन्होंने अपनी कृतियों की प्रवृत्ति विशेष का नामकरण किया है। ये नामकरण अनुभूतिजन्य, संवेदनशील तथा यथार्थ पर आधारित हैं। इनके दर्शन एवं मूल्यों में परिवर्तन आ गया है।

सन् 1960 ई. के बाद काव्य क्षेत्र में नवीन मोड़ परिलक्षित हुआ। वह एकाएक दृष्टिगोचर होने वाली कोई नवीन वस्तु नहीं है अपितु नई कविता एवं नवगीत से ही विकसित, प्रस्फुटित हुआ है। अकविता वालों ने अपनी कविता को अलग करने के लिए उसे अकविता नाम दिया। इस प्रकार समकालीन कविता अर्थात् अकविता नई कविता तथा नवगीत से बिलकुल अलग नहीं अपितु उसी का विकसित रूप है। यही कारण है कि अकविता वाले मौलिकता के आधार अकविता को कविता, नई कविता या नवगीत से अलग स्थापित नहीं कर सके। वास्तविकता यह है कि सन् 1960 ई. के बाद अकविता में जो स्वर उगे हैं बीजवपन नई कविता में हो चुका था। नवगीत में अंकुरित होकर इस कालावधि में प्रस्फुटित हुआ है। ये स्वर नई कविता के मौलिक स्वरूप या मूलाधार नहीं थे किंतु नई कविता तथा नवगीत से इनको सर्वथा भिन्न भी नहीं कहा जा सकता है जैसा अकविता वाले करते हैं।

प्रवृत्तिगत विशेषताएँ

1 विद्रोही स्वर– अकविता के नामकरण विवेचन से ही ये स्पष्ट हो गया है सन् 1960 ई. के बाद आविर्भाव में आने वाली अकविता में असंतोष, अस्वीकृति, क्रोध तथा विद्रोह भाव अत्यधिक स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है। असंतोष एवं अस्वीकृति का स्वर नई कविता में विद्यमान रहा है। मुक्तिबोध के अतिरिक्त अन्य कवियों में भी विद्रोह स्वर था। कहीं व्यंग्य का रूप धारण कर आया था कहीं स्पष्ट विद्रोह के रूप में। अंतर इतना है कि सन् 1960 ई. के बाद इस स्वर ने अकविता में आकर अत्यंत व्यंग्यात्मक एवं विद्रोह का रूप धारण कर लिया। जीवन के टूटते हुए क्षणों की सन्निकट अनुभूति ने उसकी संवेदना को तल्ख, अभ्यास तथा उसमें फूटती हुई अस्वीकृति की उग्रता से

भली भांति अवगत हो गया। अकविता की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को उनके जीवंत परिवेश में अभिव्यक्ति प्रदान की है। विषय या अनुभूति के अभिजात्य तथा विभिन्न दृष्टियों अथवा वादों से निर्मित घेरों, परिसीमाओं तथा अवरोधों को तोड़कर व्यक्ति द्वारा भोगे जाते हुए मानव जीवन के प्रत्येक क्षण के छोटे–बड़े सत्यों को प्रतीकों –बिंबों द्वारा उभारने में ही उसने अकविता की सार्थकता का अनुभव किया है किंतु अंतोगत्वा कहना होगा कि अकविता संत्रासजन्य कुंठा, संक्रांतिजन्य संत्रास, यातना, टूटन, घुटन, दुविधा की अनुभूति की कविता है जिसमें रह रहकर सुंदर अनागत के आगमन की आशा, स्वयं को अंधेरे में प्रकाश की भांति जलाकर पुष्प की भांति पुष्पित एवं प्रफुल्लित कर के अपने को सार्थक एवं अपने द्वारा युग को मूल्यवान बनाने की आस्था कौंध स्वरूप चमक–चमक कर रह जाती है।

2. पीड़ा बोध– अकविता जिस युग की उपज है वह युग पीड़ा बोध अधिक दे सकता था विद्रोह कम। स्वराज्य प्राप्ति की आरंभिक समय में जो यातना, पीड़ा या दर्द अत्यंत हो गया था वह अपने साथ भविष्य के प्रति आशा तथा विश्वास का स्वर भी अवश्य समेटे था किंतु एक दुविधा थी पीड़ा–आशा, टूटन की वास्तविकता बनने का स्वप्न, जिसमें पीड़ा तथा टूटन अधिक थी बनने की आशा तथा स्वप्न कम। मोहभंग पूर्ण रूप से नहीं हुआ था। इसलिए अकविता में पीड़ा, यातना तथा अस्वीकृति बोध है। यातना एवं अस्वीकृति भी पीड़ा के प्रतिरूप हैं। पीड़ा बोध का स्वर उभर कर आया है किंतु विद्रोह का उभार नहीं है। शनैः शनैः मोह भंग हुआ। व्यक्ति का सामाजिक परिवेश अधिक कुरूप होता गया। भविष्य के आशा के स्वप्न टूट टूटकर बिखरते गए। विभिन्न मार्ग ऐसे परिवेश में साहित्य अर्थात् अकविता या समकालीन कविता के समक्ष दो मार्ग उभर कर आए –

(1) वह अकविता के प्रधान स्वर में स्वर मिला कर पीड़ा की मुक्त अनुभूति को और गहराई से अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

(2) ये पूर्ण परिवेश उसके संवेदनशील मन को झकझोरता और पीड़ा के मध्य से उभार कर उसे विद्रोही बनाता हुआ सब कुछ अस्वीकृत करने हेतु प्रेरणा देता। अकविता में दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएं दृष्टिगोचर होती हैं। अकविता वाले संवेग, संचेतना को, नव विकसित सत्य को, सहज और एक सरल ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने की घोषणा करते हैं। ये अव्यवस्था, विसंगति, मूल्य हीनता, विरोधाभास और आदर्शों के अकाल से आंदोलित नहीं होते। दूसरी प्रक्रिया विद्रोह की थी। विद्रोह की दो प्रवृत्तियां होती हैं– (1) अस्वीकृति या ध्वंस (2) रचना।

अकविता में 'विद्रोह' के नाम पर लिखी जाने वाली अकविताएं उनमें अधिकांश लक्ष्यविहीनता का प्रतिनिधित्व करती थीं या यौन की विकृति का प्रतिपादन करने वाली थीं। लक्ष्य–विहीनता ने इन्हें सुविधा वादी या अवसर वादी बना दिया। ये सुविधा का विद्रोह करते थे अर्थात् जहां उन्हें करने की सुविधा का अवसर प्रतीत होता था वहां विद्रोह कर डालते थे किंतु जहां उन्हें प्रतीतहोता कि विद्रोह का परिणाम खतरा मोल लेना है वहां वे दुम दबाकर पतली गली से भाग लेते थे। अकविता या समकालीन कविता के कवियों को सबसे बड़ी विसंगति 'यौन' विसंगति के रूप में दृष्टिगोचर होती थी यदि इनकी दृष्टि से ओझल हो जाती थी तो इन्हें शारीरिक वीभत्सता दिखलाई पड़ती थी।

3. आंदोलन नहीं विकास– समकालीन कविता या अकविता आंदोलन नहीं नई कविता की जीवनोन्मुख धारा का विकास है जिसमें योजनाबद्ध आंदोलन की रेखाएं नहीं हैं अपितु वर्तमान जीवन की अनुभवजन्य विषम संवेदनाएं एवं पीड़ा–बोध हैं। ये अनुभव एवं बोध आंदोलन से नहीं अपितु सत्य से प्रेरणा प्राप्त करके वर्तमान विषम परिवेश की प्रतीति, अस्वीकृति एवं विद्रोह सभी को आवश्यकतानुसार अपने में समन्वित किए हुए हैं। सन् 1960 ई. के बाद की

धारा में कवि भी आ जाते हैं जो नई कविता के विशिष्ट कवि रहे हैं जिनमें जीवन धारा की ऊर्जास्वलता ही प्रधान रही है या जो नई कविता की बनती हुई सीमाओं से अवगत होकर उन्हें तोड़ने हेतु पुनः अकुला उठे हैं तथा वे कवि भी हैं जिनका आविर्भाव सन् 1960 ई. के बाद हुआ है। इन कवियों ने एक ओर जीवन की विकसित चेतना और जटिलता का अनुभव किया तथा दूसरी ओर यह देखा कि नई कविता के भी फार्मूले लेने लगे हैं। उसके प्रतीक और दर्द रूढ़ बनते जा रहे हैं। प्रतीकों की ऊंची गुफा में बंद होकर कविता सर्वथा अंतर्मुखी तथा निस्पंद होती जा रही है। इस ठहराव को तोड़ना था। अकविता को पुनः जीवन निकट लाना था अथवा समकालीन कविता की जीवनधारा से अवगत होकर अग्रसर होना था।

4. सामान्योन्मुखी– समकालीन कविता परिवेशानुसार सामान्योन्मुखी हो गई, चीन एवं पाकिस्तान के अतिक्रमणों के अवसरपर सामान्य जवानों का बलिदान, लघु दृष्टिगोचर होने वाले लोगों का त्याग, कृषकों, श्रमिकों की महत्ता का अनुभव उभरकर सामने आया। समकालीन कविता नई कविता के उस स्वर का विकास है जो वर्तमान की प्रतिदिन के जीवन की अनुभूतियों को अति सहजता व्यक्त करता है। उन अनुभूतियों को वाणी देता है जो पल–पल के अंतर्विरोध की उपज हैं। समसामयिक कविता में एक ओर व्यक्तिगत पीड़ा या स्थिति की विषमता को व्यक्त करने वाले कवि हैं, तो दूसरी ओर स्थिति की विषमता के विरुद्ध विद्रोह का आक्रोश व्यक्त करने वाले कवि भी हैं। क्रुद्ध और विद्रोही पीढ़ी की कविताएं अधिक तेज, धक्कामार और वर्तमान जीवन की सड़ांध अधिक प्रत्यक्षता से उभारने वाली हैं। समकालीन कविता में वे कवयित्रियां भी आती हैं जिनमें वर्तमान की व्यथा अनुभूति के अति सूक्ष्म, बारीक, एवं संयत स्तर के उभार हैं। नारी की अपनी विशेषताएं होती हैं। जिसके परिणामस्वरूप कवयित्रियां कवियों की भांति उच्छृंखल या यौन संबंधों को व्यक्त करने में प्रत्यक्ष या सामाजिक विद्रोह के प्रति अधिक अनुभववान तथा पूर्ण सक्रिय नहीं होती हैं। वे अपने परिवेश के दबाव से अनुभव करती हुई पीड़ा बोध तथा सौंदर्य बोध को अधिक तीव्रता, गहनता तथा सफलता से व्यक्त कर सकती हैं।

5. जनक्रांति– कवि को पूर्ण विश्वास है कि विषम व्यवस्था को दूर करने का मात्र उपाय जनक्रांति है। एकमात्र जनक्रांति के द्वारा ही अपने अस्तित्व का संज्ञान कराया जा सकता है। इसलिए कवि बैठे–बैठे काव्य सृजन में ही अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करता है अपितु वह आगे बढ़कर एक दावानल भड़काना चाहता है जो जनक्रांति लाए तथा विषम व्यवस्था का निवारण कर सके।

6. राजनेताओं के प्रति क्षोभ– देश की उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुखी स्थिति के लिए कवि भ्रष्ट राजनेताओं को दोषी ठहराते हैं क्योंकि इनकी क्षुद्र राजनीति मात्र कुर्सी तक सीमित है। इनका दीन ईमान सब कुर्सी है। कुर्सी के लिए वे अपना धर्म ईमान सब बेचने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। आवश्यकतानुसार दलबदल करना इनका परम धर्म बन गया है। कवि ऐसी विषम परिस्थितियों में घबराने एवं चुप बैठने वाला नहीं है साफ–साफ विरोध करता है।

7. भाषा–भंगिमा– समकालीन कवियों की भाषा विचार एवं भावानुसारिणी है। स्पष्टता अधिक है। लोकमानस की सहज, सरल एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया गया है पारिवेशिक विसंगतियों – विद्रूपताओं के चित्रण में मार्मिक शैली अपनाई गई। वहां भाषा को नवीन शक्ति प्राप्त हो जाती है। समकालीन कविता की भाषा अभिजात्य सांस्कारिक नहीं है, अपितु अनुजन्य आम बोलचाल की भाषा है। अप्रस्तुत विधान, बिंब विधान एवं प्रतीक योजना का आवश्यकतानुसार पूर्ण समावेश है।

क्षणिकाएं– बीसवीं सदी के सातवें दशक में गद्य विद्या में कहानी का लघु रूप 'लघु कथाओं' ने लिया। उसके आधार पद्य विद्या में कविता के लघु रूप में 'क्षणिकाएं' आईं। जिनका आयाम अति लघु होता है। वर्तमान

काल में भी क्षणिकाएं पत्र पत्रिकाओं में यत्र–तत्र प्रकाशित होती रहती है। ये भी समकालीन कविता का लघु–संस्करण हैं। रचनाकार–समकालीन कविता के क्षेत्र में नई कविता के कवि भी हैं तथा बीसवीं सदी के सातवें दशक के उभरने वाले कवि भी हैं। इन युवा कवियों में पद्माधर त्रिपाठी, धूमिल, ऋतुराज, चंद्रकांत देव ताले, लीलाधर जगूड़ी, विष्णु चन्द्र शर्मा, प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

13. सारांशः

इस प्रकार इस इकाई में हमने 'आधुनिक काल' का अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन से हमने क्रमशः भारतेंदु, द्विवेदी, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत एवं समकालीन कविता के स्वरूप, विशेषताओं और प्रमुख साहित्यकारों की विशेषताओं को समझा। साहित्य–रचना एक सतत् प्रक्रिया है तथा यह परिवर्तन के साथ नये–नये रूपों में हमारे समक्ष आती रहती है। आधुनिक काल में भी नवीनतम रूपों में रचनाओं का सृजन हुआ।

14. मुख्य शब्दावली

पुनरुत्थान – पुनः उन्नति करना, फिर से उठना

छायावाद – सौंदर्यमय प्रकृति की कल्पना करके लक्षणा, व्यंजना एवं प्रतीकों के माध्यम से काव्य रचना में अपनी अनुभूति प्रकट करना।

सत्यान्वेषण – सत्य की खोज

मुलम्मा – रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बर्तनों पर किया गया लेप, कलई

15. अभ्यास हेतु प्रश्न

1. आधुनिक काल का विवेचन कीजिए।
2. 1857 ई0 की राज्य क्रांति और पुनर्जागरण को स्पष्ट कीजिए।
3. आधुनिक काल की प्रमुख काव्यधाराओं का परिचय दीजिए।
4. भारतेंदु एवं द्विवेदी युग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
6. प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के विकास का परिचय दीजिए।
7. नई कविता एवं समकालीन कविता की विशेषताएँ बताइए।
8. नवगीत की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

16. आप ये भी पढ़ सकते हैं–

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य का आदिकाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014
4. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास (दो खण्ड)
5. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

6. नामवर सिंह	–	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018
7. नगेन्द्र	–	रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
8. बच्चन सिंह	–	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास
9. रामविलास शर्मा	–	लोकजागरण और हिन्दी सौन्दर्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
10. सुमन राजे	–	हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 2004
11. शिवकुमार मिश्र	–	भक्तिकाव्य और लोकजीवन, पीपुल्स लिटरेसी प्रकाशन, दिल्ली, 1983
12. रामअवध द्विवेदी	–	साहित्य रूप
13. रामसजन पाण्डेय	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, संजय प्रकाशन, दिल्ली,2017
14. रामकिशोर शर्मा	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद

ईकाई–2

हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का विकास

इकाई की रूपरेखा

परिचय

1 इकाई के उद्देश्य

2 उपन्यास : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

3 कहानी : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

4 नाटक : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

5 निबंध : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

6 संस्मरण : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

7 रेखाचित्र : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

8 जीवनी : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

9 आत्मकथा : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

10 सारांश

11 मुख्य शब्दावली

12 अभ्यास हेतु प्रश्न

13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

पिछली इकाई में आपने आधुनिक काल की विभिन्न प्रवृत्तियों का विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में हिंदी गद्य साहित्य के विकास के बारे में चर्चा करेंगे। आधुनिक युग को गद्य युग के नाम से जाना जाता है। इसका कारण यह है कि गद्य की जितनी विकास आधुनिक युग में हुआ,उतना पूर्व में कभी नहीं हुआ। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक हिंदी गद्य प्रायः उपेक्षित ही रहा फोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना के बाद से हिंदी गघ विधाओं ने लोकप्रियता प्राप्त की इन गद्य विधाओं के कारण साहित्य फलक विस्तृत हो सका। उपन्यास, कहानी, नाटक एवं निबंध, तो पहले से ही बहुत लोकप्रियता विधाओं थीं, किंतु कालांतर में संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रा–साहित्य ,जीवनी एवं आत्मकथा भी लोकप्रिय हो गई। वर्तमान में इन विधाओं में नियमित साहित्य सृजन हो रहा है। यद्यपि परिस्थिति परिवर्तन के साथ–साथ इन विधाओं के विषय भी बदलते रहे, किंतु जन–जीवन से इनका गहरा नाता निरंतर ही बना रहा। प्रस्तुत इकाई में हम उक्त विधाओं के स्वरूप एवं विकास का परिचय प्राप्त करेंगे।

1. इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

हिंदी गद्य की लोकप्रियता विधाओं से परिचित हो पाएंगे;

गद्य और पद्य में अंतर कर सकेंगे;

अग्रेंजों के शासन के दौरान भाषा संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे;

खड़ी बोली गद्य की आरंभिक स्थितियों का उल्लेख कर सकेंगे;

भारतेंदु और द्विवेदी युग के गद्य साहित्य के विकास का उल्लेख कर सकेंगे;

प्रेमचंद और उनके बाद के कथा साहित्य के विकास को संक्षेप में समझ सकेंगे;

हिंदी गघ की प्रमुख विधाओं (कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी एवं आत्मकथा) की विकास यात्रा को समझ सकेंगे;

हिन्दी गद्य – विधाओं का उद्भव एवं विकास

साहित्य की प्रमुख विधाएं पद्य एवं गद्य हैं। गद्य की प्रमुख विधाएं कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना हैं। इनके अतिरिक्त गद्य की कुछ अन्य विधाएं संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा तथा रिपोर्ताज हैं।

2. कहानी : उद्भव एवं विकास

मानव के आदि काल से कहानी कहने, सुनने, सुनाने की प्रवृत्ति चली आ रही है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों में कहानी का महत्वप्रायः सभी देशों में है। भारतीय वांगमय में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी में किसी न किसी स्वरूप में कहानी विद्यमान है, इसके अतिरिक्त पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, रामायण, महाभारत, जातक गाथा, तथा पंचतंत्र आदि में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। इन सभी कहानियों में उपदेशात्मक अथवा धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक अर्थ में इन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता है।

कहानी शब्द की व्याख्या

'कहानी' शब्द को अन्य नामों से भी जाना जाता है – आख्याइका, गल्पकथा व संस्कृत कथानिका, प्राकृत कहाणिआ, सिंहली–मराठी कहानी से विकसित हुआ है जिसका अर्थ मौखिक, लिखित कल्पित, वास्तविक, तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना होता है। इसका अंग्रेजी पर्याय 'स्टोरी' है। आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी में हुआ जिसे कहानी या कथा कहते हैं इसका शाब्दिक अर्थ 'कहना' है। इस अर्थ के अनुसार जो कुछ भी कहा जाये कहानी है। किंतु विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष घटना के रोचक ढंग से वर्णन को 'कहानी' कहते हैं। 'कथा' एवं 'कहानी' पर्यायवाची होते हुए भी समानार्थी नहीं हैं। दोनों के अर्थों में सूक्ष्म अंतर आ गया है। कथानक व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है इसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि का समावेश हो जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कहानी एवं उपन्यास को ही माना जाता है जबकि कहानी के अंतर्गत कहानी और लघु कथाएं ही आती हैं।

यूरोप में विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत आया। प्राचीन कहानी एवं आधुनिक कहानी के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है। आधुनिक कहानी जनसाधारण मनुष्य जीवन से संबंधित लौकिक यथार्थवादी, विचारात्मक धरती के सुख तक सीमित है।

परिभाषा :– अमेरिका के कवि, आलोचक व कथाकार 'एडगर एलिन पो' के अनुसार "कहानी वह छोटी आख्यानात्मक रचना है, जिसे एक बैठक में पढ़ा जा सके, जो पाठक पर एक समन्वित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए लिखी गई हो, जिसमें उस प्रभाव को उत्पन्न करने में सहायक तत्वों के अतिरिक्त और कुछ न हो और जो अपने आप में पूर्ण हो।"

मुंशी प्रेमचन्द कहानी के प्रमुख लक्षणों को बताते हुए लिखते है कि "कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता"

हिंदी की प्रथम कहानी–हिंदी की प्रथम कहानी किसे माना जाए इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। लगभग दर्जन भर कहानियां प्रथम कहानी की होड में सम्मिलित हैं जिन्हें आलोचक मान्यता प्रदान करते हैं। सन् 1803 ई. में लिखी गई, हिंदी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना 'रानी केतकी की कहानी' है। इस कहानी के लेखक इंशा अल्ला खां हैं। डॉ. राम रतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी प्रथम कहानी स्वीकारा है। किंतु इसकी संयोग बहुलता, अतिमानवीयता के कारण इसे प्रथम कहानी के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है, क्योंकि ये विशेषताएं आधुनिक कहानी में क्षम्य नहीं है। इसके विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत है कियह नई परंपरा की प्रारंभिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परंपरा की अंतिम कहानी है। डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणायिनी परिणय' (सन् 1887 ई.) को हिंदी की प्रथम कहानी माना है जबकि स्वयं इसके लेखक ने इसे उपन्यास कहा है। कारण यह बताया गया है कि सन् 1900 ई. तक कथा साहित्य को उपन्यास कहने की परिपाटी थी। इसलिए यह भी प्रथम कहानी नहीं है। क्योंकि इसका विभाजन सात निष्कों में किया गया है। प्रत्येक निष्क को अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त प्रतीत होती है। इस तरह खंडों में विभाजित कर कहानी लिखने की परिपाटी चलती रही है। प्रत्येक निष्क या खंड के प्रारंभ में श्लोक बद्ध नीति कथन हैं जो कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस कहानी के रूप बंध पर आख्यान पद्धति का पूर्ण प्रभाव हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में केन्द्रीय भावप्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखलाई गई है।

रैवरेंट जे. न्यूटन कृत 'जमींदार का दृष्टांत' तथा अनाम 'छली अरबी की कथा' नामक दो कहानियां अलीगढ़ से प्रकाशित 'शिलापंख' मासिक के 'कल की कहानी' स्तंभ में प्रकाशित देखकर यह अनुमान लगाया किंचित ये

ईसाई धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'शिलापंख' के संपादक राजेंद्र गढ़वालिया ने सन् 1871 ई. में प्रकाशित इस कहानी को अब तक प्राप्त कहानियों में प्राचीनतम माना है। प्राचीनतम होकर भी प्रथम कहानी नहीं क्यों धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। डॉ. सुरेख सिन्हा गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को प्रथम कहानी मानने पर बल देते हुए लिखा है, "प्रथम कहानी का निर्धारण समयक्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार धारा, या अन्य किसी दृष्टिकोण से। "रानी केतनी की कहानी' के पश्चात् राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना'; भारतेंहु हरिश्चन्द्र कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कहानी की सी रोचकता विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन काल से स्वीकारा है। 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियां इस प्रकार हैं–

क. इंदुमती – किशोरी लाल गोस्वामी (1900 ई.)

ख. गुलबहार – किशोरी लाल गोस्वामी (1902 ई.)

ग. प्लेग की चुडैल – मास्टर भगवान दास (1902 ई.)

घ. ग्यारह वर्ष का समय – राम चन्द्र शुक्ल (1903 ई.)

ड़ पंडित और पंडितानी – गिरजादत्त बाजपेयी (1903 ई.)

च. दुलाई वाली – बंग महिला (1907 ई.)

ये सभी कहानियां 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार प्रथम कहानीकार किशोरीलाल गोस्वामी तथा प्रथम कहानी 'इंदुमती' प्रमाणित होती है। 'इंदुमती' की चर्चा प्रायः प्रत्येक समीक्षक ने की है। इस पर टेम्पेस्ट की छाया मानकर इस की मौलिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया। रामचन्द्र शुक्ल 'इंदुमती' को ही प्रथम कहानी मानते हैं। वे आगे लिखा है, "यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिंदी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है इसके उपरांत 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।"

सुरेश सिन्हा को शुक्ल के कथन में चालाकी की गंध आती है। उन्हें लगता है कि इंदुमती को अनूदित करार देकर अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु यह प्रमाणित हो चुका है कि 'इंदुमती' मौलिक रचना नहीं है।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल शिल्प की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903) हिंदी की प्रथम कहानी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसे आधुनिकता के लक्षण से युक्त माना है।

देवी प्रसाद वर्मा, ओंकार शरद और देवेश ठाकुर आदि समीक्षकों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् 1901) को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय दिया है। देवेश ठाकुर के अनुसार काल क्रमानुसार अपने समय के यथार्थ परिवेश से जुड़ी है। शिल्प की दृष्टि से सहजता, सरलता तथा भाषा की शुद्धता इसमें है। अतः जब तक इस दिशा में और अधिक शोध न हो जाए मान लेना चाहिए कि माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिंदी की प्रथम कहानी है। आर्थिक चेतना की कहानी होने के कारण यह आधुनिक अर्थमूला कहानियों की पहचान की पहली हिंदी कहानी है।

डॉ रामदरश मिश्र 'दुलाईवाली' (सन् 1907 ई.) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है। किंतु बंग महिला का नाम नहीं ज्ञात है। प्रो. वासुदेव 'इंदु' में प्रकाशित 'ग्राम' (1911 ई.) को हिंदी की पहली कहानी का गौरव प्रदान करते हैं। प्रसाद की यह पहली कहानी है। शिवदान सिंह चौहान के विचार में हिंदी कहानी का श्रीगणेश प्रसाद और प्रेमचन्द से माना जाना चाहिए।

राजेन्द्र यादव ने चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत – 'उसने कहा था' (1916) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हुए इसी से आधुनिक हिंदी कहानी का श्रीगणेश मानना चाहिए।

हिंदी कहानी विकास– हिंदी कहानी के विकास में प्रेम चन्द केन्द्र बिन्दु हैं जिन्हें आधार बनाकर प्रेम चन्द पूर्वोत्तर, प्रेमचन्द, प्रेमचन्द परवर्ती युग के विभाग द्वारा संपूर्ण कहानी काल का विवेचन किया जाता रहा है। यह कहना कि प्रसाद का महत्व खो जाता है उनका युग नहीं बन पाता है। वे मूलतः कवि हैं उनका युग माना जा सकता है माना जाए। चरणों में अध्ययन वैज्ञानिकन होते भी आसान है किंतु सन् 1950 ई. से आज तक एक ही चरण नहीं माना जाना चाहिए। लगभग पांच चरणों में कहानी के विकास को विभाजित किया जाना श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

प्रथम चरण (सन् 1870 –1915 ई.)

द्वितीय चरण (सन् 1916 –1935 ई.)

तृतीय चरण (सन् 1936 –1955 ई.)

चतुर्थ चरण (सन् 1956 –1975 ई.)

पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक)

प्रथम चरण (सन् 1870–1915 ई.)

हिंदी का प्रारंभिक कहानियों के विषय में डॉ. रामदरश मिश्र का कथन सत्य है कि इनमें यथार्थ समर्थित आदर्श की व्यंजना लक्ष्य रूप में विद्यमान है। 'इंदुमति', 'दुलाई वाली', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'जमींदार का दृष्टांत', 'प्रणयिनी परिणय', 'छली अरबकी कथा' तथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' आदि प्रमुख कहानियां हैं। जमींदार का दृष्टांत तथा प्रणयिनी परिणय में परोपकारी भावना का चित्रण किया गया है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' की परिणति परहित में हुई है। 'जमींदार का दृष्टांत' में महाजन कृषकों की परेशानी से अवगत होकर सोचता है कि मेरे पास अपार धन दौलत है। इनके आर्थिक संकट का निवारण मैं कर सकता हूं। 'प्रणयिनी परिणय' में राजाराम शास्त्री की सहायता करता है। परोपकारी वृत्ति के आदर्श के साथ राज्य कर्मचारियों की धन लिप्सा के यथार्थ की ओर भी संकेत किया गया है – "ऐसी चपलता, क्या राज्य कर्मचारी ऐसे–ऐसे भयंकर लालच से बच सकते हैं? फिर तब क्या अनर्थ न्यून होने की संभावना हो सकता है? यदि इस समय मैं न होता तो इधर न्यायाधीश अवश्यही घूस लेकर इसे छोड़ देते।" 'ग्यारह वर्ष का समय' में प्रेम के आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है – इस अदृष्ट प्रेम का कर्म और कर्त्तव्य से घनिष्ठ संबंध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में ही हो सकती है।

इस कालावधि की अधिकांश कहानियों में भावुकता और संयोग का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। 'ग्यारह वर्ष का समय' में दीर्घकाल के उपरांत पति पत्नी का मेल एकाएक एक टूटे फूटे निर्जन भवन में हो जाता है। 'इंदुमती' में भी संयोग से ही चन्द्रशेखर इंदुमती का अतिथि बन जाता है। राधिकारमण सिंह कृत 'कानों में कंगना' में गहरी भावुकता के दर्शन होते हैं। अधिकांश कहानियां अंग्रेजी एवं बंगला कहानियों से प्रभावित हैं। कहानी शिल्प अति अव्यवस्थित है मात्र 'छली अरब की कथा' और 'एकटोकरी भर मिट्टी' शिल्प की दृष्टि से कसी हुई कहानियां हैं। यद्यपि इन कहानियों का महत्व नहीं है। इतना अवश्य है कि अब तक कहानीकारों के एक मंडल का गठन हो चुका था तथा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से कहानी एक लोकप्रिय विधा कारूप धारण करती जा रही थी। (देवेश ठाकुर)

द्वितीय चरण (सन् 1916–1935 ई.)

प्रेमचन्द–द्वितीय चरण को कहानी की प्रेमचन्द की अपूर्व देन के कारण प्रेमचन्द युग कहा जाता है। मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से अधिक है जो मानसरोवर के आठ भागों में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों के संग्रह 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम तीर्थ',

तथा 'सप्त सुमन' आदि हैं। प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह 'सोजे वतन' सन् 1907 ई. में प्रकाशित हुआ था जो स्वातंत्र्य भावनाओं से ओत–प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। सन् 1919 ई. में उनकी हिंदी रचितप्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों में इसके अतिरिक्त 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'वज्रपात', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भक्त', 'कफन', 'पंडित मोटे राम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों में जन साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोवृत्तियों एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में निपुण कहानीकार थे। उनकी शैली सरल स्वाभाविक एवं रोचक है। जो पाठक के हृदय पर सीधा प्रहार करती है। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं – उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई है। भाव–विचार, कला–प्रचार का सुंदर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रेमचन्द का कहानी साहित्य है।

द्वितीय चरण में हिंदी कहानी दो विशिष्ट धाराओं में विभक्त होकर चलती है–

(1) प्रथम धारा व्यक्ति हित या व्यक्ति सत्य के भावात्मक अंकन की है, जिसके सर्वप्रथम प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं और रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास तथा चतुरसेन शास्त्री इस परंपरा को अग्रसर करने वाले सहयोगी हैं।

(2) द्वितीय धारा के विषय में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कथन है "हिंदी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि–सत्य की संवेदना है, समष्टि – विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेमचन्द के कहानी साहित्य से आरंभ होती है।" प्रेमचन्द के समसामयिक कहानीकार सुदर्शन और विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक प्रेमचन्द की कथा दृष्टि का समर्थन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रेमचन्द और उनके सहयोगी कहानीकारों में समकालीन यथार्थ की आदर्शात्मक परिणति मिलती है। अपनी कहानी यात्रा के अंतिम चरण में प्रेमचन्द ने स्वयं को आदर्श के मोह से अलग कर दिया था लेकिन सुदर्शन, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ज्वालादत्त शर्मा आदि बराबर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखते रहे। इस दृष्टि से कौशिक की 'रक्षा बंधन', 'सुदर्शन की एलबम', 'हार जीत' और 'एथेन्स का सत्यार्थी' उल्लेखनीय कहानियां हैं। प्रेमचन्द की कहानी यात्रा के तीन मोड़ माने जा सकते हैं।

(1) 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि प्रारंभिक कहानियों में उनका आग्रह पुरातन आदर्शों को प्रतिष्ठित करता प्रतीत होता है। इन कहानियों में उपदेश का प्रच्छन्न स्वर सुनाई देता है।

(2) सन् 1920–30 ई. के मध्य लिखी गई गांधीवादी विवाद धारा सतह पर है।

(3) मैकू', 'शेखनाद', 'दुर्गा मन्दिर', 'सेवा मार्ग' आदि कहानियों में प्रेम चन्द स्थूल कथात्मकता को छोड़कर यथार्थ को विश्लेषण और संकेत के स्तर पर ग्रहण करते दिखाई देते हैं। डॉ. बचनकुमार सिंह के अनुसार, "चरित्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का समावेश भी उनमें आ गया है। नाटकीयता तथा व्यंग्य के पैनेपन के कारण उसमें जीवंतमयता और प्रभान्विति की घनता आ गई है। 'नशा', 'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियां प्रेमचन्द की कहानी कला के अंतिम चरण की है। यहां तक आते–आते प्रेमचन्द अपनी सारी आस्थाओं का परित्याग कर देते हैं और जीवन के प्रति उनकी दृष्टि अधिक तीखी और निर्मम हो गई है। इन कहानियों में जो सूक्ष्मता और सांकेतिकता विद्यमान है वह 'नई कहानी' की अच्छी कहानियों में भी नहीं है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी कहानी का विकास प्रेमचन्द द्वारा सांकेतित दिशा में ही हुआ है।

प्रेमचन्द की कहानियों में जहां एक ओर युग का सच्चा चित्रण है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों के विश्लेषण की कोशिश है वहीं दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि महनीय मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। अधिकांश कहानियों में प्रेमचन्द ने जन साधारण के जीवन को उसी की भाषा में उपस्थित किया है। वे संभवतः पहले कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन अपनी समूची शक्ति और सीमा के साथ उभरा है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "मानव स्वभाव के परिचय, युगबोध, विषय क्षेत्र के विस्तार, कहानी कला के उत्कर्ष आदि की दृष्टि से प्रेमचन्द स्कूल का एक भी कहानीकार प्रेमचन्द की गरिमा को नहीं पहुंच सका।"

जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् 1911 ई. में 'इंदु' में प्रकाशित हुई और जीवनपर्यंत उन्होंने 69 कहानियां लिखी। देवेश ठाकुर का कथन है, "प्रसाद जी पहले कहानीकार हैं जिन्होंने हिंदी को बंगला, अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनुवादों सें मुक्त कर, उसके स्वरूप को मौलिकता और स्थिरता प्रदान की।" इसी आधार पर कुछ आलोचक प्रसाद को प्रथम कहानीकार तथा उनकी कहानी 'ग्राम' को प्रथम कहानी मानते हैं। प्रसाद की कहानियों की विशिष्टता उनके पात्रों के अंतर्द्वन्द्व उद्घाटन, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और कहानी के मार्मिक अंत में निहित है, यद्यपि कविता और नाटक का शिल्प कभी कहानी में प्रमुख हो उठता है और उसकी संरचना में गड़बड़ी पैदा करता है।

प्रसाद की कहानियों में वस्तुगत वैविध्य बिल्कुल न हो, ऐसा नहीं है। 'पुरस्कार', 'दासी तथा गुंडा' आदि में इतिहास का प्रयोग किया गया है जबकि 'मछुआ बड़ा' और 'छोटा जादूगर' में सामाजिक विषमता को उभारा गया है। अधिकतर कहानियों में कथासूत्र की क्षीणता दृष्टिगोचर होती है। लेकिन 'दासी' एवं 'सालवती' आदि कहानियों में अनावश्यक अंश भी कम नहीं है। भावुक ताकी स्फीति कहानी को प्रतिघातित करती है। इन दोषों के होते हुए भी प्रसाद की कथन भंगिमा और चारित्रिक सृष्टि कहानियों को अविस्मरणीय बना देती है। प्रसाद का शिल्प प्रायः 'ग्राम' कहानी से लेकर 'सालवटी' तक एक समान रहा है और इसका अनुकरण नहीं हो पाया है। प्रसाद की शैली में लिखी गई हृदयेश और विनोद शंकर व्यास की अनेक कहानियां असफल रही हैं। उनके शिल्प के संबंध में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है, "हिन्दी कहानी साहित्य में प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है। शिल्प की अनुवर्तिनी नहीं।"

विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक'

विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' (सन् 1891 –1946 ई.) उर्दू से हिंदी में आने वाले प्रेमचन्द युगीन कहानीकार हैं। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' सन् 1913 ई. में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की दृष्टि से कौशिक प्रेमचन्द की परंपरा में आते हैं। उन्होंने समाज सुधार को कहानी का लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यंत सरस, सरल एवं रोचक है। उनकी हास्य एवं विनोद से भरी हुई कहानियां 'चांद' में 'दुबे जी की चिट्ठियां' के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। जो 'कल्पमंदिर', 'चित्रशाला' आदि में संग्रहीत हैं।

आचार्य चतुर सेन शास्त्री

आचार्य चतुर सेन शास्त्री ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। उनकी कहानियों के संग्रह 'रजकण' और 'अक्षत' आदि प्रकाशित हुए हैं। उनकी प्रमुख कहानियां में 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', 'दे खुदा की राहपर', 'भिक्षुराज' तथा 'ककड़ी की कीमत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों में मात्र तीन कहानी लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। हिंदी कहानी साहित्य में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। उनकी प्रथम कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी जो अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग, और बलिदान से ओत–प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोक प्रद होते हुए भी इसमें हास्य एवं व्यंग्य का

समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुंचती है। विभिन्न दृश्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएं एक से बढ़कर एक हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक वह पूरी कहानी को पढ़ नहीं लेता है उसे छोड़ती नहीं है तथा जिसने एक बार कहानी पढ़ लिया। वह उसके वाक्य को आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता है। 'उसने कहा था' भाव, विचार, शिल्प तथा शैली आदि सभी दृष्टियों से यह कहानी एक अमर कहानी है। गुलेरी की दूसरी कहानी 'सुखमय जीवन' भी पर्याप्त रोचक एवं भावोत्तेजक है। इसमें एक अविवाहित युवक के द्वारा विवाहित जीवन पर लिखी गई पुस्तक को लेकर अच्छा विवाद खड़ा किया गया है। जिसकी परिणति एक अत्यंत रोचक प्रसंग में हो जाती है। 'बुद्धू का कांटा' भी अच्छी कहानी है।

पं. बद्रीनाथ भट्ट सुदर्शन का जन्म सन् 1896 ई. में हुआ था। कहानी कला में इनका महत्व कौशिक के समान स्वीकारा गया है। इनकी प्रथम कहानी 'हार की जीत' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तब से अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थ यात्रा', 'पुष्प लता', 'गल्प मंजरी', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'चार कहानियां', तथा 'पनघट' आदि। उन्होंने अपनी कहानियों में भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का चित्रण अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र का हिंदी कहानी जगत में प्रवेश सन् 1922 ई. में हुआ। उग्र की उग्रता को परिलक्षित आलोचकों ने उन्हें 'उल्कापात','धूमकेतु', 'तूफान' तथा 'बवंडर' आदि नामों से विभूषित किया। इसी से आपकी विद्रोही प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है जिसको ऐसी ऐसी उपमाएं या उपाधियां मिली हों उसकी कहानी कला कैसी होगी? सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी 97 कहानियों में 'वीभत्स' एवं 'कुरूपता' को भी स्थान मिल गया है किन्तु उग्र का उद्देश्य जीवन की कुरूपता का प्रचार करना नहीं था अपितु कुरूपता का समूल अंत करना था। उनके कहानी संग्रह 'दोजख की आग', 'चिनगारियां', 'बलात्कार' तथा 'सनकी अमीर' आदि प्रकाशित है। ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत कम कहानियां लिखी हैं किन्तु हिन्दी जगत ने उनका अच्छा स्वागत किया है। उनकी कहानियों में 'भाग्यचक्र' तथा 'अनाथ बालिका' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों के अतिरिक्त द्वितीय चरण के अन्य कहानीकार रामकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

तृतीय चरण (सन् 1936–1955 ई.)

हिंदी कहानी का तृतीय चरण जैनेंद्र के आगमन से आरंभ होता है। तृतीय चरण की कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) व्यक्ति – सत्य का उद्घाटन, मनोवैज्ञानिक धारणाओं के संदर्भ में करने वाली कहानियां जिनका प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद, वाजपेयी और पहाड़ी आदि कहानीकार करते हैं।

(2) समाज सापेक्ष– इस वर्ग की कहानियों का समाज सापेक्ष प्रश्नों से संबंध है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' और अमृत राय हैं।

(3) व्यक्ति सत्य–समष्टि सत्य– इस वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जो व्यक्ति सत्य तथा समष्टि सत्य दोनों को सुविधानुसार अपनी कहानियों का आधार बनाते हैं। अश्क और भगवती चरण वर्मा आदि इसी वर्ग में आते हैं।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार ने स्थूल समस्याओं को कहानी का विषय न बनाकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विषयों को कहानी का विषय बनाया। उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नवीन अंतर्दृष्टि, संवेदनशीलता एवं दार्शनिक गहनता प्रदान की। सामान्य मानव की सामान्य परिस्थितियों को न लेकर असामान्य मानव की असामान्य परिस्थितियों से प्रभावित मानसिक प्रक्रियाओं का व्यापक विश्लेषणकिया है। उनका दृष्टिकोण समष्टिगत न होकर व्यष्टिगत था, भौतिकवाद की अपेक्षा

आध्यात्मिक वाद था। उनके पास विषय सामग्री का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इसलिए प्रत्येक रचना में एक ही तथ्य का विश्लेषण करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। घटनाओं की अपेक्षा उन्होंने चरित्र –चित्रण तथा शैली को अधिक महत्व दिया है। इनकी कहानियों के संग्रह 'वातायन', 'स्पर्धा', 'पाजेंब', 'फांसी', 'एक रात', 'जयसंधि' तथा 'दो चिड़िया' आदि हैं।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' ने अपनी कहानियों में करुण रस की अभिव्यक्ति मौलिक ढंग से की है। उनके कहानी संग्रह 'किसलय', 'मृदुल' तथा 'मधुमयी' आदि प्रकाशित हुए हैं। इनकी कहानियों में मार्मिकता का हृदय ग्राह्य रूप मिलता है। इसलिए इनकी कहानियों का स्थान अत्यधिक ऊंचा है।

चंडीप्रसाद हृदयेश का दृष्टिकोण आदर्शवादी था। उनकी कहानियों में सेवा, त्याग, बलिदान तथा आत्म शुद्धि आदि की उच्च भावनाओं का चित्रण किया गया है। उनमें भावुकता की प्रधानता है। उनकी कहानी के संग्रह 'नंदन निकुंज' तथा 'वनमाला' आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं।

गोविंदवल्लभ पंत की कहानियों में यथार्थ की कटुता तथा कल्पना की रंगीनी का दिव्य समन्वय मिलता है। उनमें प्रणय–भावनाओं का चित्रण अति मधुर रूप में किया गया है।

सियारामशरण गुप्त ने कविता की तरह कहानी क्षेत्र में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'झूठ–सच' है जिसमें आधुनिक युगीन यथार्थ वादी लेखकों पर तीखा व्यंग्य किया है। कहानी कला की दृष्टि से भी यह कहानी अद्वितीय है। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानुषी' है।

वृंदावनलाल वर्मा ने कहानी की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी कहानियों में भी कल्पना एवंइतिहास का समन्वय मिलता है। इनकी कहानियों का संग्रह 'कलाकार का दंड' है। वर्मा की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता होती है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की कहानियां अभिजात्य बौद्धिकता द्वारा लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। कथ्यगत विविधता के होते हुए भी इन कहानियों का अनुभव सांसारिक, व्यक्तिगत तथा अत्यधिक सीमित है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का स्मरण और सचेत रूप से केन्द्रित करने का आग्रह भी 'कड़ियां', 'पुलिस की सीटी', 'लेटर बॉक्स', 'हीलोबीन बतखें' आदि कुछ कहानियों में अत्यधिक मुखर हो उठा है। डॉ. रामदरश मिश्र का कथन है, "अज्ञेय का गरिष्ठ व्यक्तित्व उनकी कहानियों को एक निजता प्रदान करता है। इस निजता की बनावट बड़ी जटिल है। इसीलिए इनकी कहानियों में लेखक की वैचारिकता, अनुभव, अध्ययन, तटस्थता, मानवीय प्रतिबद्धता आदि का बड़ा ही जटिल सहअस्तित्व दिखाई पड़ता है। इस जटिल सहअस्तित्व का परिणाम शुभ–अशुभ दोनों है। एक ओर वे इसके चलते 'रोज' जैसी अच्छी कहानी लिखने में समर्थ एवं सफल सिद्ध हुए हैं, वहीं दूसरी ओर घोर बौद्धिकता से परिपूर्ण रचनाएं भी उन्होंने की हैं। 'रोज' में एक रस और यांत्रिक ढंग से जीवन जीने का संदर्भ अति सहजता किंतु तीखेपन के साथ चित्रित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञेय मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु कहानी लिख रहे हैं।

यशपाल, रांगेय राघव, अमृत लाल नागर एवं बेचन शर्मा

सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करना तथा उसी में जूझते रहने का क्रियाकलाप करने का श्रीगणेश मुंशी प्रेमचन्द ने किया था। सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में यशपाल, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर एवं बेचन शर्मा 'उग्र' उनके अनुगामी रहे हैं।

यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के माध्यम से देखते हैं क्योंकि वे मार्क्सवादी कामरेड था। साम्यवाद को प्रधानता देते थे। सन् 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। जिसने तत्कालीन रचनाकारों पर अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया तथा प्रगतिशील रचनाएं सामने आने लगीं। यशपाल

इन प्रतिबद्ध रचनाकारों में अग्रगण्य थे। यशपाल का अनुभव संसार अति व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति, असहायता और यातना को व्यक्त करने वाली 'परदा', 'फूलों का कुरता', 'प्रतिष्ठा का बोझ' आदि कहानियां है। दूसरी ओर श्रमशील विश्व के संघर्ष और शोषण तंत्र की विरोधी कहानियां हैं, जिनमें 'राग', 'कर्मफल', 'वर्दी' तथा'आदमी का बच्चा' महत्वपूर्ण कहानियां हैं। पुरातन मूल्यों, अप्रासंगिक रूढ़ियों और नैतिक निषेधों को तिरस्कृत करने का उनका ढंग वैयक्तिक है। धारदार व्यंग्य उनकी अभिव्यंजना का सर्वाधिक सबल अस्त्र है। यशपाल में जहां कथ्यगत समृद्धि है वहीं शिल्पगत प्रभाव भी है। कुछ प्रगतिवादी कहानीकारों की तरह उनकी कहानियों में शिल्प का अवमूल्यन नहीं दिखलाई पड़ता है।

रांगेय राघव की कहानियां मार्क्सवादी बोध से सम्पन्न होकर भी कहीं–कहीं उससे बाहर जाती हुई दृष्टिगोचर होती है। अनुभवकी वास्तविकता उनकी प्रथम विशेषता है। रांगेय राघव की सर्वश्रेष्ठ कहानी मदल है।

बेचन शर्मा 'उग्र' को प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों में गिना जाता है। वास्तव में उनकी कहानी कला का उमभांश प्रेमचन्दोत्तर युग में ही अस्तित्व में आया। वे घोषित मार्क्सवादी न थे लेकिन सामाजिक विसंगतियों को उधेड़ने में वे प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। 'कला का पुरस्कार', 'ऐसी होली खेलो लाल', 'उसकी माँ' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' अश्क को न तो प्रगतिवादी कहानीकार कहा जा सकता है न व्यक्तिवादी। डॉ. रामदरश मिश्र ने अश्क के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को लेकर कहानी लिखने वालों को प्रगतिशील कोटि में रखा है। वस्तुतः अपनी संवेदना के दृष्टिकोण से वे प्रगतिशील कथा चेतना से स्पष्ट अलगाव रखते हैं। उनके भाषा शिल्प पर प्रेम चन्द का गहन प्रभाव दिखलाई पड़ता है। एक ओर अश्क ने 'डाची' और 'कांड़ा का तेली' जैसी अति चुस्त प्रभावशाली कहानियां लिखी हैं वहीं दूसरी ओर 'एंबेसडर' तथा 'बेबसी' जैसी यौन समस्याओं वाली कहानियों में उनको सफलता नहीं मिली है। उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए ह्रषिकेश ने लिखा है –"वह इतनी सपाट और आत्मीय हैं कि पढ़कर चिंता नहीं होती, न खेद होता है, न आश्चर्य न जिज्ञासा और न ही व्यामोह, केवल तरल अनुभूति देने वाली अश्क की कहानियां अन्वेषण तो करती हैं अन्वेषक नहीं बनाती और पाठक के समक्ष आत्म निर्णय का संचार नहीं करती।" अश्क की बहुत सी कहानियों पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

भगवतीचरण वर्मा भगवती बाबू अपनी व्यंग्यात्मक कहानियों के लिए चर्चा का विषय बने रहे। उनको प्रतिष्ठित करने में 'प्रायश्चित', 'दो बांके' और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' आदि कहानियों का विशेष योगदान रहा है।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा पहाड़ी का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी कहानीकारों में भैरव प्रसाद गुप्त तथा अमृत राय का भी कहानी साहित्य को प्रमुख योगदान है।

चतुर्थ चरण (सन् 1956–1975 ई.)

हिंदी कहानी के चतुर्थ चरण में जैनेंद्र द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषण की परंपरा का विकास हुआ। भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा राम प्रसाद आदि का योगदान मिला। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों को उद्घाटित किया। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 'हिलोर', 'पुष्करिणी' तथा 'खाली बोतल' आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में 'मिठाई वाला', 'झांकी', 'त्याग', तथा 'वंशीवादन' आदि श्रेष्ठ कहानियां मानी जाती हैं। भगवती चरण वर्मा ने कहानी के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है। उनमें विश्लेषण की गरिमा तथा गंभीरता है। मार्मिकता एवं रोचकता का गुण भी विद्यमान है। उनके कहानी–संग्रह 'खिलते–फूल', 'इंस्टालमेंट' तथा 'दो बांके' आदि उल्लेखनीय हैं।

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय चतुर्थ चरण के मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भी अज्ञेय का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मनोविश्लेषण परंपरा को और आगेबढ़ाया है। 'विपयाग', 'परंपरा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

इलाचन्द्र जोशी इनके कहानी संग्रह 'रोमांटिक छाया', 'आहूति' तथा 'दीवाली और होली' आदि हैं। जोगी ने मनोविज्ञान के सत्यों का उद्घाटन किया जिससे अन्य लेखकों की अपेक्षा इनका अधिक मर्मस्पर्शी रूप सामने आया।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' सामाजिक विषयों को अपनाने वाले लेखकों में उपेंद्रनाथ 'अश्क' का नाम चतुर्थ चरण में भी प्रमुख है। उनकी कहानियों में 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती', 'दूलो', 'मरुस्थल', 'गोखरू', 'खिलौने', 'चट्टान', 'जादूगरनी' तथा 'चित्रकार की मौत' आदि प्रमुख हैं। इनको अत्यधिक लोकप्रियता मिली। अश्क की विषय वस्तु, शैली एवं रोचकता की दृष्टि से प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ानेवाले कहानीकार हैं।

यशपाल ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज की विषमताओं पर करारा व्यंग्य किया हैं उनकी कहानियों में पराया सुख,'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञान दान', 'कुछ न समझ सका', 'जबरदस्ती' तथा 'बदनाम' आदि उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का कहानी क्षेत्र में विशेष नाम है। आपकी कहानियों के द्वारा कहानी–कला का विकास हुआ है। विद्यालंकार के कहानी संग्रह 'चन्द्रकला' तथा 'अमावस' है।

राम प्रसाद पहाड़ी का हिंदी कहानी को विशेष योगदान है। पहाड़ी के कहानी संग्रह 'सड़क पर', 'मौली' तथा 'बरगद की जड़े', आदि उल्लेखनीय हैं।

हास्य रस की कहानियां

हिंदी में हास्य रस की कहानियां लिखने वालों में जी.पी. श्री वास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्ण प्रसाद गौड़, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानंद, मिर्जा अजीम बेग, चुगताई तथा जयनाथ नलिन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जी.पी. श्रीवास्तव की कहानियों में अत्यधिक वैविध्य उपलब्ध है। इनकी कहानियों में 'पिकनिक', 'भड़ाम सिंह शर्मा', 'गुदगुदी' तथा 'लतखोरी लाल' आदि महत्वपूर्ण हैं। उनका हास्य साधारण स्तर का है। 'बेढब बनारसी' और 'अन्नपूर्णानंद' की कहानियों में अधिक परिष्कृत हास्य मिलता है। अन्नपूर्णानंद की कहानियों में 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' आदि उल्लेखनीय हैं। मिर्जा ने 'गीदड़ को शिकार', 'लेफ्टिनेंट', 'कोलतार' आदि कहानियां लिखीं। नलिन के कहानी संग्रह में 'नवाबी सनक', 'शतरंज के मोहरे', 'जवानी का नशा', 'टीलों की चमक', आदि उल्लेखनीय हैं।

चतुर्थ चरण को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी युग भी कहा जाता है। इस अवधि में तीन पीढ़ियों की लिखी कहानियां आती हैं–

(1) यशपाल, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा जैसे पुरानी पीढ़ी के कहानीकार सक्रिय रहे।

(2) आजादी मिलने के समय वयस्क हो रही पीढ़ी के कहानीकारों राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, रेणु, मोहन राकेश आदि ने खूब कहानियां लिखीं।

(3) सन् 1960 ई. के अत में युवा पीढ़ी ने लिखना प्रारंभ किया जिसने स्वतंत्र भारत में आंखे खोली थीं। इस पीढ़ी के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, कामता नाथ, इब्राहिम शरीफ, हिमांशु जोशी तथा महीपाल सिंह आदि प्रमुख हैं। स्वतंत्रता के बाद की हिंदी कहानी का इतिहास आंदोलन का इतिहास है। चार–पांच साल की अवधि बीतते–बीतते एक आंदोलन उठ खड़ा होता रहा जिसे लेकर खूब ढोल पिटे तथा नारे लगे। इसके परिणामस्वरूप कहानी एक गंभीर एवं केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सन् 1950 ई. के बाद कहानी में एक नवीन मोड़ आया जिससे नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी सहज और समानांतर कहानी के अलग अलग झंडे लहराने लगे। इस ढाई–तीन दशक की अवधि में ढेरों अच्छी बुरी कहानियां लिखी गईं। नई कहानी

के नई होने की घोषणा कम, स्वतंत्रता पूर्व की कहानी के पुरानी हो जाने की घोषणा अधिक थी। सन् 1950 ई. तक आते आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैनेन्द्र की चौंकाने वाली दार्शनिक कथा, मुद्रा, अज्ञेय की सतही प्रगतिशील कहानियां तथा कथा एवं शिल्प के द्वंद्व में फंसी हुई यशपाल की कहानियों की प्रासंगिकता समाप्त प्राय है। ऐसा प्रतीत होता था कि या तो वे कहानीकार बुझ चुके हैं अथवा कहानी लेखन का आत्म विश्वास उन्हें अनाथ बनाकर चला गया है। ऐसी स्थिति में एकाएक कहानी के नये पन के आग्रह का उभर कर आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेना आकस्मिक घटना नहीं अपितु पुराने के प्रति नए का विद्रोह तथा नवीन कहानी लेखक की तड़प तथा छपास है।

हिंदी कहानी साहित्य की अभिवृद्धि में महिला कहानीकारों ने भी कम योगदान नहीं किया है। सुभद्राकुमारी चौहान, उमा नेहरू, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक, उषा देवी मित्रा, सत्यवती मलिक, कमलादेवी चौधरानी, महादेवी वर्मा, चंद्रप्रभा, तारा पांडेय, चन्द्रकिरण सौनरिक्शा, रामेश्वरी शर्मा, पुष्पा महाजन, विद्यावती शर्मा आदि ने अनेक कहानियों की रचना की है। इनकी कहानियों में प्रायः पारिवारिक जीवन और हिंदी समाज में नारी की दारुण स्थिति के चित्र हैं।

पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक) नई कहानी

नामकरण

कमलेश्वर का कथन है कि जितेंद्र एवं ओम प्रकाश श्रीवास्तव ने कहानी को नवीन रूप देने का प्रयास किया। कहानी के नवीन रूपों को 'नई कहानी' नाम देने का श्रेय दुष्यंत कुमार को है। डॉ. बच्चन सिंह ने सन् 1950 ई. में शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रकाशित 'दादी मां' में नयी कहानी के तत्वों का अवलोकन किया। उनके विचार से सन् 1956–57 में नई कविता के साम्य पर इसका नाम 'नई कहानी' रख दिया गया। सूर्य प्रकाश दीक्षित नई कहानी के शुभारंभ का श्रेय कमलेश्वर मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव को संवेत रूप में देते हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों को किसी आंदोलन का श्रेय देना उचित प्रतीत नहीं होता है। सार्थक आंदोलन परिवेश की मांग तथा पूरी पीढ़ी के प्रयास की उपज होता है। हिंदी कहानी साहित्य में नयेपन का प्रारंभ 'पूस की रात', 'नशा' तथा 'कथन' जैसी कहानियों से हो चुका था। सन् 1950 ई. तक आते आते कहानी के कथाशिल्प में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। नयेपन की यह प्रवृत्ति सन् 1956–57 ई. में आंदोलन का रूप ग्रहण कर चुकी थी। डॉ. नामवर सिंह उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने नई कहानी के प्रवक्ता की भूमिका निभाई है। कहानी के नववर्षांक सन् 1956–58में प्रकाशित उन लेखों से इस आंदोलन को अति बल मिला।

नई कहानी उस समय लिखी गई जब कहानीकारों में देश की स्वतंत्रता को लेकर संशय की भावना का उदय हो रहा था। मोह भंग की पृष्ठ भूमि का निर्माण हो रहा था। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान के विभाजन के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर मूल्य संक्रमण तथा मूल्य–विघटन का परिवेश तैयार हो गया था। राजनीतिक पृष्ठभूमि में भी सेवा, त्याग, करुणा, सत्य, प्रेम आदि गांधीवादी मूल्य कड़ी आजमाइश में पड़ गए थे। डॉ. भगवान दास वर्मा का कथन है, "परंपरावादी जीवन–दर्शन की असारता, भारतीय संस्कृति की नए युग के संदर्भ में निरर्थकता, स्वतंत्रता प्राप्ति और भ्रम भंग की अवस्था, जीवनादर्शों की अनिश्चितता, व्यक्ति जीवन, अकेलेपन एवं अजनबीपन एहसास आदि अनुभूत सत्यों के अनेक स्तरीय संदर्भों के परिपार्श्व पर नई कहानी विकसित हो रही है।

नई कहानी की विशेषताएं

नई कहानी की अनेक विशेषताएं उभरकर सामने आईं जिनमें प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–जटिल एवं व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति नई कहानी की प्रमुख विशेषता जीवन के जटिल एवं व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति है। परिवर्तित परिवेशानुसार, अपने नवीन दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में कहानीकारों ने समाज को बहुरंगी कहानियां प्रदान

कीं। कहानीकार व्यक्त सत्य की परिधि एवं सामाजिकता के बंद कठघरे में अपने को मुक्त करके नई कहानी कर रहे थे। जिसके परिणामस्वरूप उनकी कहानियों में एक ओर पारिवारिक विघटन दिखलाई पड़ता है। दूसरी ओर आर्थिक सामाजिक तीव्र गति के परिवर्तनों को नई कहानी का विषय बनाया गया है। मध्यवर्गीय, निराशा, हताशा एवं पीड़ाओं को नई कहानी में विस्तार से उभारा गया है। देश–विभाजन के परवर्ती परिवेश तथा समस्याओं को कुछ कहानीकारों ने अपनी नई कहानी का विषय बनाया है। व्यापक यथार्थ बोध की कहानियों में ऊषा प्रियंवदा–'वापसी', राजेंद्र यादव – 'छूटना', कमलेश्वर 'राजा निरबंसिया', राकेश 'एक और जिंदगी', मार्कंडेय – 'हंसाजाइ अकेला', शिव प्रसाद सिंह – 'कर्मनाशा की हार', मोहन राकेश – 'मलवे का मालिक', आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें ग्राम, कस्बा, नगर एवं महानगर के व्यापक फलक पर जीवन की सच्चाइयों को उकेरा गया है।

सांकेतिकता

मोहन राकेश के अनुसार नई कहानी की प्रमुख विशेषता सांकेतिकता है। सांकेतिकता पुराने कहानीकारों में भी है लेकिन उनका संकेत यदा–कदा था। उनकी सांकेतिकता वैचारिक स्तर तक सीमित थी। नई कहानी कथ्य–कथन दोनों स्तरों पर सांकेतिकता को प्रमाणित करती हैं। सुरेंद्र के अनुसार वह किसी स्तर पर संकेत का उपयोग न होकर स्वयं संकेत होती हैं सांकेतिकता की दृष्टि से भीष्म साहनी – 'चीफ़ की दावत', अमरकांत – 'जिंदगी और जोंक' आदि अवलोकनीय हैं। नई कहानी ने स्थापित नैतिकबोध को चुनौती दी है। कमलेश्वर – 'तलाश' तथा राजकमल चौधरी – 'दांपत्य' जैसी कहानियों में परंपरागत नैतिक वर्जनाओं एवं मान्यताओं को झटका सा दिया गया। डॉ. भगवान दास वर्मा के अनुसार–स्थापित नैतिक बोध का विघटन आधुनिक कहानी का तथ्य बनकर चित्रित हुआ है। कहीं वह चित्रण परंपरागत मूल्यों के साथ खंडन का है, कहीं उनकी आग्रह मूलकता के खंडन का है तो कहीं उनका मखौल उड़ाने वाले प्रसंगों का है।"

भाषिक संरचना एवं शिल्प

नई कहानी की भाषिक संरचना एवं शिल्प भी नवीनतामय है। बिंबात्मक एवं सांकेतिक भाषा के साथ–साथ स्पष्ट बयानी की प्रवृत्ति भी इसमें है। नई कहानी ने कहानी को नए मुहावरे, भाषायी सपाटन, एवं समसामयिक चेतना से संबद्ध कर दिया –डॉ. पवन कुमार मिश्र। नई कहानी का शिल्प इसके कथ्य की आंतरिक मांग के परिणामस्वरूप स्वतः नया हो गया है। यह सचेष्ट सायास न होकर अयत्नज है। राजेन्द्र यादव जैसे इने–गिने कहानीकारों में शिल्प की अतिरिक्त सजगता दृष्टिगोचर होती है, अन्यथा अधिकांश नई कहानियां सहज संप्रेषणीय हैं। नई कहानी में रेखाचित्र, रिपोर्ताज, ललित निबंध एवं यात्रावृत्त का शिल्प भी समाहित हो गया है। इस प्रकार नई कहानी ने कहानी के परंपरागत पुराने ढांचे को चकनाचूर कर दिया है। निश्चित ढंग से कहानी गढ़ना और उसे समाप्त करना नई कहानी की प्रवृत्ति नहीं है। फॉर्मूला बद्ध शिल्प नई कहानी में समाविष्ट नहीं हुआ, इसलिए निश्चित आदि, अंत, चरम सीमा अथवा इन्हीं जैसे अन्य नुक्तों का प्रयोग, नए कहानीकारों ने अपने यहां नहीं किया है। जबकि इन नुक्तों ने पुरातन कहानी के शिल्प को दूर तक निर्देश दिए थे। युगीन विडंबना का तलख व्यंग्य का संप्रेषण नई कहानी में इतना सकल हुआ है कि उसके चलते व्यंग्य भाषा का रूप एक खास कोने से उभर सका है – सुरेंद्र। व्यंग्य हेतु हरिशंकर परसाई की नयी कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। अति यथार्थ की प्रवृत्ति के प्रस्फुटन एवं विकास ने नई कहानी के स्वरूप को निखारा। नई कहानी का नारा बुलंद करते हुए नवोदित कहानीकार नग्न यथार्थ का चित्रण स्वच्छंद रूप से अपनी कहानियों में कर रहे हैं आधुनिकता, समसामयिकता, न्यूनता आदि आकर्षक शब्दों की आड़ में अपनी भोगवादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति को अवगुंठित करने के प्रयास में संलग्न है। इनके पास व्यक्तिगत दृष्टिकोण एवं वैयक्तिक मान्यताओं का अभाव है, इसलिए स्वदेश–विदेश की प्रत्येक नवोदित प्रवृत्तियों का अंधानुकरण करने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं। एक ही कहानीकार विभिन्न समयों में अनेक प्रवृत्तियों से आक्रांत रहता है। प्रगतिशीलता का गुणगान करने वाले कहानीकार नग्नयौनवाद के पंक में सूकर जैसे लोट रहे हैं।

उपेंद्रनाथ अश्क ने इस प्रवृत्ति को फैशन का नाम दिया है तथा कहा है "हिंदी कहानी में किसी प्रकार एक के बाद एक नए नए फैशन प्रचलित होते जा रहे हैं कभी अश्लील कहानियों का फैशन चलता है, कभी आंचलिक कहानियों का, अभी सेक्स तथा प्रतीकवाद का। वास्तव में नए कहानीकारों में सुदृढ़ आस्था, स्वस्थ जीवन दर्शन तथा व्यापक जीवन दृष्टि का नितांत अभाव है। वे वासना की संकीर्ण घाटियों और विलासिता की खंदक में फंसकर प्रगति की राह से विमुख होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यह स्थिति न केवल साहित्यकारों या साहित्य जगत के लिए घातक है अपितु मानव समाज के लिए विनाशक है।

उपर्युक्त नई कहानी की विशेषताओं की सम्यक विवेचना तथा कहानीकारों की सामान्य विवेचना करके इस निष्कर्ष पर पहुंचत हैं कि नई कहानी को प्रवृत्तियों की दृष्टि से छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) शहरी मध्यवर्गीय जीवन चित्रण– इस वर्ग में आने वाले कहानीकारों ने मुख्यतः नगरीय मध्यवर्गीय जीवन की आंतरिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इनके दृष्टिकोण का अति यथार्थवादी लक्ष्य यौन विकृतियों, कुंठाओं, अभावों आदि के चित्रण का रहा है। शिल्प–शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नूतन पर जोर दिया है। इस वर्ग में आने वाले मुख्य कहानीकार एवं उनकी कृतियां इस प्रकार हैं– राजेन्द्र यादव– कहानी संग्रह – 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'छोटे छोटे ताजमहल', 'एक पुरुष एक नारी', आदि; मोहन राकेश– संग्रह– 'नए बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिदंगी'; अमरकांत – 'जिदंगी और जोक' तथा धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मार्कंडेय, कमलेश्वर, डॉ. लक्ष्मी नारायणलाल, रमेश वक्षी, शैलेश भटियानी, नरेश मेहता, मन्नू भंडारी, आदि कहानीकार इस वर्ग में आते हैं।

(2) ग्रामीण जीवन– इन्होंने आचंलिक पृष्ठभूमि पर ग्रामीण जीवन को अंकित करने का प्रयास किया है। जिनमें फणीश्वरनाथ रेणु – संग्रह – 'ठुमरी'; राजेन्द्र अवस्थी तृषित – संग्रह – 'गंगा की लहरें' मार्कंडेय – 'महुआ आम के जंगल'; शिवप्रसाद सिंह – 'इन्हें भी इंतजार है' तथा शेखर जोशी आदि के नाम इस वर्ग में लिए जा सकते है।

(3) हास्य व्यंग्यमयी– इस वर्ग में हास्य व्यंग्यमयी कहानियों के लेखकों को लिया जा सकता है जिनमें केशवचन्द्र वर्मा, श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र त्यागी, शांति मेहरोत्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(4) व्यापक प्रगतिशील– यह वर्ग ऐसे कहानीकारों का है जिसमें व्यापक प्रगतिशील दृष्टि से जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है। इस वर्ग में कृष्ण चन्द्र–संग्रह – 'गरजन की शाम', 'काला सूरज', 'घूंघट में गोरी जले'। अमृत राय – संग्रह 'भोर से पहले', 'तिरंगे कफ़न', 'नूतन आलोक', भैरव प्रसाद आदि को स्थान दिया गया है।

(5) अन्य– इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे कहानीकार हैं जिन्हें किसी एक वर्ग में स्थान नहीं दिया जा सकता क्योंकि किसी विशिष्ट वर्ग से उनका संबंध नहीं है। जैसे विष्णुप्रभाकर, सत्यपाल आनंद, कृष्णबलदेव वैद्य आदि।

(6) नए कहानीकारों के विरुद्ध मोर्चा– इस वर्ग को सचेतन भी कहा गया। नए कहानीकारों की अति सूक्ष्मता, अतिवैयक्तिकता, संकीर्णता, एवं निष्प्राणता की प्रवृत्तियों के विरुद्ध संगठित मोर्चा स्थापित करने एवं जीवन के व्यापक एवं स्वस्थ रूप को कहानी में स्थापित करने के लक्ष्य से अनेक कहानीकारों ने सचेतन कहानी के नाम से एक वर्ग की स्थापना की है। इस वर्ग में डॉ. महीष सिंह, मनहर चौहान, कुलभूषण, रमेश गौड़, हिमाशु जोशी, सुदर्शन चोपड़ा, सुरेन्द्र मल्होत्रा,जगदीश चतुर्वेदी, वेद राही, धर्मेंद्र गुप्त, योगेन्द्रकुमार लल्ला, राजीव सक्सेना, देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे अनेक प्रतिभाशाली कहानीकार सम्मिलित हैं। यदि इन लेखकों ने मात्र वर्ग विशेष के विरोध को अपना लक्ष्य न बनाकर युग की व्यापक समस्याओं एवं जीवन की गंभीर अनुभूतियों के आधार पर जीवन के स्वस्थ, व्यापक एवं उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया होता तो वे निश्चित ही कहानी साहित्य

को सही दिशा देने में सफल हो जाएंगे अन्यथा 'सचेतन कहानी' भी नई कहानी की तरह मात्र एक फैशन बन कर रह जाएगी।

हिंदी कहानी क्षेत्र में अवत्तीर्ण होने वाली अन्य नई प्रतिभाओं में कृष्णा सोबती, रजनी पनिकर, पुष्पा जायसवाल, उषा प्रियंवदा, विजय चौहान, सलमा सिद्दकी, डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता – संग्रह– 'शिमले की क्रीम', 'पुरानी मिट्टी' तथा 'पुराने सांचे', सोमवीरा, प्रयाग शुक्ल, मेहरून्निसा परवेज, रघुवीर सहाय, शांति मेहरोत्रा, दूधनाथ सिंह, इंदु बाली, सुरेन्द्र पाल, गिरिराज, धर्मेंद्र, रवीन्द्र कालिया, मृत्युंजय उपाध्याय, अवध नारायण सिंह, बलवंत सिंह, गंगा प्रसाद विमल, परेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में विषय वस्तु की दृष्टि से तथाकथित नई काहनी एक ऐसे वर्ग के कहानीकारों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं जीवन दर्शनका प्रतिनिधित्व करती है जिनका जीवन घर के बंद दरवाजों, कॉलेज की दीवारों, शहर की गलियों, और नगर के मदिरालयों में बीता है, जिनकी जीवन–यात्रा काफी हाउसों से लेकर पत्र संपादकों के कार्यालयों तक सीमित है, जिनकी सबसे बड़ी समस्यादमित वासना, सेक्स की भूख, सुंदर प्रेयसियों की चाह, और भोगी हुई पत्नियों का तलाक है, जिनका आदर्श फ्रायड, सार्त्र और कामू हैं जो रहते हैं भारत में किन्तु स्वप्न लंदन की रात या पेरिस के मध्याह्न का लेते हैं तथा काफी का प्याला, सिगरेट का धुंआ और संपादक का मनीऑर्डर ही जिनकी रचनाओं का सबसे बड़ा प्रेरणा स्रोत है। ऐसी स्थिति में उनसे किसी गंभीर अनुभूति, व्यापक अनुभव एवं बड़े सत्य की आशा करना व्यर्थ है। कहानी के 'नई कहानी' स्वरूप के आगमन से अन्य नामों से कहानी के अनेक रूप प्रचलन में आ गए–

हिन्दी कहानी

नई कहानी के बाद उसकी दुर्बलताएं और उसकी उपलब्धियां कहानी की तरह स्पष्ट रहीं। यौन प्रसंगों के प्रति आवश्यक मोह, क्षणवादी–भोगवादी दृष्टि, शिल्पगत चमत्कारी प्रवृत्ति आदि ने कई कहानी का अवमूल्यन किया। विरोधी प्रवृत्ति से भी आहत हुई। यही कारण है कि सन् 1960 ई. में ही नई कहानी एवं उसके लेखक पुराने लगने लगे। फिर नये पन की मांग आई जिसके फलस्वरूप अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समानांतर कहानी, सक्रिय कहानी तथा जनवादी कहानी के आंदोलन प्रारंभ हो गए। डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने सन् 1960 ई. के बाद की कहानी में नई कहानी से भिन्न पाया। उनके अनुसार चौथे–पांचवे दशक के कहानीकार यथार्थ का सृजन करते हैं। पांचवे–छठे दशक के कहानीकार यथार्थ की अभिव्यक्ति करते थे किन्तु समकालीन कहानीकार यथार्थ को खोजता है। नई कहानी के लेखकों के समक्ष कुछ मूल्य थे लेकिन साठोत्तरी कहानीकार असमंजस्य की स्थिति में आ गया। सन् 1960 ई. के बाद सामाजिक परिवेश में व्यापक परिवर्तन आने के परिणामस्वरूप गद्य–पद्य की सभी विधाओं में परिवर्तन परिलक्षित होता है। अस्पष्ट देखते हुए भी त्वरा में लिखता चला गया। दृष्टि भेद आगया। सातवें दशक की कहानी बदली हुई मानसिकता की कहानी है। युवा कहानीकारों ने सभी सीमाएं लांघ कर अपने जिए हुए 'सत्य' को कहानी का रूप दिया।

अकहानी

अकविता के वजन पर गद्य में अकहानी का आविर्भाव हुआ। इसकी प्रेरणा पर राष्ट्रीय 'एंटी स्टोरी' की प्रेरणा है। इसे भारतीय संस्करण कहा जा सकता है। अकहानी के प्रबल समर्थक गंगा प्रसाद विमल ने अकहानी को अभारतीय कहने वालों को 'अज्ञान का आग्रह भोही' कहा है। उन्होंने इसे अपरिभाषेय स्वीकारा। डॉ. रामदरश ने अकहानी को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'अकहानी का 'अ' वस्तु एवं मूल्य के स्तर पर भी निषेध का स्वर मुखर करता है। 'वस्तु' के स्तर पर उसने सामाजिक संघर्षों से संबंधित विषयों को ग्रहण न करके यौन प्रसंगों को ही कहानी का विषय बनाया है। सभी मूल्यों का निषेध करते हुए साहित्यिक मूल्य को भी अस्वीकार कर दिया है। यथार्थ बोध या विसंगति को अपना केन्द्र बिन्दु बना लिया है। श्रीकांत वर्मा –झाड़ी, प्रयाग शुक्ल – 'अकेले आकृतियां' एवं

'विश्वेश्वर' – 'दूसरी गुलामी' आदि कहानियों में व्यर्थता बोध को विभिन्न संदर्भों में उभारा गया है। अकहानी में विद्रोही स्वर के साथ साथ यौन संदर्भों तक सीमित रहने में वह विकृत और सतही बन गया। दूधनाथ सिंह – 'रीछ', गंगा प्रसाद विमल – 'विध्वंस', ज्ञान रंजन – 'छलांग', कृष्ण बलदेव वैद – 'त्रिकोण' आदि कहानियां इसी को संदर्भित करती हैं। अकहानीकारों को सर्वाधिक सफलता मूल्यहीनता और संबंधाभाव की स्थितियों को उभारने में मिली हैं। नैतिक वर्जनाओं और निषेधों के प्रति दृष्टि बहुत आक्रामक रही है।

डॉ. नामवर सिंह ने रवींद्र कालिया आदि के शिल्प को सराहा है। उनके अनुसार "कहानी के रूपाकार और रचना विधान की दृष्टि से ये कहानियां पर्याप्त समय से उपयोग में आने वाले कथागत साज संभार को एक बारगी उतारकर काफी हल्की हो गई। हल्की, लघु और ठोस। यहां तक कि कभी–कभी कथा चरित्रों के नाम, ग्राम परिचय का उल्लेख करना अनावश्यक प्रतीत होता है।" 'वह' 'मैं' 'तुम' वाली कहानियों में गंगा प्रसाद विमल – 'इंताकिता', रवींद्र कालिया – 'काला रजिस्टर' तथा दूधनाथ सिंह – 'रीछ' का उल्लेख किया जा सकता है।

अकहानी का महत्व जहां मूल्यों के अस्वीकार ने और बिगड़े हुए आपसी संबंधों के यथार्थ चित्रण में हैं, वहीं सेक्स केन्द्रित होने के कारण अकहानी न तो व्यापक बन सकी और न अधिक प्रामाणिक। जीवन की बुनियादी सच्चाईयों की अवहेलना करने से अकहानी दीर्घजीवी भी न हो सकी। अकहानी के प्रमुख हस्ताक्षरों में दूधनाथ सिंह, ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, भीमसेन त्यागी, विश्वेश्वर, गंगाप्रसाद विमल, कृष्ण बलदेव वैद तथा श्रीकांत वर्मा आदि प्रमुख हैं।

सहज कहानी–

सहज कहानी की बात उठाने वाले अमृत राय हैं वे इसके प्रथम एवं अंतिम प्रवक्ता हैं। नई कहानी की असमर्थता ने राम को सहज कहानी की अवधारणा करने के लिए विवश किया। अमृत राय के अनुसार "सहज कहानी से हमारा अभिप्राय इनमें से किसी एक से या दो से या दस से नहीं बल्कि इन सबसे और इनसे अलग और भी बहुत से हैं। क्योंकि सहज कहानी से हमारा अभिप्राय उस मूल कथारस से है, तो कहानी की अपनी खास चीज है और जो बहुत सी नई कही जाने वाली कहानियों में एक सिरे नहीं मिलता।" इस उद्धरण में इनमें से पद द्वारा हितोपदेश जातक कथाओं, परी कथाओं आदि की ओर संकेत किया गया है। अमृतराय सहज कथारस पर बहुत जोर देते हैं और उनके विचार से कहानी संबंधी सभी प्रयोग सहज कथा रसको ध्यान में रखकर ही सार्थक हो सकते हैं।

सहजता की व्याख्या करते हुए अमृत राय ने लिखा है, "सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रादोष नहीं है, आईने के समान आत्मरति की भावना से अंग–प्रत्यंग को अलग–अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है। अमृत राय ने सहज कहानी के संबंध में यह स्पष्ट कर दिया था कि यह न तो कोई नारा है न कोई आंदोलन। वास्तव में सहज कहानी अकेले कंठ की पुकार बनकर रह गई, इसकी वैचारिकता को कहानीकारों का समर्थन नहीं मिला है।"

सचेतन कहानी

जब नई कहानी से संबद्ध कहानीकारों की जीवन दृष्टि लड़खड़ाने लगी तथा अव्यवस्थित हो गई। गुटबंदी की प्रवृत्ति प्रधान हो गई तब कुछ युवा कहानीकारों ने यथार्थवादी दृष्टि से सचेतनता पर बल दिया। 'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक में कहा गया, "सचेतनता एक दृष्टि है, जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है।" डॉ. महीप सिंह ने सचेतना दृष्टि को आधुनिकता की एक गतिशील स्थिति स्वीकारा है, जो हमारे सक्रिय जीवन–बोध और मनुष्य को उसकी अनुभूतियों के साथ समग्र परिवेश के संदर्भ में स्वीकार करती है। यह सापेक्षता पर बल देती है। डॉ. धनंजय के अनुसार, "समाज और व्यक्ति के ऊपरी संबंधों पर सूक्ष्मता से उसकी दृष्टि डाली जाती है, उतनी ही व्यक्ति के आंतरिक संबंधों पर भी। व्यक्ति वहां आवेगों संवेगों के साथ व्यवस्थित भावभूमि में रहता है किंतु

उसकी कार्यशीलता मात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की संकुचित पृष्ठभूमि में नहीं होती।" सामाजिक चेतना का नैरंतर्य सदैव विद्यमान रहता है। सचेत दृष्टि पर्याप्त सीमा तक संतुलित एवं सामयिक होती है। जो नई कहानी में ओझल थी। 1964–65 के निकट यह स्पष्ट हुई। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार, "सन् 1960 ई. के बाद अनेक अश्लील कहानियों की भीड़ में सामूहिक स्वर में रचनात्मकता के स्तर पर उसका प्रतिवाद करने का प्रयास सचेतन कहानी को एक ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है। सचेतन कहानीकारों में मनहर चौहान, महीप सिंह, कुलभूषण, राम कुमार 'भ्रमर' तथा बलदेव वंशी आदि उल्लेखनीय हैं। अकहानी सेक्स से पूर्णतया आक्रांत है। सचेतन कहानी इससे मुक्त है। अधिकांश सचेतन कहानियों में किसी न किसी सामाजिक, राजनीतिक अथवा वार्षिक विसंगतियों को उघाड़ा गया है। इसमें अनुभूति की गहनता एवं विविधता है। एक युद्ध की विभीषिका को लेकर की गई वेद राही – 'दरार', महीप सिंह 'युद्धमन', शैलेश मटियानी – 'उसने नहीं कहा था' आदि कहानियां हैं दूसरी ओर हिमांशु जोशी – 'चीलें', राजकुमार भ्रमर– 'गिरस्तिन', मनहर चौहान – 'उड़ने वाली लाशें', आदि कहानियां कामसंबंधों के यथार्थ का उद्‌घाटन करती हैं। जीवन की कटु विडंबना पर आधारित कहानियों में एक और सुखवीर – 'नारायणे' तथा बलदेव वंशी – 'एक खुला आकाश' उल्लेखनीय हैं।

समांतर कहानी

समांतर कहानी का बीजवपन सन् 1971–72 ई. में ही हो चुका था। सारिका सन् 1974 ई. से समांतर कहानी के विशेषांकों और दौर प्रारंभ हुआ। समांतर कहानी आंदोलन में वृद्धि होती गई। सन् 1972 ई. में समांतर प्रथम के प्रकाशन से इसका विधिवत आरंभ माना जा सकता है। इसके मुख्य रचनाकार कमलेश्वर रहे हैं उनके अतिरिक्त, शरीफ, कामता नाथ, मधुकर सिंह, जितेंद्र भाटिया, से. रा. यात्री, मिथलेश्वर, निरूपमा सेवती आदि कहानीकारों ने स्पष्ट समर्थन दिया। समांतर कहानी के कुछ पक्षधर इसे आंदोलन नहीं स्वीकारते थे। से.रा. यात्री ने आंदोलन से असहमति दिखलाई है। समांतर कहानी को लेकर जागरूक समीक्षकों की टिप्पणियों में मतैक्य नहीं है। इब्राहिम शरीफ तथा विनय प्रशंसक हैं तो शैलेष मटियानी ने तीखी आलोचना की है। मटियानी के अनुसार यह आन्दोलन हिंदी कहानी के समकालीन दौर का सर्वाधिक हास्यास्पद ही नहीं क्षतिकारक है। समांतर कहानी आंदोलन की वैचारिकता की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

(1) समांतर कहानीकार रचना एवं सामयिक सत्यों के मध्य सामंजस्य की स्थापना करता है। अर्थात् उसका चिंतन एवं लेखन परिवेशानुसार होता है।

(2) समांतर कहानी का केन्द्र बिंदु सामान्य मानव है। यह सामान्य मानव के संघर्षों की पक्षधर है क्योंकि उसका पूर्ण विश्वास है कि एकजुटता ही सामान्य मानव संघर्षों में विजयी होगी। शोषक शक्तियां परास्त होंगी। समांतर कहानी मानव को व्यष्टि रूप में न देखकर उसे समष्टि रूप में देखते हुए उसको उसके पूर्ण संघर्षों में दिशा निर्देशन एवं स्वरूप प्रदान करती रहती है।

(3) आंदोलन सुनिश्चित परिवर्तन हेतु जन–संपर्क के प्रति समर्पित है। कहानीकार जन–संघर्ष का द्रष्टा नहीं अपितु सक्रिय सदस्य है।

(4) समांतर आंदोलन राजनीतिक महत्व को स्वीकारता है। राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए क्रांति हेतु कार्य करना समांतर कहानीकार को रूचिकर प्रतीत होता है। राजनीतिक संघर्षों को वह सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अवलोकता है। एवं सांस्कृतिक संघर्ष को राजनीतिक स्वरूप प्रदान करता है। समांतर कहानी ने भाषित स्तर पर भावुकता का निराकरण करके उसे स्पष्ट, प्रत्यक्ष एवं प्रभावपूर्ण स्वरूप प्रदान किया है। डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ का कथन है, 'कार्य का कोई आग्रह इसमें नहीं है।

समांतर कहानी के विचार अति स्पष्ट हैं। आंदोलन ने विचारों का दुरूपयोग किया है। समांतर कहानियां विचारों का प्रतिबिंब नहीं करती है। भारी वेतन भोगी समांतर कहानीकार सामान्य मानव का उथला चित्रण करते हैं जो पाठक पर प्रभाव नहीं डालती। यह सब कुछ होते हुए भी इब्राहिम शरीफ, सूर्यबाला, दिनेश पालीवाल, हिमांशु जोशी, प्रभु जोशी, मिथिलेश्वर तथादेवकी अग्रवाल आदि की कुछ अच्छी कहानियां समांतर कहानी की उपलब्धि कही जा सकती हैं।

सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी की अवधारण सन् 1979 ई. में राकेश वत्स ने की। राकेश वत्स के अनुसार "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ और अहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। सक्रिय कहानी एक बिंदु पर जनवादी कहानी के अति निकट है। यह बिंदु व्यवस्था विरोध का है। सक्रिय आंदोलन से संबद्ध कहानीकार आर्थिक – सामाजिक शोषण का विरोध करते हैं। इसके लिए वे वर्तमान व्यवस्था को उत्तरदायी बतलाते हैं। सक्रिय कहानी से जुड़े कहानीकारों में सुरेंद्र कुमार, विवेक निझावन, रमेश बतरा तथा सच्चिदानंद धूमकेतु आदि मुख्य हैं। अनेक कहानीकारों ने आंदोलन धर्मिता से अलग रहकर भी सार्थक सृजन किया है। रामदरश मिश्र, मृदुला गर्ग, विवेकी राय, मैत्रेयी पुष्पा, ललित शुक्ल, प्रेम कुमार, शशि प्रभा शास्त्री, मंजुला तथा हरिमोहन आदि की कहानियां इस संदर्भ में अवलोकनीय हैं।

जनवादी कहानी

जनवादी कहानी एक पत्रिका और व्यक्ति पर केन्द्रित नहीं रही। सातवें–आठवें दशक में इसराइल, असगर वजाहत, मार्कंडेय, प्रदीप मांडव, नमिता सिंह तथा सूरज पालीवाल आदि की कहानियों का तेवर जनवादी है। जनवादी कहानी व्यवस्था विरोध के बिंदु पर सक्रिय कहानी के अति निकट है। जनवादी आंदोलनकारी कहानी के अति निकट हैं। जनवादी आंदोलनकारी कहानीकार आर्थिक सामाजिक शोषण का विरोध करते हैं तथा इसका उत्तरदायी वर्तमान व्यवस्था को बनाया है।

नौंवे दशक की कहानी में दो परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

1. वह पंजाब समस्या, सांप्रदायिक द्वेष आदि समसामयिक समस्याओं को अपने विचार का विषय बनाती है।
2. वाद या आंदोलन से उसने अपने को मुक्त कर लिया है। शिल्प की दृष्टि से नौंवे दशक में किस्सागोई का प्रत्यावर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस दशक में शिवमूर्ति, संजय, अवधेश प्रीत नारायण सिंह, सुनील सिंह, शिवजी श्रीवास्तव, शोभानाथ लाला, जनकराज फरीक ललित शुक्ल, कमर मेवाड़ी, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह तथा चित्रा मुद्गल आदि कहानीकारों ने सार्थक कहानियां लिखी हैं। वर्तमान कहानी अपने जनर्धी परंपरा को बढ़ातें हुए समूचे परिदृश्य से साक्षात करने में संलग्न हैं। इस साक्षात्कार में तीक्ष्णता तथा ईमानदारी है।

लघु कथा – वर्तमान समय कार्यव्यस्तता का काल है। पाठकों के पास कालाभाव है। पद्य में क्षणिकाओं को आधार बनाकर गद्य विद्या में लघु कथा का आविर्भाव हुआ है। जिससे संबंधित अनेक लघु कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिन में विषय वैविध्य है। उद्देश्य मनोरंजन समाज सुधार शैली व्यंग्य प्रधान, भाषा सरल भाव मार्मिक है।

3. उपन्यास : उद्‌भव एवं विकास

उपन्यास शब्द : व्याख्या एवं अर्थ

उपन्यासका अर्थ वाक्य का उपक्रम। बंधान; अमानत/धरोहर; प्रमाण; वह बड़ी और लंबी आख्यायिका जिसमें किसी व्यक्ति के काल्पनिक या वास्तविक जीवन –चरित्र का चित्र अंकित या उपस्थित किया जाता है। इस शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'नॉवेल' है। बंगलामें 'नवल कथा' कहते हैं।

'उपन्यास' शब्द का मूल अर्थ – निकट रखी हुई वस्तु (उप–निकट, न्यास–रखी हुई), आधुनिक साहित्य में इसका अर्थ गद्यकी एक विशिष्ट विधा हेतु किया जाता है जो आयाम में विस्तृत होती है। ऐसी आख्यायिका जिसमें समाज के किसी अंग का चरित्र–चित्रण, काल्पनिक एवं वास्तविक के समन्वित रूप में अंकित होता है। सर्वांगीण व्यापक सामाजिक चित्रण उपन्यास कहलाता है। उपन्यास के मूल अर्थ एवं आधुनिक अर्थ में यद्यपि साम्य नहीं रह गया है किन्तु विद्वानों ने उसका समन्वित प्रस्तुत करने का यत्न किया है? उनके अनुसार उपन्यास में मानव जीवन को उसके अति निकट उपस्थित कर देने वाली विधा उपन्यास कहलाती है। इस दृष्टि से यह नाम सर्वथा उचित प्रतीत होता है किन्तु यही कार्य नाटक, एकांकी एवं कहानी भी करते हैं। माना कि एकांकी एवं कहानी का आयाम छोटा होता है किन्तु नाटक की कथा तो लंबी और बड़ी होती है। उपस्थिति करने की प्रवृत्ति उसकी भी उपन्यास जैसी ही है।

प्राचीन काव्य शास्त्र में उपन्यास शब्द का प्रयोग भी 'प्रतिमुख संधि' के एक उपभेद के रूप में किया गया है। भरतमुनि ने इसके लिए 'उपपत्ति कृत्तों ह्यर्थ' तथा 'प्रसादनम्' आदि विशेषण प्रस्तुत किए हैं जिनका अर्थ होता है – किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला' 'किंतु यही स्थिति साहित्य की अन्य विधाओं की भी है। आधुनिक उपन्यास अंग्रेजी पर्याय नॉवेल के अर्थों में प्रयुक्त होता है। उपन्यास शब्द पूर्ण अर्थ न प्रदान करते हुए भी साहित्यकी विधा विशेष के लिए अत्यधिक प्रचलित रूप धारण कर चुका है।
परिभाषा : उपन्यास का फलक इतना विस्तृत है कि उसे किसी एक निश्चित परिभाषा में परिभाषित करना कठिन कार्य है, लेकिन फिर भी बहुत से विद्वानों ने अपने–अपने मतानुसार उसकी भिन्न–भिन्न परिभाषाएँ देने का प्रयत्न अवश्य किया है :–

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार :– "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न–भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृति भी उत्पन्न कर सकते हैं।. . . लोक या किसी जनसमाज के बीच काल की गति के अनुसार जो मूढ़ और चिंत्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रुप में सामने लाना और कभी–कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का काम है।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहते हैं–उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नये गद्य के प्रचार के साथ–साथ उपन्यास का प्रचार हुआ। आधुनिक उपन्यास केवल कथा मात्र नहीं है, और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भाँति कथा सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और श्लेषों की छटा और सरस पदों में गुम्फित पदावली की घटा दिखाने का कोशल भी नहीं है।. . . कथानक को मनोरंजन और निर्दोष बनाकर और पात्रों के सजीव चरित्र–निर्माण तथा भाषा की अनाडम्बर सहज प्रवाह की योजना के द्वारा उपन्यासकार अपने वैयक्तिक मत को ही सहज स्वीकार्य बनाता है। जिस उपन्यासकार के पास आधुनिक युग की जटिल समस्याओं के समाधान के योग्य अपना प्रबल वैयक्तिक मत नहीं है वह आधुनिक पाठकों को आकृष्ट नहीं कर सकता।"

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार :– मैं उपन्यास को मानवजीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।

इ.एम. फ्रूटर– जीवन के गुप्त रहस्यों को अभिव्यक्त करने की विशेषता जितनी उपन्यास में है उतनी अन्य किसी में नहीं ?

प्रथम उपन्यास

आधुनिक उपन्यास साहित्य रूप विधान का विकास यूरोप से माना जाता है किन्तु उससे पूर्व प्राचीन भारत में इस विधि का प्रचार प्रसार था, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशति, वृहत् कथा मंजरी, वासवदत्ता, कादंबरी और दशकुमार चरित आदि के रूप में औपन्यासिकता का विकास मिलता है। मराठी साहित्य में 'उपन्यास' का पर्यायवाची ही कादंबरी है। किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास कहा जा सकता है। हिंदी में उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं सदी के अंतिम काल में हुआ। बंगला में इस विधा का उद्‌भव हिंदी से पूर्व हो चुका था क्योंकि अंग्रेजी का प्रभाव पहले बंगला भाषा पर पड़ा।

हिंदी में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' भारतेंदु के जीवन काल में ही सन् 1882 ई. में प्रकाशित हो गया था जिसकी रचना का श्रेय लाला श्रीनिवास दास को है। यद्यपि लाला जी ने इसकी भूमिका में स्पष्ट लिख दिया है कि इसके लेखन में–"महाभारतादि संस्कृत, गुलिस्तां वगैरह फारसी, स्पेकटेटर, लार्ड बेकन, गोल्ड स्मिथ, विलियम कपूर आदि पुराने लेखों और स्त्रीबोध आदि के वर्तमान रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।" इससे तथा इसके ढांचे से ज्ञात होता है कि इसकी रचना बंगला उपन्यासों के आधार पर नहीं की गई है अपितु लेखक ने सीधे अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण की है।

'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है, जो कुसंगति में पड़ गया था जिसका उद्धार अंत में एक सज्जन मित्र ने किया। लेखक इसमें अत्यधिक उपदेशात्मक हो गया है जिसके परिणामस्वरूप यह रचना सफल उपन्यास का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' को प्रथम उपन्यास कहा। विकास –भारतेंदु युग या प्रेमचन्द – पूर्वोत्तर भारतेंदु ने सर्व प्रथम 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यास का अनुवाद किया। एक मौलिक उपन्यास की रचना भी प्रारंभकी थी दुर्भाग्य से पूर्ण न हो सका। भारतेंदु युग के अन्य कई लेखकों ने भी उपन्यासों की रचना की, जिनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती', रत्न चंद प्लीडर का 'नूतन चरित्र' –1883, बालकृष्ण भट्ट – 'नूतन ब्रह्मचारी' –1886 तथा 'सौ अजान एक सुजान' –1892; राधा कृष्ण दास – 'निस्सहाय हिंदू' –1890; राधा चरण गोस्वामी – 'विधवा विपत्ति' –1888; कार्तिका प्रसाद खत्री – 'जया' –1896 बालमुकुन्द गुप्त – 'कामिनी' आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी के 'भाग्यवती' को हिंदी का प्रथम उपन्यास घोषित किया है किन्तु उन्होंने अपनी घोषणा की पुष्टि अपेक्षित प्रमाणों या कारणों से नहीं की।

अनूदित :–इन लेखकों ने मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त बंगला के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। बाबू गदाधर सिंह –'बंगविजेता', 'दुर्गेश नंदिनी', राधा कृष्ण दास – 'स्वर्ण लता', प्रताप नारायण मिश्र – 'राज सिंह', 'इंदिरा तथा राधारानी', राधाचरण गोस्वामी 'विरजा', 'जावित्री', तथा 'मृण्मयी' आदि का अनुवाद किया। बाबू रामकृष्ण वर्मा एवं कार्तिका प्रसाद खत्री ने उर्दू और अंग्रेजी के अनेक रोमांटिक एवं जासूसी उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों में भी कला विकास दृष्टिगोचर नहीं होता है। उनमें इतिवृत्त एवं घटनाओं की प्रधानता, चरित्र–चित्रण का अभाव, उपदेशात्मकता का आधिक्य एवं शैली की अपरिपक्वता दिखलाई पड़ती है।

हिंदी के मौलिक उपन्यासों की रचना का आरम्भ भारतेंदु कालीन उपन्यासकार –देवकी नंदन खत्री, गोपाल राम गहमरी तथा राधाचरण गोस्वामी को है। देवकी नंदन खत्री ने सन् 1891 ई. में 'चंद्रकांता' एवं 'चंद्रकांता संतति' की रचना की जिनमें तिलस्मी एवं ऐय्यारी का वर्णन है। इन उपन्यासों को इतनी लोकप्रियता मिली कि अनेक लोगों ने इन्हें पढ़ने के लिए हिंदी सीखी। गहमरी ने 'जासूस' नामक पत्र का संपादन प्रारंभ किया जिसमें लगभग पांच दर्जन से अधिक स्वरचित उपन्यासों का प्रकाशन किया। इन्होंने 'उपन्यास' पत्रिका निकाली जिनमें उनके छोटे–बड़े लगभग 65 उपन्यास प्रकाशित हुए। गोस्वामी के उपन्यासों का विषय सामाजिक था। किन्तु उनमें कामुकता एवं विलासिता का चित्रण अत्यधिक था जिसके परिणामस्वरूप 'उपन्यास त्रयी' की ये रचनाएं उपन्यास कला की दृष्टि से अति साधारण कोटि में आती है। इनमें अस्वाभाविक घटनाओं की भरमार है।

खत्री, गहमरी और गोस्वामी की समन्वित त्रिवेणी तथा प्रेमचन्द की अजस्त्र प्रवाहिनी धारा को मिलाने का श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता तथा कुछ अनुवादकों को है। हरिऔध ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' लिखकर आई.सी.एम. के विद्यार्थियों के लिए हिंदी मुहावरों की पाठ्य पुस्तक का अभाव को पूरा किया। मेहता ने 'आदर्श हिंदू' तथा 'हिंदू गृहस्थ' लिखकर सुधारवाद का झंडा ऊंचा किया।

प्रेमचन्द युग

प्रेमचन्द (सन् 1880–1936 ई.) के हिन्दी कथा साहित्य में पदार्पण से पूर्व तक हिंदी उपन्यास मानो अविकसित कालिका कीतरह चुप, निस्पंद एवं चेतना–विहीन सा हो रहा था। सूर्य की प्रथम रश्मियों की तरह प्रेमचन्द की पावन कला का पुनीत स्पर्श प्राप्त करते ही वह कली पुष्पित होकर, खिल उठी, जगमगा कर खिलखिलाने लगी। राजा–रानी, सेठ–सेठानियों की उच्च अट्टालिकाओं की चार दीवारी में बंद उपन्यास कथानक जनसाधारण की लोकभूमि में उन्मुक्त सांस लेता हुआ अबाध विचरण करने लगा। लौह मूर्तियों की तरह स्थिर रहने वाले या कठपुतलियों की तरह लेखन की उंगलियों के मौन संकेतों पर अस्वाभाविक गीत से नाचने वाले, दौड़ने–फुदकने वाले पात्र मांसल सजीव रूप धारण कर व्यक्तित्व सम्पन्न सामान्य मानव की भांति आत्म प्रेरणा से परिचालित होते हुए दृष्टिगोचर होने लगा। जिसके परिणामस्वरूप उपन्यास के अन्य तत्वों–कथोपकथन, देशकाल एवं वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य एवं रस आदि का विकास प्रथम बार प्रेमचन्द के उपन्यासों में हुआ। उन्होंने मात्र सस्ते मनोरंजन को ही उपन्यासों का विषय न बनाकर जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया जिसके परिणामस्वरूप उनके प्रत्येक उपन्यासों में किसी न किसी सामयिक समस्या का चित्रण मार्मिक स्वरूप में उपलब्ध है। यथा उपन्यास : – 'सेवा सदन' (1918) 'वेश्या', 'रंगभूमि' (1928) – 'शासक अत्याचार', 'प्रेमाश्रम' (1921) – 'कृषक,' 'कर्मभूमि' (1932) – हरिजन, 'निर्मला' (1922) – 'दहेज एवं वृद्ध विवाह', 'गबन' (1931) मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता; 'गोदान' (1936) कृषक श्रमिक शोषण। प्रेमचन्द के प्रारंभिक उपन्यासों में आदर्शवादिता का आधिक्य होने के कारण उनमें कहीं–कहीं काल्पनिकता एवं अस्वाभाविकता अधिक आ गई है। किन्तु आगे चलकर प्रेमचन्द का स्वरूप आदर्शवादी के स्थान पर यथार्थवादी बन गया है जहां प्रारंभिक उपन्यासों में समस्याओं के समाधान करने के लिए गांधीवादी विचारधारा को अपनाया है वहां उन्होंने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में केवल समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा ही आत्मसंतुष्टि कर ली है।

'गोदान' की प्रमुख ही नहीं अंगी समस्या विवाह है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में – बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम–विवाह, गांधर्व विवाह, परंपरित–विवाह, भगाकर ले जाना, रखैल रखना, वैसे ही संबंध स्थापित कर लेना, विवाहित से प्रेम, अविवाहिता से प्रेम संबंध आदि जितने भी प्रकार या स्वरूप संभव हैं सभी गोदान में दर्शाए गए हैं। इनमें आदर्श विवाह क्या हो सकता है? उसका समाधान प्रेमचन्द ने नहीं प्रस्तुत किया है मेहता और मालती को अविवाहित ही क्यों छोड़ दिया है, जो पति–पत्नी के रूप में आजीवन रहते हैं। समाज के लिए यह घातक प्रवृत्ति है। इसलिए यह माना जा सकता है कि विवाह समस्या का यह समाधान नहीं है। शुक्ल ने

जैसे अपने निबंधों का निर्णय अपने पाठकों पर चिन्तामणि के प्रथम भाग की भूमिका दो शब्द में यह कह कर कि "मेरे निबंध विषय प्रधान हैं या विषयी प्रधान इसका निर्णय समझदार पाठकों पर छोड़ देता हूँ।" उसी प्रकार प्रेमचन्द ने समस्या का समाधान पाठकों पर छोड़ा है। श्रेष्ठ साहित्यकार समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत करता है।

प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द के अलावा अन्य अनेक उच्च कोटि के उपन्यासकारों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न विषयों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इन उपन्यासकारों को उनकी विशेषताओं के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) सामाजिक समस्या– इस वर्ग में ऐसे उपन्यास आते हैं जिन्होंने सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द की परंपराओं को अग्रसारित किया। इस वर्ग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री तथा उपेन्द्र नाथ अश्क आदि उल्लेखनीय हैं।

जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' में भारतीय नारी जीवन की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। उनके अन्य उपन्यास 'तितली' में नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। अन्य उपन्यास 'इरावती' है।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ने 'मां' और 'भिखारिणी' में भी नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। पांडेयबेचन शर्मा उग्र लेखक के रूप में सचमुच उग्र हैं। उन्होंने 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', में सभ्य समाज की आंतरिक दुर्बलताओं, अनीतियों एवं घृणित प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन आवेगपूर्ण एवं धड़ल्लेदार शैली में किया है।

चतुरसेन शास्त्री ने विधवाश्रमों की सहायता लेकर हृदय की प्यास को बुझाने वालों की अच्छी खबरली है। 'गोली' इस दृष्टि से उनका प्रमुख उपन्यास है जिसमें देशी रियासतों के शासकों की घृणित प्रवृत्तियों एवं विलासिता को नग्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'– अश्क के उपन्यासों मुख्यतः 'गिरती दीवारों में मध्यवर्गीय समाज की बाह्य एवं आतंरिक परिस्थितियों का उद्‌घाटन यथार्थवादी शैली में हुआ है। विवाह संबंधी सामाजिक रूढ़ियों के कारण होने वाली आधुनिक युवक–युवतियों की असफल परिणति पर उन्होंने 'चेतन' के माध्यम से प्रकाश डाला है। समाज की समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाने वाले उपन्यासकारों ने सभी उपन्यासों की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता का आग्रह मुख्य रूप से किया है।

(2) चरित्र प्राधन– इस वर्ग के उपन्यासों में चरित्र की प्रधानता है। ऐसे उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा एवं सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि प्रमुख हैं।

जैनेन्द्रे के उपन्यासों में 'सुनीता', 'परख', 'सुखदा' 'त्यागपत्र' तथा 'विवर्त्त आदि उल्लेखनीय हैं इनके अधिकाशं उपन्यासों में पति–पत्नी एवं अन्य पुरुष के पारस्परिक संबंधों का चित्रण किया गया है। सबमें प्रायः एक समान ही चित्रण मिलता है। नायिका प्रायः विवाहिता होती है। अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से अति दुःखी होती है जिसके परिणामस्वरूप सदैव सुख की तलाश में रहती है। पर पुरुष के संपर्क में आते ही उसे प्रभावशाली व्यक्तित्व समझकर उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। नायिका का पति इस स्थित से पूर्ण अवगत होते हुए भी चुप्पी साधे सब कुछ धैर्य से सहन करते हुए समय की प्रतीक्षा करता रहता है। प्रारंभ में ऐसा आभास होने लगता है कि नायिका अपने पति का परित्याग कर अपने प्रेमी के साथ पलायन कर जायेगी किंतु अंत तक जाते–जाते जैनेंद्र परिस्थिति को संभाल लेते हैं तथा यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि पति–पत्नी को अन्य व्यक्तियों से संपर्क करने का जितना अवसर मिलता है, जितनी अधिक स्वतन्त्रता मिलती है उतनी चारित्रिक दृढ़ता एवं सबलता में वृद्धि होती

है। वास्तव में जैनेंद्र के उपन्यासों में एक ओर रसिकता एवं सरसता विद्यमान है तो दूसरी ओर शुष्कता तथा भावुकता के साथ–साथ बौद्धिकता आवश्यकता से अधिक आ गई है।

इलाचंद्र जोशी ने 'सन्यासी' 'परदे की रानी', 'प्रेत' और 'छाया', 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' आदि उपन्यासों में चारित्रिक प्रवृत्तियों एवं वैयक्तिक परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है, किंतु जैनेन्द्र की तरह शुष्क कथानक नहीं हैं उनके पास प्रत्येक उपन्यास में प्रयोग करने के लिए नए–नए अनेक कथानक हैं, नई–नई अनेक समस्याएं हैं, अतः उन्हें समस्याओं परिस्थितियों एवं कथानकों आदि के पुनर्प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। एक ओर उसके पास कल्पना का वैभव है तो दूसरी ओर अनुभूतियों का संचित कोष – जिसके परिणामस्वरूप वे अपने उपन्यासों को सौंदर्यमयी एवं रसमयी बनाने में पूर्ण सक्षम एवं समर्थ हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास यदि पेंसिल निर्मित रफ स्केच के समान हैं तो जोशी के उपन्यास सतरंगी सूक्ष्म रेखाओं से सुसज्जित दिव्य चित्र हैं। जटिल दार्शनिकता पर जैनेन्द्र को अत्यधिक गर्व है। जोशी के उपन्यास दार्शनिक जटिलता शून्य है। किन्तु जोशी का भाषा प्रवाह तथा शैली की प्रौढ़ता आज किसी भी उपन्यासकार में उपलब्ध नहीं है। कहीं–कहीं जोशी भी दार्शनिकता प्रिय आलोचकों की प्रशंसा प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा में अथवा विद्यार्थियों के काम की वस्तु बनाने के लालच का संवरण न कर सकने के परिणामस्वरूप दार्शनिक नीरस सिद्धान्त निरूपण के जाल में फंस गए हैं। यह उनकी औपन्यासिकता कोस का द्योतन करता है।

भगवतीचरण वर्मा– भगवतीचरण वर्मा ने 'तीन वर्ष', 'आखिरी दांव' तथा 'टेढ़े–मेढ़े' रास्ते में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेशों को दृष्टिगत रखते हुए मनोविश्लेषण को प्रधानता दी है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग) तथा 'नदी के द्वीप' दोनों उपन्यासों में यौन प्रवृत्तियों का ऐसा भयंकर चित्रण सूक्ष्म, जटिल एवं गंभीर शैली में किया है कि सामान्य पाठक के हृदय को शांतिप्रदान करने के स्थान पर उसके मनोःमस्तिष्क की आन्तरिक चेतना को जगाने का या विश्लेषण करने का कार्य किया। अज्ञेय ने विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं मनोविश्लेषण कर्ताओं द्वारा प्रतिपादित यौन सिद्धान्तों के अनुकूल अपने उपन्यास के पात्र–पात्रओं के चरित्र को अति सूक्ष्मता से चित्रित किया है। चरित्र–चित्रण को इनमें इतनी अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई है कि उसके समक्ष उपन्यास के अन्य तत्व गौण हो गए हैं। ऐसी स्थिति में इनमें सामाजिक परिस्थितियों के स्थान पर व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण को विस्तार मिलना स्वाभाविक हो गया है।

(3) साम्यवादी– इस वर्ग में साम्यवादी दृष्टिकोण से लिखे गए उपन्यास आते हैं जिनमें राहुल साकृंत्यायन तथा यशपाल प्रमुख उपन्यासकार हैं– राहुल सांकृत्यायन के साम्यवादी उपन्यास 'सिंह सेनापति' तथा 'वोल्गा से गंगा' हैं। दोनों उपन्यासों में रूसी साम्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है।

यशपाल– यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' आदि में वर्ग सघंर्ष वर्ग वैमनस्य का चित्रण करते हुए सामाजिक क्रांति का समर्थन किया गया है।

(4) ऐतिहासिक उपन्यासों को देशकाल प्रधान उपन्यास भी कहा जाता है। इस वर्ग में देशकाल प्रधान या ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। ऐतिहासिक कथानकों की ओर हिंदी उपन्यासकारों का ध्यान बहुत पहले चला गया था। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वालों में किशोरी लाल गोस्वामी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, वृंदावन लाल वर्मा तथा रांगेय राघव विशेष उल्लेखनीय हैं–

किशोरी लाल गोस्वामी– किशोरी लाल गोस्वामी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं किया गया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें उनका सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं 'चारुचन्द्र' दो प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। यशपाल का ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' है। जिसमें तत्कालीन युग के संपूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का पूर्व प्रयास किया गया है। अन्य उपन्यास 'अमिता' है।

वृदांवन लाल वर्मा–ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा को चरम विकास तक पहुंचा देने का एक मात्र श्रेय वृंदावन लाल वर्मा को है। 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झांसी की रानी लक्ष्मी बाई', तथा 'मृगनयनी' आदि उपन्यास ऐतिहासिक हैं जिनमें इतिहास के अनेक विस्मृत प्रसंगों को नवजीवन प्राप्त हुआ है। मृगनयनी में ऐतिहासिकता – कल्पना, तथ्य –अवास्तविकता तथा मानव और प्रकृति का सुंदर सामंजस्य एवं समन्वय हुआ है।

डॉ. रांगेय राघव– नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यासकारों में डॉ. रांगेय राघव तथा उनके उपन्यासों 'अंधा रास्ता', 'सुनामी'एवं 'भगवान एक लिंग' का विशेष महत्व है।

(5) आंचलिक– किसी अंचल या प्रदेश विशेष के वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत करने को आंचलिकता कहा जाता है। जिन उपन्यासों में यह प्रस्तुतीकरण होता है उन्हें आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी उपन्यास के तत्वों पर आधारित नहीं अपितु स्वतंत्रा सर्वथा नवीन वर्ग है। वर्तमान काल में ऐसे उपन्यासों का विकास हो रहा है। ऐस उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, बलभद्र ठाकुर, नागार्जुन तथा तरन तारन के नाम उल्लेखनीय हैं हिंदी आंचलिक उपन्यासों पर बंगला प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास की इस परंपरा का श्रीगणेश स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थात् सन् 1950 ई. के आस पास हुआ। नागार्जुन हिंदी के सर्वप्रथम आचंलिक उपन्यासकार हैं।

नागार्जुन अनेक उपन्यास लिखे जिनमें 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ', 'रतिनाथ की चाची', 'ईमरतिया', 'पारों', 'जमनिया का बाबा' तथा 'दुखमोचन' आदि प्रमुख हैं। आंचलिक उपन्यास कला की दृष्टि से बाबा बटेसर नाथ अधिक मंजी हुई सशक्त रचना है। इसमें कथ्य का संतुलित निरूपण, सजीव चरित्र चित्रण तथा प्रसंगों का नवीन प्रणाली से संयोजन सहृदय को आकर्षित करता है। बरगद वृक्ष का मानवीकरण करके सर्वथा नवीन प्रयोग किया गया है। बरगद मानवीय संवेदनाओं से युक्त है।

फणीश्वरनाथ रेणु– 'मैला आंचल' लिखकर फणीश्वर नाथ रेणु ने आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में तहलका मचा दिया है।इस उपन्यास के प्रकाशन ने रेणु को रातों–रात ख्याति के शिखर पर आसीन कर दिया। इतनी ख्याति किसी भी साहित्यकार को इकलौती रचना पर नहीं मिली है। इसमें बिहार प्रांत के पूर्णिया जनपद के मेरी गंज अंचल के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक एवं धार्मिक आदि सभी परिवेशों का यथार्थ चित्रांकन हुआ है। पूर्णिया जिले की स्थानीय बोली का प्रयोग आंचलिकता की मांग है। पर कुछ स्थानिक शब्दों के प्रयोग भावबोध कराने में कठिनता एवं जटिलता उत्पन्न करते हैं जो कथा रस में बाधक सिद्ध हुए हैं भले ही आंचलिकता प्रदर्शन में सफल हुए हों। 'परती परिकथा' अन्यउपन्यास है।

रांगेय राघव– आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में रांगेय राघव का महत्वपूर्ण योगदान है। 'कब तक पुकारूँ' उनका चर्चित आंचलिक उपन्यास है जिसमें जरामयपेशा आपराधिक कृति वाले नटों के जीवन का व्यापक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। इन नटों की वैवाहिक एवं यौन संबंधी मान्यताएं सामान्य मानव से भिन्न है। इनमें सांप्रदायिक मान्यताएं नहीं हैं क्योंकि बहुत कम समय के लिए अपने मूल निवास पर आते हैं। यायावरी जीवन बिताना इनका जीवन यापन का मुख्य लक्ष्य है।

उदय शंकर भट्ट का आंचलिक उपन्यास 'लोक परलोक' है जिसमें इह लोक तथा स्वर्ग का काल्पनिक चित्रण किया गया है।

बलभद्र ठाकुर के उपन्यासों में 'आदित्य नाथ', 'मुक्तावली', 'नेपाल की वो बेटी' मुख्य हैं।

श्याम सन्यासी ने एक ही आंचलिक उपन्यास की रचना की जो उत्थान है।

तरन तारन ने ''हिमालय के आचंल' आचंलिक उपन्यास लिखा। इसमें लोक सस्कृति लोकगीतों तथा लोक शब्दावली का प्रयोग अत्यधिक हुआ है।

उपर्युक्त पांच वर्गों के अतिरिक्त प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकार विभिन्न धाराओं में विभाजित होकर विभिन्न रंग रूपों में उपन्यास साहित्य का सृजन कर रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् छठे दशक में अनेक ऐसे उच्च कोटि के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है, जिनमें नए–नए विषयों, शिल्प विधियों, और शैलियों का प्रयोग मिलता है।

कुछ प्रमुख उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों की सूची निम्नलिखित है–

यज्ञदत्त – 'इंसान' एवं 'अंतिम चरण', अंचल – 'चढ़ती धूप', देवेंद्र सत्यार्थी – 'रथ का पहिया', धर्मवीर भारती – 'सूरज का सातवां घोड़ा', राजेन्द्र यादव – 'प्रेत बोलते हैं', 'टूटे हुए लोग'।

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार – 'मैंने होटल चलाया', अमृतलाल नागर – 'बूंद और समुद्र' एवं 'शतरंज के मोहरे', लक्ष्मीनारायण लाल – 'बंया का घोसला' एवं 'सांप', आचार्य चतुरसेन शास्त्री– 'खग्रास', सत्यकाम विद्यालंकार – 'बड़ी मछली और छोटी मछली', अनंतगोपाल 'शेवड़े' – भग्न मन्दिर, यशपाल – 'झूठा सच', देवराज– 'अजय की डायरी'; जीवनप्रकाश जोशी – 'विवाह ही मंजिलें' आदि साठोत्तरी (सन् 1960 ई. के बाद) उत्कृष्ट उपन्यासों में है।

इनके अतिरिक्त हिंदी में और भी अनेक उपन्यासकार इस विद्या में योगदान कर रहे हैं जिनमें देवीदयाल चतुर्वेदी, कंचनलता सब्बरवाल, तथा हेमराज निर्मम आदि ने भी उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना की है।

अनूदित– मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त हिंदी में पर राष्ट्रीय एवं भारतीय भाषाओं के उच्च कोटि के उपन्यासों के सुंदर अनुवाद भी अत्यधिक संख्या में प्रस्तुत हुए हैं इनमें हेमसन 'आग जो बुझी नहीं', स्टीफेन ज्विग – 'विराट', मोबी डिक– 'लहरों के बीच ड्यूमा' – कलाकार कैदी, बालजक – 'क्या पागल था', आदि प्रशंसनीय हैं। भारतीय लेखकों में आरिगपूड़ि – 'अपने पराए', भवानी भाचार्य – 'शेर का सवार', खांडेकर – 'ययाति', विमल मित्र – 'साहब बीबी गुलाम' आदि महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि हिंदी उपन्यास साहित्य आज अनेक दिशाओं में तीव्रगति से अग्रसर है। उपन्यासकार अति यथार्थवादिता, प्रयोगशीलता, एवं न्यूनता की प्रवृत्तियों से बुरी तरह ग्रस्त होते जा रहे हैं। कुछ उपन्यासकार कुंठाओं से पीड़ित, असफलताओं एवं असंतुलन से जर्जरित तथा पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के आकर्षण में भटके हुए हैं तथा वे साहित्य सृजन किसी को कुछ देने के लिए नहीं अपितु अपनी ही कुंठा से मुक्ति पाने हेतु कर रहे हैं। उपन्यास पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसका क्षेत्र मात्र सुशिक्षित समाज एवं शहरी जीवन तक सीमित हो गया है। पर अनेक उपन्यासकारों ने आंचलिकता को फैशन के रूप में ग्रहण किया है, ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थ बोध बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है।

इस संदर्भ में सोमवीरा की चुनौती अवलोकनीय है – हमारा आधुनिक साहित्य केवल 'मध्यमवर्गीय नगर साहित्य' इसलिए है क्योंकि हमारे अधिकांश साहित्यकार केवल इसी वर्ग की बातों को लेकर, केवल इसी वर्ग के लिए लिखते हैं। ग्रामीण लोगों, आदिवासियों, करोड़पतियों के जीवन पर, रात को सड़क पर सोने वालों पर, दिन में चना मूंगफली बेचने वालों के जीवन पर, भिखारियों पर खिलाड़ियों पर, वैज्ञानिकों पर, मछुआरों पर, अछूतों पर मध्य वर्ग के अतिरिक्त समाजके अन्य अंगों से संबंधित विषयों पर कितने साहित्यकारों ने कलम उठाई है। अब उठाना है।

आधुनिक प्रयोग– रचना शिल्प के क्षेत्र में उपन्यास में अनेक नए प्रयोग किए गए। उपन्यास के अंदर उपन्यास लेखनका महत्वपूर्ण प्रयोग हुआ। इसके सफल प्रयोग का श्रेय अमृतलाल नागर को है। 'अमृत और विष' उपन्यास के एक कथा लेखन की आत्म कथा है तो दूसरी ओर पटकथा। लेखन एक कथा का भोक्ता है तो दूसरे उपन्यास का प्रणेता है। उपन्यास लेखन संबंधी सहयोगी प्रयास भी नया प्रयोग है। सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' धर्मवीर भारती द्वारा संपादित है। इसका प्रथम एवं अंतिम अध्याय भारती ने लिखा है। दूसरे से दसवें

अध्याय को उदयशंकर भट्ट, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर आदि अन्य लेखकों ने लिखा है। उपन्यास लेखन में जीवन क्षेत्र का संकोच भी नया प्रयोग है। इसमें अनेक वर्षो के जीवन चित्रण के स्थान पर कुछ घंटों या कुछ दिनों का चित्रण रहता है। यथा – यशपाल के 'बारह घंटे' उपन्यास और अश्क के 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में केवल बारह घंटे की कथा कही गई है। निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में पात्रों के जीवन के तीन दिनों को उकेरा गया है। शैली की दृष्टि से भी नए प्रयोग हुए हैं। पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग 'त्यागपत्र' में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग सन्यासी में डायरी शैली का प्रयोग 'अजय की डायरी' उपन्यास में किया गया है। अतः प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास विद्या के क्षेत्र में अनेक नए प्रयोग किए गए हैं। कथा लेखन की आत्मकथा है तो दूसरी ओर पटकथा। लेखन एक कथा का भोक्ता है तो दूसरे उपन्यास का प्रणेता है। उपन्यास लेखन संबंधी सहयोगी प्रयास भी नया प्रयोग है। सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' धर्मवीर भारती द्वारा संपादित है। इसका प्रथम एवं अंतिम अध्याय भारती ने लिखा है। दूसरे से दसवें अध्याय को उदयशंकर भट्ट, रांगेयराघव, अमृतलाल नागर आदि अन्य लेखकों ने लिखा है। उपन्यास लेखन में जीवन क्षेत्र का संकोच भी नया प्रयोग है। इसमें अनेक वर्षो के जीवन चित्रण के स्थान पर कुछ घंटों या कुछ दिनों का चित्रण रहता है। यथा – यशपाल के 'बारह घंटे' उपन्यास और अश्क के 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में केवल बारह घंटे की कथा कही गई है। निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में पात्रों के जीवन के तीन दिनों को उकेरा गया है। शैली की दृष्टि से भी नए प्रयोग हुए हैं। पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग 'त्यागपत्र में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग सन्यासी में डायरी शैली का प्रयोग 'अजय की डायरी' उपन्यास में किया गया है। अतः प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास विद्या के क्षेत्र में अनेक नए प्रयोग किए गए हैं।

4. नाटक : उद्‌भव एवं विकास

नाटक का उद्‌भव और विकास विवेचन विश्लेषण से पूर्व नाटक शब्द की व्याख्या एवं अर्थ तथा व्युत्पत्ति से अवगत हो लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

नाटक व्युत्पत्ति , अर्थ एवं व्याख्या नाटक शब्द की व्युत्पत्ति सं. नट् (नाचना) + घञ् से हुई है जिसका अर्थ नच्च, नाच, नृत, नृत्य, नकल या स्वांग होता है। नाटक से पूर्व नट् से नाट शब्द व्युत्पन्न हुआ है। इसलिए नाटक से नाट की व्युत्पत्ति देखी।

नाटक– सं. नट् + ण्वुल् – अंक प्रत्यय से नाटक की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ नाट्य या अभिनय करने वाला या नटों या अभिनेताओं के द्वारा मंचन। अभिनय इसका अंग्रेजी पर्याय ड्रामा है।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि नाटक शब्द तक पहुंचने से पूर्व – नच्च – नाच – नृत् – नृत्य, नट – नाट – नाट्य – नाटक शब्द प्रमुख हैं।

नच्च (अंग प्रत्यंग को हिलाना) से क्षतिपूरक दीर्घीकरण से नाच (वाद्य यंत्र सहित स्वर,लय, ताल पर नाचना क्रिया की संज्ञा), नृत् में सांस्कृतिक भाव आ जाता है। नृत् से (नृत्य) बन जाता है। नट से नाट नकल स्वांग का भाव आ जाता है। जिससे नाट्य शब्द बना है। नाट्य से नाटक की व्युत्पित्ति हुई है।

रामचन्द गुणचंद्र ने "'नाटक' शब्द की उत्पत्ति 'नट' धातु से मानी है। जिसका अर्थ है–'नाचना', 'अभिनय करना','अनुकरना है।" अंग प्रत्यंग हिलाना, अंग प्रत्यंग वाद्य यंत्र के साथ, भावाभिव्यक्ति, तथा अभिनय के साथ कथा की अभिव्यक्ति नाटक कहलाती है।

प्रथम हिंदी नाटक का बीजवपन वेदों में हो चुका था जिसके आधार पर नाटक को पांचवां वेद कहा जाता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में घटना का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार देवताओं से प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर पांचवें वेद अर्थात् नाटक को जन्म दिया। शिव ने तांडव नृत्य तथा पार्वती ने लास्य प्रदान किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के बाद ही नाटक

का आविर्भाव हुआ। उत्तर–वैदिक युग से पूर्व नाटक का आगमन हो चुका था। 'यवनिका' के आधार पर नाटक को यूनान की देन कहा गया। वह भी सत्य नहीं क्योंकि शब्द यवनिका नहीं 'जवनिका' है। जब वेग के अनुसार, जवनिका–वेग से उठने गिरने वाला पर्दा होता है। यूनानी नाटक में पर्दा नहीं होता था, अंक नहीं होते थे आदि।

पाणिनि (ईसा 400 वर्ष पूर्व) ने नाटक का उल्लेख किया है। रामायण, महाभारत में नाटक का उल्लेख है। उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन महाकवि भास की रचनाएं हैं। कालिदास, शुद्रक, भवभूति, हर्षवर्द्धन, भट्ट नारायण तथा विशाखदत्त आदि नाटककार थे। उसके बाद नाट्य कला विलुप्त सी हो गई।

डॉ. दशरथ ओझा ने तेरहवीं शताब्दी से नाटक का आविर्भाव माना है। सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक "गय सुकुमार रास" है जिसका रचनाकाल संवत् 1289 वि. है। इस की भाषा पर राजस्थानी हिंदी का प्रभाव है। नाटकीय तत्वों पर प्रकाश नहीं पड़ता है। इसलिए इसे प्रथम नाटक नहीं कहा जा सकता है। महाकवि विद्यापति द्वारा रचित मैथिली नाटक 'गोरक्ष विजय' को प्रथम नाटक कहा गया है। किंतु पद्यभाग मैथिली में है। मैथिली नाटकों के बाद रास नाटक अर्थात् ब्रजभाषा पद्य के नाटक आये। उसके पश्चात् हिंदी में पद्य गद्य नाटकों की रचना होती रही जिनमें 'प्रबोध चंद्रोय' को प्रथम नाटक कुछ आलोचकों ने माना है। यशवंत सिंह को प्रथम नाटककार माना है। इसका रचनाकाल सं. 1700 वि. है।

हिंदी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से होता है। सन् 1850 ई. से आज तक के युग को नाट्य रचना की दृष्टि से तीन खंडों में विभक्त कर सकते हैं।

भारतेंदु युग (सन् 1850 –1900 ई.)

प्रसाद युग (सन् 1901 –1930 ई.)

प्रसादोत्तर युग (सन् 1931 –1950 ई.)

स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् 1951 – अब तक)

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता बाबू गोपाल चन्द्र द्वारा रचित नाटक 'नहुष नाटक' (सन् 1841 ई.) को हिंदी का प्रथम नाटक माना है। किंतु यह भी ब्रजभाषा परंपरा के पद्य बद्ध नाटकों में आता है।

(1) भारतेंदु युग– सन् 1861 ई. राजा लक्ष्मण सिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का हिन्दी अनुवाद 'शाकुन्तला' नाटक नाम से किया। भारतेंदु ने प्रथम नाटक 'विद्या सुंदर' सन् 1868 ई में बंगला नाटक से छायानुवाद किया। उसके पश्चात् उनके अनेक मौलिक एवं अनूदित नाटक प्रकाशित हुए– 'पाखंड विडम्बनम्' –1872, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' –1872, 'धनंजय' विजय, 'मुद्राराक्षस' –1875, 'सत्यहरिश्चन्द्र' –1875, 'प्रेमयोगिनी' –1875, 'विषस्य – विषमौषधम्' –1876, 'कर्पूर मंजरी' –1876, 'चंद्रावली' –1876, 'भारत दुर्दशा' –1876, 'नील देवी' –1877, 'अंधेरी नगरी' –1881, तथा 'सती प्रताप' –1884 ई. आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक विषयों पर आधारित है। सत्य हरिश्चन्द्र, 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस' तथा 'कर्पूर मंजरी' अनूदित नाटक हैं। मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर करारा व्यंग्य किया है। पाखंड–विडंबनम्, वैदिक हिंसा–हिंसा न भक्ति ऐसा ही नाटक हैं। 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक में देशी नरेशों की दुर्दशा पर आंसू बहाए हैं तथा उन्हें चेतावनी दी है कि यदि वे न संभलें तो धीरे–धीरे अंग्रेज सभी देशी रियासतों को अपने अधिकार में ले लेंगे। 'भारत दुर्दशा' में भारतेंदु की राष्ट्र–भक्ति का स्वर उद्घोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत के शासक रूप में चित्रित करते हुए भारत वासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान–स्थान पर अंग्रेजों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचारी व्यवहार, भारतीय जनता की मोहकता पर गहरा आघात किया है। 1857 ई. की

असफल क्रांति को लोग अभी भूल नहीं पाए थे। भारतेंदु ने ब्रिटिश शासन एवं उसके विभिन्न अंगों की जैसी स्पष्ट आलोचना अपने साहित्य में ही है वह उनके उज्ज्वल देश प्रेम एवं अपूर्व साहस का द्योतन करती है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला एवं अंग्रेजी के नाटक साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं से अनुवाद किए थे। नाट्य कला के सिद्धान्तों का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया था इसका प्रमाण उनके नाटक देते हैं। उन्होंने अपने नाटकों के मंचन की भी व्यवस्था की थी। वे मंचन में भी भाग लेते थे। भारतेंदु के नाटकों में जीवन और कला, सौंदर्य और शिव, मनोरंजन और लोक सेवा का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, एवं स्वाभाविकता आदि के गुण विद्यमान हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा तथा उनके प्रभाव से उस युग के अनेक लेखक नाट्य रचना में तत्पर हुए। श्रीनिवास दास 'रणधीर' और 'प्रेम मोहिनी', राधाकृष्ण दास – 'दुःखिनी बाला', महाराणा प्रताप, बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन – 'भारत सौभाग्यम्', तोताराम वर्मा – 'विवाह विडंबन', प्रतापनारायण मिश्र – 'भारत दुर्दशा' रूपक, और राधाचरण गोस्वामी 'तन–मन–धन' श्री गोसाईं जी के 'अर्पण' आदि नाटकों की सृजना की। इन नाटकों में समाज सुधार, देश–प्रेम, या हास्य विनोद की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इनमें गद्य खड़ीबोली तथा पद्य ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। संस्कृत नाटकों के अनेक शास्त्रीय लक्षणों की इनमें अवहेलना की गई है। भाषा पात्रानुकूल है। शैली में सरलता, मधुरता एवं रोचकता दृष्टिगोचर होती है। भारतेंदु युगीन नाट्य साहित्य जनमानस के निकट था उसमें लोकरंजन एवं लोकरक्षण दोनों भावों का सुंदर समन्वय हुआ है। तत्कालीन नाटक पाठ्य एवं दृश्य दोनों रूपों में तत्कालीन लोकहृदय का आकर्षक बने हुए थे। इनका दिव्य मंचन भी होता था।

(2) प्रसाद युग– आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में भारतेंदु के पश्चात् सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद हैं। इन्होंने जितनी ख्याति काव्य की विभिन्न विधाओं के सकल सृजन में प्राप्त की। नाटक, कहानी तथा उपन्यास सभी विधाओं में सफल लेखनी उठाकर हिंदी गद्य साहित्य को समृद्ध बनाया। जयशंकर प्रसाद ने एक दर्जन से अधिक नाटकों की सृजना की इनके नाटकों में 'सज्जन' –1910 ई., 'कल्याणी परिणय' 1912 ई., 'करुणालय' –1913 ई., 'प्रायश्चित' 1914 ई., 'राज्य श्री' 1915 ई., 'विशाख' 1921 ई., 'अजात शत्रु' 1922 ई., 'कामना' 1923 ई., जनमेजय का 'नाम यज्ञ' –1923 ई. 'स्कंदगुप्त' 1928 ई., 'एक घूंट' 1929 ई., 'चंद्रगुप्त' 1931 ई. तथा 'ध्रुवस्वामिनी' –1933 ई. आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु युगीन कवियों ने देश की दुर्दशा का वर्णन बारंबार अपनी रचनाओं में किया, जिससे प्रभावित होकर भारतीयों में करुणा, ग्लानि, दैन्य, एवं अवसाद की प्रबल भावनाओं का उदय हुआ। ऐसी भावनाओं का भारतीयों में जन्मना अति स्वाभाविक था। साहित्यिक रचनाओं ने आग में घी का समावेश किया। ऐसे परिवेश एवं ऐसी मनःस्थिति में समाज एवं राष्ट्र विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने की क्षमता खो बैठता है। प्रसाद ने देशवासियों में आत्मगौरव का संचार किया। जिसके लिए उन्होंने अपने नाटकों में भारत के अतीत के गौरवपूर्ण दृश्यों को प्रतिस्थापित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध युग से संबंधित है जब भारत अपनी सांस्कृतिक पताका विश्व के अधिकांश देशों में फहरा रहा था। बौद्धधर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए महाराज अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा को विदेशों में भेजा था। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने अति सूक्ष्मता एवं सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया है। उसमें मात्र तत्युगीन रेखाएं ही नहीं मिलती अपितु तत्कालीन वातावरण के सजीव अंकन की रंगीनी भी मिलती है। धर्म की बाह्य परिस्थितियों का चित्रण करने की अपेक्षा उन्होंने दार्शनिक आंतरिक गुत्थियों तथा समस्याओं को स्पष्टता प्रदान करना अधिक उचित समझा है। पात्रों का चरित्र चित्रण करते हुए परिवेशानुसार परिवर्तन एवं विकास का प्रतिपादन किया है। मानव चरित्र सत्–असत् दोनों पक्षों का पूर्ण प्रतिनिधित्व उनके नाटकों में मिलता है। नारीरूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता, त्याग, बलिदान, ममता, सौहार्द, दया, माया एवं गंभीरता कवि प्रसाद ने प्रदान की है। उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप नारी को नाटककार प्रसाद ने प्रदत्त किया है। प्रसाद ने प्रायः सभी नाटकों में किसी न किसी ऐसी नारी की अवतारणा की है

जो पृथ्वी के दुख पूर्ण, अंधकार पूर्ण मानवता को सुखमय उज्ज्वल प्रकाश की प्रदायिनी बनी है। जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के मध्य क्षमा, करुणा एवं प्रेम के स्थायी रूप की प्रतिष्ठा करती है और अपने प्रभाव विचारों तथा चरित्र के दुर्जनों को सज्जन दुराचारियों को सदाचारी, नृशंस अत्याचारियों को उदार लोकसेवी बना देती है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास–रजत नग– पगतल में।

पीयूष–स्रोत–सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।

–कामायनी(जयशंकर प्रसाद)

प्रसाद की कामायनी की यह उक्ति प्रसाद के नाटक की दिव्य नायिकाओं को पूर्णतः चरितार्थ करती है। नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में पूर्वी एवं पश्चिमी तत्वों का अपूर्व सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद के नाटकों में एक ओर भारतीय नाट्यशास्त्रानुसार कथावस्तु, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील निरूपण, रस, सत्य और न्याय विजय की परंपरा का पूर्ण सफलता से पालन हुआ है दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों का संघर्ष एवं व्यक्ति वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी रचनाओं में उसी तरह हुआ है। भारतीय नाट्य परंपरा की रसात्मकता इनमें प्रचुरता से उपलब्ध है साथ–साथ पाश्चात्य नाटकों की सी कार्य व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है। भारतीय नाटक सुखांत होते हैं। पाश्चात्य नाटककार दुखांत नाटकों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। प्रसाद ने नाटकों का अंत इस ढंग से किया है कि उसे सुखांत दुखांत दोनों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उन्होंने सुख दुखांतक नाटकों का सृजन किया है। दूसरी दृष्टि से उन नाटकों को न सुखांत कहा जा सकता है न दुखांत कहा जा सकता है। वास्तव में नाटकों का अंत एक ऐसी वैराग्य भावना के साथ होता है जिसमें नायक विजयी हो जाता है किंतु वह फल का उपभोग स्वयं नहीं करता है। उसे वह प्रतिनायक को ही प्रत्यावर्तित कर देता है। इस प्रकार नाटकों के विचित्र अंत को प्रसाद के नाम पर ही प्रसादांत कहा गया है। मंचन की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में आलोचकों को अनेक दोष दृष्टिगोचर होते हैं। कथानक विस्तृत एवं विशृंखल सा है कि उससे उनमें शिथिलता आ गया है। उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं एवं दृश्यों का आयोजन किया है जो मंचन की दृष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं। दीर्घ स्वगत कथन एवं लंबे वार्तालाप, गीतों का आधिक्य, वातावरण की गंभीरता आदि बातें उनके नाटकों की अभिनेयता में अवरोधक सिद्ध होती हैं। वास्तव में प्रसाद नाटकों में कवि एवं दार्शनिक अधिक हैं, नाटककार कम हैं। उनके नाटक विद्वानों, ऋषियों, मनीषियों के चिंतन मनन की वस्तु हैं। जन साधारण के समक्ष उनका सफल प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है इस तथ्य को प्रसाद में स्वयं व्यक्त किया है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककार माखनलाल चतुर्वेदी, 'कृष्णार्जुन युद्ध', पंडित गोविंदवल्लभ पंत – 'वरमाला', एवं 'राजमुकुट' आदि। पांडेयबेचन शर्मा उग्र – 'महात्मा ईसा', मुंशी प्रेमचन्द – 'कर्बला' एवं 'संग्राम' आदि उल्लेखनीय हैं। ध्यातव्य है कि विषय एवं शैली की दृष्टि से इन नाटककारों में परस्पर थोड़ा बहुत अंतर अवश्य है। परिणामत इन्हें नाटककार स्वरूप विशिष्टता विहीनता के कारण महत्व नहीं दिया जाता है। प्रसादोत्तर नाटक– प्रासदोत्तर नाटक साहित्य को ऐतिहासिक, पौराणिक, सास्कृतिक, सामाजिक राजनीतिक कल्पनाश्रित एवं अन्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पुनःकल्पनाश्रित नाटकों को समस्या प्रधान, भावप्रधान तथा प्रतीकात्मक नाटक तीन उपविभागों में विभक्त किया जा सकता है।

(क) ऐतिहासिक– प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का अत्यधिक विकास हुआ है। ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, वृंदालाल वर्मा, गोविंद वल्लभ पंत, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उदय शंकर भट्ट तथा कतिपय अन्य नाटककारों ने अपूर्व योगदान किया है।

हरिकृष्ण प्रेमी– हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में – 'रक्षाबंधन' 1934, 'शिव साधना' 1936, 'प्रतिशोध स्वप्न भंग' 1940, 'आहुति' 1940, 'उद्धार' 1940, 'शपथ', 'कानन प्राचीर प्रकाश स्तंभ' 1954, 'कीर्ति स्तंभ' 1955, 'विदा'

1958, 'संवत प्रवर्तन' 1959 'सापों की सृष्टि' 1959 'आन मान' 1961 आदि नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमी ने अपने नाटकों में अति प्राचीन या सुदूर पूर्व इतिहास को नाटक विषय का चयन न करके मुसलमानों के इतिहास को चयनित करके उसकें संदर्भ में आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनके नाटकों ने आधुनिक भारतीय भारतीयों में राष्ट्रभक्ति, आत्मात्याग, बलिदान, हिंदू–मुस्लिम एकता आदि भावों तथा प्रवृत्तियां उदीप्त की तथा प्रबलता भरी है। ऐतिहासिकता का उपयोग रोमांस के लिए नहीं किया गया है। आदर्शों की स्थापना के लिए ऐतिहासिकता का ग्रहण किया गया है। प्रेमी की रचनाएं, नाट्य कला एवं शिल्प विधान की दृष्टि से दोष रहित तथा सफल प्रमाणित हुई है।

वृन्दावन लाल वर्मा– वृन्दावन लाल वर्मा इतिहास वेत्ता है। उनकी इतिहास विज्ञता की अभिव्यक्ति का माध्यम उपन्यास एवं नाटक दोनों हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों में 'झांसी की रानी' (1948) 'पूर्व की ओर' (1950) 'बीरबल' (1950) 'ललित विक्रम' (1953) आदि का विशेष महत्व है। इनके अतिरिक्त वर्मा ने सामाजिक नाटकों की भी सृजना की। वर्मा के नाटकों में कथावस्तु एवं घटनाओं को विशेष महत्व का विषय बनाया गया है। कहीं–कहीं उनकी घटना प्रधानता भी दृष्टिगोचर होती है। दृश्य विधान की सरलता, चरित्र –चित्रण की स्पष्टता, भाषा की उपयुक्तता, गतिशीलता एवं संवादों की संक्षिप्तता ने उनके नाटकों को मंचन की दृष्टि से पूर्ण सफलता प्रदान की है।

गोविंद वल्लभ पंत– गोविंद वल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की सृजना की है। उनके नाट् साहित्य में 'राजमुकुट' (1935), 'अंतःपुर का छिद्र' (1940) आदि प्रमुख हैं। 'राजमुकुट' में मेवाड़ की पन्नाधाय के पुत्र का बलिदान तथ 'अंतःपुर का छिद्र' में वत्सराज उदयन के अंतःपुर की कलह का चित्रण अति प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। पंत के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी एवं पारसी नाटकों की विभिन्न परंपराओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नाटकों को अभिनेय बनाने का पूरा प्रयास किया गया है।

कुछ ऐसे नाटककार हैं जिनका ऐतिहासिक क्षेत्र नहीं है उनका संबंध अन्य क्षेत्रों से है किन्तु कभी–कभी वे इतिहास को अपने नाटकों का विषय बनाकर साहित्य सृजन करते हैं। ऐसे ऐतिहासिक नाटककारों में प्रमुख नाटककार एवं उनके नाटक निम्नलिखित हैं–

चंद्रगुप्त विद्यालंकार– 'अशोक' (1935), 'रेवा' (1938)।

सेठ गोविंद दास – 'हर्ष' (1942), 'शशि गुप्त' (1942)।

सियाराम शरण गुप्त– 'पुण्यपर्व' (1933)।

उदयशंकर भट्ट– 'मुक्ति पथ' (1944), 'दाहर' (1933), 'शक विजय' (1949)।

लक्ष्मीनारायण मिश्र– 'गरुड़ध्वज' –(1948), 'वात्सराज' (1950), 'वितस्ता की लहरों' (1953)।

सत्येंद्र– 'मुक्ति यज्ञ' (1936)।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद– 'गौतम नंद'।

उपेन्द्र नाथ अश्क– 'जय पराजय' (1936)।

सुदर्शन– 'सिकंदर' (1947)।

बनारसी दास करुणा– 'सिद्धार्थ बुद्ध' (1955)।

जगदीश चन्द्र माथुर– 'कोणार्क' (1951)।

देवराज यशस्वी– भोज, मानव प्रताप (1952)।

चतुरसेन शास्त्री– 'छत्रसाल'।

इनके अतिरिक्त कुछ लेखकों ने जीवनी परक नाटकों की भी रचना की है। जिनमें

लक्ष्मीनारायण– 'इंदु' –(1955)।

सेठ गोविंद दास– 'भारतेंदु' –(1955), 'रहीम' (1955)।

इन्हें भी ऐतिहासिक नाटकों में सम्मिलित किया जा सकता है।

ऐतिहासिक नाटकों की कथित सूची यह स्पष्ट कर देती है कि ऐतिहासिक नाटकों की अत्यधिक प्रगति एवं अभिवृद्धि हुई है। इनमें इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय तथा संतुलित संयोग मिलता है। अधिकांश नाटकों में इतिहास की केवल घटनाओं का ही नहीं अपितु उनके सांस्कृतिक परिवेश का भी प्रस्तुतीकरण किया गया है। पात्रों का अंतर्द्वन्द्व युगीन चेतना तथा समसामयिक सत्य को उद्‌घाटित करने का प्रयास भी नाटककारों ने किया है। पूर्व नाटककारों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कला, शिल्प एवं शैली की दृष्टि से विशेष विकास किया है। यत्र–तत्र ऐतिहासिक ज्ञान, भाव विचार तथा प्रयोगों की नूतनता पर अधिक बल दिए जाने के परिणामस्वरूप रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता कम हो गई है।

(ख) पौराणिक– इस कालावधि में पौराणिक नाटकों की परंपरा भी विकसित हुई। विभिन्न लेखकों ने नाटक का विषय एवं आधार पौराणिकता को बनाया तथा अनेक श्रेष्ठ नाटकों का सृजन किया जिनका विवरण इस प्रकार है–

सेठ गोविंद दास – 'कर्त्तव्य' (1935), 'कर्ण' (1946)।

चतुरसेन शास्त्री – 'मेघनाथ' (1939), 'राधाकृष्ण'।

रामवृक्ष बनीपुरी– 'सीता की मां'।

किशोरी दास वाजपेयेयी– 'सुदामा' –(1939)।

गोकुल चन्द्र शर्मा– 'अभिनय रामायण'।

पृथ्वीनाथ शर्मा– 'उर्मिला' (1950)।

सद्‌गगुरु शरण अवस्थी– 'मझली रानी'।

वीरेंन्द्र कुमार गुप्त– 'सुभद्रा परिणय'।

उदयशंकर भट्ट– 'विद्रोहिणी अम्बा' (1935), 'सागर विजय' (1937)।

कैलाशनाथ भटनागर– 'भीम प्रतिज्ञा' (1934), 'श्रीवत्स' (1941)।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'– 'गंगा का बेटा' (1940)।

तारा मिश्र– 'देवयानी' (1944)।

डॉ. लक्ष्मण स्वरूप – 'नल दमयंती' (1941)।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी– 'श्रीशुक' (1944)।

सूर्य नारायण मूर्ति– 'महानाश की ओर' (1960)।

प्रेमनिधि शास्त्री– 'प्रणमूर्ति' (1950)।

उमाशंकर बहादुर– 'मोल' (1951)।

गोविंद वल्लभ पंत– 'ययाति' (1951)।

डॉ. कृष्ण दत्त भारद्वाज– 'अज्ञात वास' (1952)।

मोहन लाल जिज्ञासु– 'पर्वदान' (1952)।

हरिशंकर सिन्हा 'श्रीनिवास'– 'मां दुर्गे' (1953)।

लक्ष्मी नारायण मिश्र– 'नारद की वीणा' (1946), 'चक्रव्यूह' (1954)।

रांगेस राघव– 'स्वर्ग भूमि का यात्री' (1951)।

गुंजन मुखर्जी– 'शक्ति पूजा' (1952)।

जगदीश– 'प्रादुर्भाव' (1955) आदि।

विशेषताएं–

डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री ने अपने शोध प्रबंध में पौराणिक नाटकों की विशेषताओं का विवेचन, विश्लेषण करते हुए कहा है –

(1) "इनका कथानक पौराणिक होते हुए भी उसके ब्याज से आधुनिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पौराणिक कथाओं के माध्यम से किसी ने कर्त्तव्य के आदर्श को पाठकों के समक्ष रखा है किसी ने शिक्षित पात्र के साथ सहानुभूति के दो आंसू बहाएं हैं किसी ने जाति–पांति की समस्याओं के समाधान ढूंढने का प्रयास किया है। किसी ने नारी के गौरव के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। अधिकांश नाटककारों ने इन पौराणिक नाटकों के माध्यम से वर्तमान जीवन को सांत्वना एवं आशा की ज्योति प्रदर्शित की है।"

(2) इन नाटकों की दूसरी विशेषता यह है कि प्राचीन संस्कृत के आधार पर पौराणिक असंबद्ध एवं संगति स्थापित करने का भरसक यत्न किया है।

(3) पौराणिक नाटक वर्तमान जीवन को संकीर्णता एवं सीमा की प्रतिबद्धता से निकालकर आधुनिक मानव समाज को व्यापकता एवं विशालता का संदेश देकर उन्हें उन्नति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए अग्रसर करते हैं। रंगमंच एवं नाट्य शिल्प की दृष्टि से इनके अनेक नाटकों में दोष दर्शन किये जा सकते हैं किंतु गोविंद बल्लभ पंत, सेठ गोविंद दास एवं लक्ष्मी नारायण मिश्र जैसे प्रौढ़ नाटककारों में दोष नहीं है। विषयवस्तु की दृष्टि से ये नाटक पौराणिक होते हुए भी प्रतिवादन शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से आधुनिक तथा वे आज की सामाजिक रूचि एवं समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

(ग) कल्पनाश्रित– इस युग के कल्पना पर आश्रित नाटकों को उनकी मूल प्रवृत्ति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) समस्याप्रधान नाटक

(2) भावप्रधान नाटक

(3) प्रतीकात्मक नाटक।

(1) समस्याप्रधान नाटक– समस्या प्रधान नाटकों को प्रचलन में लाने का श्रेय इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों को है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यथार्थवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बुद्धि की दृष्टि से खोजा जाता है। इनमें

यौन समस्याओं को ही ग्रहण किया गया है। बाह्य द्वंद्व की अपेक्षा आंतरिक द्वंद्व को अधिक प्रदर्शित किया गया है। स्वागत–भाषण, गीत, काव्यात्मकता आदि का इनमें त्याग कर दिया गया है। विषयवस्तु की दृष्टि से इन्हें भी दो उपभेदों में बांटा जा सकता है–

(क) मनोवैज्ञानिक

(ख) सामाजिक

(क) मनोवैज्ञानिक नाटक– मनोवैज्ञानिक नाटकों में मुख्य रूप से काम संबंधी समस्याओं का विश्लेषण यौन–विज्ञान तथा मनोविश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक इसी कोटि के हैं।

(ख) सामाजिक नाटक– वर्तमान युग एवं समाज की विभिन्न समस्याओं का समाधान आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया है। इस वर्ग के नाटककारों में सेठ गोविंद दास, उपेंद्रनाथ अश्क, वृंदावनलाल शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी तथा गोविंदवल्लभ पंत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र– लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनके समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' (1931), 'राक्षस मन्दिर' (1931), 'मुक्ति का रहस्य', (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिंदूर की होली' (1934), 'आधी रात' (1937) आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं। मिश्र के इन नाटकों में बुद्धि, यथार्थ एवं फ्रायड को प्रधानता दी गई है। इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों की तरह इन्होंने भी जीवन के प्रति विशुद्ध बौद्धिक दृष्टि अपनाई है तथा पूर्ववर्ती रोमांटिक या रूमानी प्रवृत्ति का विरोध किया है। इनके अधिकांश नाटकों में यौन समस्याओं एवं काम समस्याओं को ही सबसे अधिक नाटक का विषय बनाकर उसे महत्व प्रदान किया है।

सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में उपेन्द्रनाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, आदि का विशेष स्थान है। गोविंद दास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपने अनेक नाटकों में किया है जिनमें 'कुलीनता' (1940) 'सेवापथ' (1940), 'दुख क्यों?' (1946) 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' (1938), 'त्याग या ग्रहण' (1943) 'संतोष कहां' (1945), 'पाकिस्तान' (1946), 'महत्व किसे' (1946), 'गरीबी और अमीरी' (1946) तथा 'बड़ा पापी कौन' (1948) आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। सेठ ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक राष्ट्रीय समस्याओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'– 'अश्क' ऐसे नाटककार हैं जिनमें न तो विशुद्ध यथार्थवाद है न ही आदर्शवाद। उनके नाटक यथार्थ आदर्श के मध्य की कड़ी हैं। प्रेमचन्द के सान इन्हें भी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहा जा सकता। इनकी भावभूमि यथार्थ है जो आदर्श अपनाए हुए हैं। उन्होंने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण जहां यथार्थ के स्तर पर किया है वहीं उनकी सुधार या क्रांतिकारी नीति उन्हें आदर्शवादी बना देती है। उनके नाटकों में प्रमुख नाटक 'स्वर्ग की झलक' (1939), 'कैद' (1945), 'उड़ान' (1949), 'छठा बेटा' (1949) तथा 'अलग अलग रास्ते' (1955) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने अपने नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वतन्त्रता, विवाह समस्या, संयुक्त परिवार आदि से संबंधित विभिन्न पक्षों पर सामाजिक दृष्टिकोण से करारा व्यंग्य किया है। अनेक नाटकों में उन्होंने समाज की वर्तमान स्वार्थपरता, धनलोलुपता, कामुकता, अनैतिकता आदि का यथार्थवादी शैली में चित्रण किया है। अश्क की सर्वप्रमुख नाट्य विशेषता यह है कि वे समस्याओं और समाधानों का प्रस्तुतीकरण उपदेशात्मक प्रणाली या अति गंभीरता से नहीं करते हैं। अपितु वे इसके लिए हास्य व्यंग्यात्मक शैली का चयन करते हैं। जिससे उनके प्रभाव में अधिक तीव्रता आ जाती है। रंगमंच एवं नाट्य शैली की दृष्टि से' अश्क' अतुलनीय है।

वृदांवनलाल वर्मा– वृंदावनलाल वर्मा का जो स्थान ऐतिहासिक उपन्यासकारों में है वही स्थान सामाजिक नाटकों में है। इस क्षेत्र में इनको अपूर्व सफलता मिली है। इस वर्ग के इनके नाटकों में 'राखी की लाज' (1943), 'बांस की फांस' (1947), 'खिलौने की खोज' (1950), 'नीलकंठ' (1951), 'सगुन' (1951), 'विस्तार' (1956) तथा 'देखा–देखी' (1956) आदि प्रमुख हैं। वर्मा ने इन नाटकों में छुआछूत, विवाह, जाति–पांति, ऊंच नीच, सामाजिक विषमता तथा नेताओं की स्वार्थ परता आदि से संबंधित विभिन्न प्रवृत्तियों तथा समस्याओं का चित्रांकन किया है।

गोविंदवल्लभ पंत – गोविंदवल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों में 'अगूंर की बेटी' (1936) तथा 'सिदूंर की बिंदी' आदि प्रमुख नाटक हैं। 'अंगूर की बेटी' जैसा कि नाम से ज्ञात हो जाता है अंगूर से जन्मी अर्थात् शराब पीने की भयंकरता से अवगत कराते हुए इस व्यवसन से मुक्ति पाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है। 'सिंदूर की बिंदी' विवाहिता नारी के सुहाग का प्रतीक हैं। परित्यक्ता का यह सौभाग्य छिन जाता है कि उसे अनेक भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास उन्हीं समस्याओं, सहानुभूतिमय ढंगों से प्रस्तुत किया गया हैं। पंत के नाटकों में सर्वत्र समाज सुधार की भावना दृष्टिगोचर होती है। कथा की प्रस्तुति इस ढंग से की जाती है कि उसमें रोचकता या कलात्मकता का अभाव नहीं आने पाता।

पृथ्वीनाथ शर्मा– पृथ्वीनाथ शर्मा के नाटकों में 'दुविधा', 'शाप', 'अपराधी' (1939), तथा 'साध' (1944) आदि नाटकों की प्रमुखता है। जिसमें उन्मुक्त प्रेम, विवाह तथा सामाजिक न्याय से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया है। 'दुविधा' की नायिका स्वच्छंद प्रेम एवं विवाह में से किसी एक का चयन की दुविधा से ग्रस्त दिखाई गई है। यही समस्या 'साण' में भी प्रस्तुत की गई है। इस दृष्टि से पृथ्वीनाथ शर्मा, लक्ष्मी नारायण मिश्र के निकटस्थ हो जाते हैं। किन्तु अंतर इतना है कि इनका दृष्टिकोण मिश्र की तरह अति भौतिकतावादी और अति यथार्थवादी नहीं है।

इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदयशंकर भट्ट – 'कमला' (1939), 'मुक्ति पथ' (1944) तथा 'क्रांतिकारी'।

हरिकृष्ण प्रेमी – 'छाया'

प्रेमचंद – 'प्रेम की वेदी' (1933)।

चन्द्रशेखर पांडेय – 'जीत में हार' (1942)।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद– 'समर्पण' (1950)।

चतुरसेन शास्त्री– 'पगन्ध्वनि' (1952)।

दयानाथ झा –'कर्म पथ' (1953)।

जयनाथ नलिन –'अवसान'

शंभूनाथ सिंह – 'धरती और आकाश' (1954)।

अभय कुमार यौधेय– 'नारी की साधना' (1954)।

रघुवीर शरण मित्र– 'भारत माता' (1954)।

श्री संतोष– 'मृत्यु की आरे'

तुलसी भाटिया– 'मर्यादा' तथा

रामनरेश त्रिपाठी– 'पैसा परमेश्वर' आदि उल्लेखनीय हैं।

(2) भावप्रधान नाटक– कल्पनाश्रित नाटकों का दूसरा वर्ग भाव प्रधान नाटकों का है। शैली की दृष्टि से इस वर्ग को गीति नाटक नाम से भी अभिहित किया गया है। इस वर्ग के नाटकों के लिए भाव की प्रमुखता के साथ–साथ पद्य का माध्यम भी अपेक्षित होता है। आधुनिक युग में रचित हिंदी का प्रथम गीति नाटक जय शंकर प्रसाद द्वारा रचित 'करुणालय' (सन् 1912 ई.) माना गया है। इसमें पौराणिक आधार पर राजा हरिश्चन्द्र तथा शुनः शेष की बलि की कथा का वर्णन किया गया है। प्रसाद के पश्चात लंबे समय तक गीति नाटकों के क्षेत्र में कोई प्रयास तथा प्रगति नहीं हुई। परवर्ती युग में अनेक गीति नाटकों की रचना हुई। जिसमें मैथिलीशरण गुप्त – 'अनध' (1925), हरिकृष्ण प्रेमी – 'स्वर्ण विहान', उदयशंकर भट्ट मत्सयगंधा, विश्वामित्र तथा राधा आदि, सेठ गोविंद दास स्नेह या स्वर्ग (1946) भगवती चरण वर्मा 'तारा' आदि। भाव प्रधान नाटकों के क्षेत्र में सबसे अधिक सफल उदयशंकर भट्ट रहे हैं। उन्होंने अपने पात्रों की विभिन्न भावनाओं एवं उनके अंतर्द्वन्द्व को अत्यधिक सशक्त एवं संगीतात्मक शैली में प्रयुक्त किया है। इनमें पात्रों के वार्तालाप भी प्रायः लय और संगीत से परिपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत 'रजत शिखर' धर्म वीर भारती 'अंधा युग' आदि उल्लेखनीय हैं।

(3) प्रतीकात्मक नाटक– प्रतीकात्मक या प्रतीकवादी नाटकों का श्रीगणेश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'कामना' (सन् 1926 ई.) से हुआ। सुमित्रानंदन पंत – 'ज्योत्सना' (1934), भगवती प्रसाद वाजपेयी, 'छलना' (1939), सेठ गोविंददास 'नव रस', कुमार ह्रदय 'नक्शे का रंग' (1941), डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल 'मादा कैक्टस', एवं 'सुंदर रस' (1959) आदि सुंदर प्रतीकात्मक नाटक हैं। इस वर्ग के नाटकों में विभिन्न पात्र विभिन्न विचारों या तत्वों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

(क) सांस्कृतिक– सास्कृतिक चतेना से यक्त नाटकों का निर्माण इस युग में हुआ जिसमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार – 'अशोक ' एवं 'रेवा', 'सेठ गोविंद दास' – 'शशिगुप्त', उदयशंकर भट्ट 'मुक्तिपथ', सियाराम शरण गुप्त – 'पुण्य पाप', लक्ष्मीनारायण मिश्र – 'गरुण ध्वज' तथा गोविंद वल्लभ पंत – 'अंतः पुर का छिद्र' आदि उल्लेखनीय हैं। इतिहास के आधार पर इनके कथानक का निर्माण किया गया है। लेकिन सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना सब में विद्यमान है। इनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान चेतना की तुलना करनें में प्रसाद से बहुत अधिक साभ्य दिखलाई पड़ता है। अंतर इतना है कि प्रसाद में भावुकता, दार्शनिकता भाषागत जटिलता थी किंतु इन नाटकों में जटिलता नहीं है।

(ख) समस्यात्मक– पाश्चात्य नाटककारों मुख्य रूप से इब्सन एवं बनार्ड सा की यथार्थवादी चेतना से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में नाटक लिखने वालों ने समस्यात्मक नाटक लिखने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। फ्रायड ने मानों यह घोषणा कर दी थी कि मानव की व्यापक एवं प्रमुख समस्या काम समस्या है। किंचित इसी घोषणा से प्रभावित होकर समस्या नाटकों में यौन समस्या को मुख्य रूप से उभारा गया तथा वासना या काम भावना का प्रमुखता के साथ वर्णन किया गया। वैयक्तिक समस्याओं, उलझनों, मानसिक अंतर्द्वन्द्वों का विवेचन एवं विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। हिंदी में समस्या नाटक लिखने का श्रेय लक्ष्मी नारायण मिश्र को है। वही समस्या नाटकों के अधिष्ठाता एवं संस्थापक हैं। इस प्रकार परंपरा का श्रीगणेश उन्होंने 'सन्यासी' नामक समस्या नाटक लिखकर किया। उनके अन्य समस्य नाटक 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली' तथा 'आधी रात' आदि प्रमुख हैं। इन नाटकों में बौद्धिकता एवं यथार्थवाद का आधिक्य है। प्रेम विवाह एवं काम समस्याओं का चित्रण निडरता से किया गया है। भावुकतावादी रोमांस के मिश्र विरोधी हैं। मिश्र के प्रयासों से नाटक विश्व में नवीनता का समावेश एवं व्यापक प्रयोग किया है।

(ग) सामाजिक एवं राजनीतिक– इस युग में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को अनेक नाटकों में आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है। इस दृष्टि से सेठ गोविंददास, उपेंद्रनाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा आदि का योगदान महत्वपूर्ण है। गोविंददास के नाटकों में सिद्धांत स्वातंत्र्य, 'सेवा पथ', 'महत्व किसे', 'संतोष कहां' तथा 'गरीबी और अमीरी' आदि में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में

'स्वर्ग की झलक' 'कैद', 'उड़ान', 'छठा बेटा' आदि उल्लेखनीय हैं। 'स्वर्ग की झलक' में नारी–शिक्षा की समस्या को व्यंग्य के माध्यम से उभारा गया है। 'छठा बेटा' स्वप्न नाटक है जिसके द्वारा यह प्रदर्शित करने का यत्न किया गया है कि मानव अपनी जिन इच्छाओं की पूर्ति जागृतावस्था में पूर्ण नहीं कर पाता स्वप्न अर्थात् अर्द्ध निंद्रा में उन कामनाओं की पूर्ति की प्रबल कामना करता है। अश्क के नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, वैवाहिक समस्या तथा संयुक्त परिवार सें संबद्ध अनेक सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण करके मानव को उनसे मुक्ति प्राप्त करने हेतु चिंतन के लिए बाध्य कर दिया गया है। मंचन की दृष्टि से अश्क के नाटक सफल हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को आधार रूप में ग्रहण करके कुछ नाटकों की भी रचना हुई है। जिनमें वृंदावन लाल शर्मा कृत 'धीरे–धीरे', 'राखी लाज', एवं 'बांस की फांस'। गोविंद वल्लभ पंत कृत 'अंगूर की बेटी', 'सिंदूर की बिंदी', पृथ्वी नाथ शर्मा कृत 'अपराधी एवं साधु' तथा उदय शंकर भट्ट कृत 'कमला' एवं 'क्रांतिकारी' आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में भिन्न भिन्न परिवेशों एवं समस्याओं का सफल चित्रांकन हुआ है। इनके अतिरिक्त इस युग में नीति नाटक, एवं एकांकी नाटक भी लिखे गए हैं। सिने नाटक भी लिखे जाने लगे।

डॉ. रामकुमार वर्मा – 'स्वप्न चित्र' तथा भगवतीचरण वर्मा का चित्रलेख प्रमुख है।

(घ) स्वातंत्र्योत्तर युग – स्वतत्रंता के पश्चात् नाटक लेखन की गति में तीवरात आई। हिंदी नाटक साहित्य को समृद्ध करने वाले नाटककारों में – नरेश मेहता – 'सुबह के घंटे', लक्ष्मीकांत वर्मा – 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिव प्रसाद सिंह, 'घंटियां गूंजती हैं', मन्नू भंडारी– 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना – 'बकरी', 'मुद्राराक्षस', 'तिलचट्टा', शंकर घोष– 'एक और द्रोणाचार्य, भीष्म साहनी – 'हानूश' एवं 'कविरा खड़ा बाजार में', विमला रैना– 'तीन युग', सर्वदानंद – 'भूमिजा', श्रीमती कुसुम कुमार – 'दिल्ली ऊंचा सुनती है', सुरेन्द्र वर्मा– 'सूर्य की अंतिम किरण' से 'सूर्य की पहली किरण' तक, मणिमधुकर – 'रस गंधर्व', सुशील कुमार सिंह, 'सिंहासन खाली है', ज्ञान देव अग्निहोत्री– 'शुतुरमुर्ग', गिरिराज किशोर– 'प्रजा ही रहने दो', हमीदुल्ला –'समय संदर्भ',तथा प्रभात कुमार भट्टाचार्य 'काठ महल' आदि विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं 'नुक्कड़ नाटक' आधुनिक काल की देन हैं। टेलीविजन सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटक युग की मांग है। जिससे नाटक का बहु आयामी विकास हो रहा है।

आज हिंदी नाटकों का विकास नई दिशाओं एवं विभिन्न रूपों में होना हिंदी नाटक साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

निष्कर्षतः आधुनिक हिंदी साहित्य की अन्यविधाओं के मुकाबले में हिंदी नाटक का विकास अपेक्षाकृत मंद गति से हुआ है और आने वाले समय में इस विधा का और अधिक क्षरण होना स्वाभाविक है, क्योंकि नाटक वास्तव में रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए लिखे गए होते हैं। लेकिन वर्तमान में रंगमंच की तरफ दर्शकों का अधिक रुझान नहीं है। फिर भी कुछ साहित्यकार अपने प्रयासों से नाटक विधा को न केवल जीवित रखे हुये हैं, बल्कि समय की मांग के अनुरूप उसमें नये सतत्वों का समावेश कर उसे रुचिकर भी बना रहे हैं।

5. निबंध : उद्‌भव एवं विकास

साहित्य की प्रमुख दो विधाएँ 'गद्य–पद्य' हैं। गद्य आधुनिक काल की प्रमुख देन है। गद्य की अनेक विधाओं में निबंध विशेष विधा है। मुद्रण कला के विकास ने पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार–प्रसार को अत्यधिक बढ़ा दिया जिसके परिणाम स्वरूप निबंध की लोकप्रियता एवं वैविध्य में वृद्धि होती गई। उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में भारतेंदु युग में निबंध का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु एवं उनके सहयोगी साहित्यकारों ने विचाराभिव्यक्ति हेतु गद्य का माध्यम अपनाया। आधुनिक काल से पूर्व अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य न होकर पद्य था। पद्य में अवधी एवं ब्रजभाषा का उपयोग होता था। गद्य में बहुत समय तक ब्रजभाषा का प्रयोग होता था। खड़ी बोली अभिव्यक्ति का माध्यम उन्नीसवीं सदी में बनी जिसका श्रेय भारतेंदु युग के साहित्यकारों विशेषकर भारतेंदु को है जिन्होंने साहित्य में खड़ी बोली भाषा के

प्रयोग पर विशेष बल दिया। खड़ी बोली का परिमार्जन एवं परिष्कार द्विवेदीयुग में हुआ। गद्य के विकास में निबंध का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का प्रकाशन एवं संपादन कर के निबंध के विकास में उल्लेखनीय योगदान किया है। निबंध को चरम विकास की पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठापित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। शुक्ल का व्यक्तित्व हिंदी निबंधों के विकास में केन्द्र बिंदु है जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें मील का पत्थर मानते हुए तत्कालीन काल का नामकरण 'शुक्ल युग' किया गया। शुक्ल से पूर्व ही निबंध का उद्‌भव हो चुका था। शुक्ल के बाद हिंदी निबंधों का चहुँमुखी विकास हुआ।

निबंध शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

निबंध शब्द नि+बंध् (बांधना) घञ् से व्युत्पन्न है। 'नि' उपसर्ग एवं घञ् प्रत्यय है। बंध् धातु बांधने के अर्थ में है। निबंध शब्द का अर्थ किसी चीज को किसी के साथ जोड़ने, बाँधने या लगाने की क्रिया या भाव है। अच्छी तरह गठा या बंधा हुआ पदार्थ या भाव। ग्रंथ, लेख आदि लिखने का भाव या क्रिया। निबंध आज कल साहित्यिक क्षेत्र में वह विचार पूण विवरणात्मक एवं विस्तृत लेख, जिसमें किसी विषय के सभी अंगों का मौलिक एवं स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया गया हो। निबंध का अंग्रेजी पर्याय 'एस्से' है। निबंध का पूर्व रूप संदर्भ, रचना, प्रस्ताव, लेख है। तथा पर एवं विकसित रूप प्रबंध, लघुप्रबंध एवं शोध प्रबंध है। जिस प्रकार वाक्य का विस्तृत रूप प्रोक्ति है उसी प्रकार निबंध का विस्तृत एवं व्यापक रूप प्रबंध है। जिसमें व्यवस्थित क्रमानुसार ठीक से परस्पर एक दूसरे से बंधे हुए अनेक निबंध होते हैं। विचारों के बिखराव को रोकना या व्यवस्थित रूप से बांधकर विशिष्ट रूप देना निबंध कहलाता है। निबंध में उस व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया है जहाँ विचार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत हो जाता है।

'जॉनसन' ने निबंध में नियमबद्धता को अस्वीकारा है उनके अनुसार मुक्त मन की मौज, अनियमित और अपरिपक्व रचना निबंध है।

'गुलाब राय' के अनुसार निबंध गद्य की वह रचना है जिसमें एक सीमित आकार के अंदर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन विशेष वैयक्तिकता, स्वच्छंदता, सौष्ठव, सजीवता, आवश्यक संगीत एवं संबद्धता के साथ किया गया हो।

भारतवर्ष में प्राचीन साहित्यकार ऐसी व्याख्या को निबंध कहते थे जिसमें सब प्रकार के मतों का उल्लेख और गुणदोष आदि की आलोचना या विवेचन होता था। आजकल पाश्चात्य साहित्य शास्त्रानुसार उसकी व्याख्या और स्वरूप का परिमार्जन हो जाने से परिभाषा भी बदल गई है। गद्यात्मक रचना निबंध है जिसमें निबंधकार अपने भावों एवं विचारों को आत्मपरक रूप से व्यक्त करने हेतु सजीव, लालित्य पूर्ण तथा मर्यादित–साहित्यिक भाषा शैली का प्रयोग करता है।

आधुनिक निबंध के जन्मदाता 'मौनतेय' हैं। उनका कथन है 'निबंध' विचारों, उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है।" 'जॉनसन' के मतानुसार, "निबंध मन का आकस्मिक और उच्छृंखल आवेग – असंबद्ध और चिंतनहीन बुद्धि – विलास मात्र है। "केवल नामक पाश्चात्य विद्वान ने हास्य–विनोदमय निबंध की व्याख्या की है।" निबंध लेखन कला का बहुत प्रिय साधन है जिस लेखक में न प्रतिभा है और न ज्ञान वृद्धि की जिज्ञासा, वही निबंध लेखन में प्रवृत्त होता है तथा हल्की रचनाओं में आनंद लेने वाला पाठक ही उसे पढ़ता है।"

निबंध विचार–प्रकाशन का गंभीर साधन है। व्यापक अर्थ में, राजनीतिक, सामाजिक, अर्थशास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषयों के प्रतिपादक लेख को भी निबंध कहते हैं। निबंध की विशेषताओं में विषय नहीं बल्कि आत्मा, आकार, लघुता, मन के स्वाधीन विचरण एवं चिंतन पर आधारित होना, शैली–संक्षिप्त, रोचक एवं व्यंग्य प्रधान होना आदि है।

निबंध का उद्‌भव एवं विकास

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में हिंदी निबंध का आविर्भाव हुआ। इससे पूर्व गद्य का विकास नहीं हुआ था। निबंधों के प्रचार–प्रसार के साधनों – मुद्रण–यंत्र, पत्र–पत्रिकाओं का प्रचलन आधुनिक युग में हुआ है। भारतेंदु युगीन 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका, ब्राह्मण, सार सुधा निधि, प्रदीप पत्र–पत्रिकाओं आदि के प्रकाशन ने निबंध के विकास में अत्यधिक योगदान किया।

प्रो. जयनाथ नलिन ने भारतेंदु युग से आज तक के निबंध साहित्य के विकास काल को चार भागों में बाटा है।

(1) भारतेंदु युग (2) द्विवेदी युग (3) प्रसाद युग तथा(4) शुक्लोत्तर युग चार युगों में बांटा है।

1 भारतेंदु युग

भारतेंदु युग (संवत् 1930 से 1960 विक्रमी.) के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त तथा राधाचरण गोस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र मात्र निबंधकार ही नहीं अपितु साहित्यकार के विराट् रूप थे। उन्होंने कविता, काव्य, नाटक, निबंध एवं आलोचना आदि अनेक विधाओं पर सफल लेखनी उठाई है। सभी रूपों का विकास ही नहीं किया अपितु उनमें उन विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों का समन्वय भी किया जो युगीन संभावना थी। कविता एवं नाटक की तरह उनके नाटकों का क्षेत्र अति व्यापक था। इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, आलोचना, खोज, यात्रा, आत्मचरित, प्रकृति वर्णन तथा व्यंग्य विनोद आदि सभी विषयों को निबंध में स्थान दिया। उनके प्रमुख निबंध, उदय पुरोदय, काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण तथा कालचक्र आदि हैं। निबंधों में साहित्य–मनीषी की सूक्ष्म दृष्टि से अवगत हो जाते हैं। अन्य निबंध वैद्यनाथ धाम, हरिद्वार, तथा सरयूपार की यात्रा आदि में भारतीय संस्कृति एवं भारत भूमि के प्रति अगाध प्रेम दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति सौंदर्य का वर्णन द्रष्टव्य है – "ठंडी हवा मन की कली खिलाती हुई बहने लगी। दूर से घानी और स्याही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियां छिपी हुई और चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के ही होली खेलते हुए बड़े ही सुहावने मालूम पड़ते थे।" यात्रा संबंधी निबंधों में यात्रा के कष्टों का अनुभव करते हुए भारतीय जनता के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति पर्वतीय प्रवाहिनी के समान बीच–बीच में पत्थरों एवं वन प्रांत की झाड़ियों से निकलकर शीतलता प्रदान करने लगती है। "गाड़ी भी ऐसी टूटी–फूटी जैसे हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। अब तपस्या करके गोरी–गोरी कोख में जन्म लें तब ही संसारमें सुख मिले।" भारतेंदु के अन्य निबंधों में सामयिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर तीखा व्यंग्य किया गया है ऐस निबंधों में लेवी प्राण लेवी, स्वर्ग में विचार सभा अधिवेशन, अंग्रेज स्रोत, पांचवें पैगंबर तथा कंकड़ोत आदि प्रमुख हैं। कंकड़ोत की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं।

कंकड़ को प्रणाम है। देव नहीं महादेव, क्योंकि काशी के कंकड़ शिव शंकर के समान हैं . . . आप अंग्रेजी राज्य में भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छंद रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पर पड़कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते हो। अतएव हे अंग्रेजी राज्य में नवाबी संस्थापक तुमको नमस्कार है।" यहां हिंदुओं की मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना तथा अंग्रेजी राज्य की शांति व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है।

भारतेंदु के निबंधों में विषयानुसार भाषा शैलियों का वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। उनकी भाषा में मार्मिक अभिव्यंजना,सजीव अनेकरूपता, आकर्षक स्वच्छता एवं सरलता विद्यमान है जिसमें कहीं स्वाभाविक अलंकार योजना है, कहीं संगोष्ठी वार्तालाप का स्वरूप विद्यमान है। उनके आलोचनात्मक निबंधों में नाटक एवं वैष्णवता और भारतवर्ष प्रमुख हैं जिसमें भाषा अत्यंत प्रौढ़ एवं प्रांजल है। किन्तु उसमें दुरूहता, दुर्बोधता, कृत्रिमता एवं समासात्मकता नहीं

दिखलाई पड़ती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विषय एवं भाषा शैली दोनों दृष्टियों से भारतेंदु के निबंधों का अत्यधिक महत्त्व है।

बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युगीन नाटककारों में बालकृष्ण भट्ट श्रेष्ठ हैं। भट्ट हिंदी प्रदीप के संपादक थे। उन्होंने विवरणात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे हैं। कुछ ऐसे निबंध भी लिखे जिनके शीर्षकों से विषय वस्तु का संज्ञान हो जाता है। ऐसे निबंधों में – मेला–ठेला, वकील, सहानुभूति, आशा, खटका, रोटी तो किसी भांति कमाय खाय मुछंदर। इंग्लिश पढ़े तो बाबू होय, आत्म निर्भरता, शब्द की आकर्षण शक्ति तथा माधुर्य आदि प्रमुख हैं। भट्ट के निबंधों में वैचारिक मौलिकता, विषय वैविध्य, तथा शैली का आकर्षण आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

प्रतापनारायण मिश्र 'ब्राह्मण' पत्रिका के संपादक थे। इन्होंने विभिन्न विषयों को निबंध का विषय बनाया। कभी उन्होंने शारीरिक अंगों– भौं, दांत, पेट, मूंछ, नाक आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया एवं उन पर सफलतापूर्वक निबंध लिखे। कभी उन्होंने प्रताप चरित, वृद्ध, दान, जुआ तथा अपव्यय जैसे विषयों पर निबंध लिखे। उनके अन्य निबंध ईश्वर की मूर्ति, नास्तिक, शिवमूर्ति,सोने का डंडा, तथा मनोवेग आदि प्रमुख हैं। समझदार की मौत है, धूरे क लत्ता बिनै, कनातन क डोरी, होली है होरी है, होरी है जैसी उक्तियों को आधार बनाकर निबंध रचना की। मिश्र के निबंधों में मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं तो वे एक वाक्य में ही मुहावरों की झड़ी लगा देते हैं। मुहावरेदार भाषा मात्र बात पर आधारित मुहावरों की झड़ी अवलोकनीय है – "डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में चाहे जहां की बात हो, जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है। बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात उड़ती है।" हिंदी निबंधकार के निबंध में उद्धृत उद्धरण इनकी निबंध संबंधी विशेषताओं पर पूर्ण प्रकाश डालता है –"भाषा में स्खलन, शैली में घरूपन, और ग्रामीणता, चंचलता और उछलकूद मिश्र जी की विशेषता है। भाषा संबंधी दोष जहाँ–तहाँ लापरवाही से बिखरे पड़े हैं। कहीं–कहीं वाक्य का विलक्षण और दुर्बोध रूप भी मिलता है। उर्दू के एक–दो शब्द भी परदेशी की तरह डरे–डरे से दीख पड़ते हैं। तेग अदा, कमाने, अव, निहायत, आदि भौं में मिल जाएंगी। पर केवल इन्हीं तक में दूसरे में कुछ नहीं, 'फिर क्यों इनकी निंदा की जाए?' का अर्थ टेढ़ी खीर है। विराम चिन्ह तब प्रयुक्त ही अधिक नहीं होते थे। इन्होंने उनका जैसे बहिष्कार ही कर रखा हो। इनके अभाव में वाक्य कभी कभी इतना लंबा हो जाता है कि समझने में उसे बार–बार पढ़ना पड़ता है।"

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' भारतेंदु के मित्र थे। इन्होंने आनंद कादंबिनी (मासिक) तथा नागरी नीदर (साप्ताहिक) दो पत्रों का संपादन किया जिनमें उनके अनेक निबंधों का प्रकाशन हुआ। इनमें प्रकाशित निबंधों में हिंदी भाषा का विकास, परिपूर्ण प्रवास, तथा उत्साह–आलंबन आदि प्रमुख हैं। प्रेमधन की भाषा आलंकारिक, कृत्रिम तथा चमत्कारी है जिसमें इन्होंने अधिक–से–अधिक चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है। प्रेमधन की भाषा सदैव दलदल में फंसी रही है।

बाल मुकुंद गुप्त भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं। इन्होंने बंगवासी तथा भारत मित्र का संपादन किया। गुप्त जी के अनेक निबंध इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनके निबंधों में पर राष्ट्रीय शासकों की नीति एवं अत्याचार पर मीठा, चुभता हुआ व्यंग्य किया गया है। शिवशंभु के उपनाम से उन्होंने अनेक निबंध लिखे। जिसमें शिवशंभू का चिट्ठा को अत्यधिक ख्याति मिली। इसमें लार्ड कर्जन को संबोधित करते हुए भारतवासियों की राजनीतिक विवशता को चित्रित किया गया हैं कहीं–कहीं उनके व्यंग्य में अति तीखापन आ गया है। होली के अवसर लिखे गए चिट्ठे में उन्होंने लिखा है –"कृष्ण हैं उद्धव हैं, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटक पाते। सूर्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चांदनी नहीं। माई लार्ड नगर में ही हैं पर शिवशंभू उनके द्वार तक नहीं फटक सकता

है। उनके घर चल होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माई लार्ड के घर तक बात की हवा तक नहीं पहुंच सकती। . . . माई लॉर्ड के मुख चंद्र के उदय के लिए कोई समय भी नियत नहीं है।"

राधाचरण गोस्वामी के निबंध व्यंग्य से ओत–प्रोत हैं। उन्होंने युगीन समाज की कुरीतियों एवं बुराईयों पर तीखा व्यंग्य किया है। राधाचरण गोस्वामी धार्मिक अंध विश्वासों पर चोट करते हैं तो उनका व्यंग्य कबीर के दोहों से अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है। कबीर के व्यंग्यों में कटुता एवं तीखापन है जिसके गले से उतरते ही लकीर सी खिंच जाती है। जबकि गोस्वामी के व्यंग्य शहद में डूबे या होमियोपैथिक औषधि हैं तथा हंसी लिपटे एवं कल्पना से रंगीन हैं। यमपुर की यात्रा लेख में वैतरणी पार करते समय लेखक को वहां के प्रधान ने रोक लिया, पूछा क्या तुमने गोदान किया है? तब लेखन उत्तर देता है – "साहब प्रथम प्रश्न तो सुन लीजिए, गोदान का कारण क्या? यदि गौ की पूंछ पकड़कर पार उतर जाते हैं, तो क्या बैल से नहीं उतर सकते? जब बैल से उतर सकते हैं, तो कुत्ते ने क्या चोरी की है?" लेखक ने किसी साहब को कुत्ता दान में दिया था। इसीसे वह "वैतरणी पार" का पासपोर्ट बनवा लेना अपना अधिकार समझता है। "भारतेंदुयुगीन सभी निबंधकारों में व्यष्टि–समष्टि का समन्वय विद्यमान है। निबंधों के विषय क्षेत्र में वैविध्यता एवं व्यापकता है। हास्य व्यंग्य सोद्देश्य है जो कि सामाजिक या राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार करता है। जटिल–से–जटिल विषयों को इस युग के निबंधकारों ने सरल सुबोध एवं मनोहारी शैली में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा शैली में भाषिक एवं व्याकरणिक शुद्धता भले ही न हो किंतु सहृदय को गुदगुदाने, उसके मस्तिष्क को झंकृत करने तथा उसकी आत्मा को स्पर्श करने में उसे पूर्ण सफलता मिली है। उनके निबंधों में शुष्कता एवं वैज्ञानिकता नहीं है। साहित्यिक आदर्श कोटि के निबंध हैं जिनसे विचारों के साथ–साथ भावनाओं का भी उद्वेलन होता है जिनसे केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं होती अपितु रसानुभूति की प्राप्ति भी होती है।

2 द्विवेदी युग

द्विवेदी युगीन लेखकों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु, डॉ. श्यामसुंदरदास, डॉ. पद्म सिंह शर्मा, अध्यापकपूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1903 ई. से द्विवेदी युग का प्रारंभ हो गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के संपादन द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की। उन्होंने स्वयं निबंध लिखकर उच्चकोटि के निबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने अंग्रेजी के निबंधकार 'बेकन' के निबंधों का अनुवाद भी बेकन विचार रत्नावली के नाम से प्रस्तुत किया जिससे हिंदी के अन्य लेखकों को प्रेरणा मिली। सरस्वती के संपादन का कार्य भार संभालते ही द्विवेदी ने सर्वप्रथम तत्कालीन लेखकों की भाषा को संस्कारित एवं परिमार्जित किया। व्याकरणिक सुधार तथा विराम चिह्नों के प्रयोगपर बल दिया। वे भाषा के गठन एवं स्वरूप को समझाने का यत्न करते थे। हिन्दी को अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग से अलग न रखा जाए यह उनकी भाषा को लेकर नीति थी। जानबूझकर संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य या बहिष्कार न किया जाए। उनकी इस भाषा नीति से प्रायः सभी निबंधकार प्रभावित हुए। उनके निबंधों में कवि और कविता, प्रतिमा, कविता, साहित्य की महत्ता, क्रोध तथा लोभ आदि नवीन विचारों से ओत–प्रोत हैं। भारतेंदु युगीन निबंधों जैसी वैयक्तिकता का प्रदर्शन, रोचकता, सजीवता एवं सहज उच्छृंखलता का द्विवेदी के निबंधों में अभाव है। इनके निबंधों में भाषा की शुद्धता, सार्थकता, एकरूपता, शब्द प्रयोगपटुता, आदि गुण विद्यमान हैं। किंतु पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता, विश्लेषण की गंभीरता, चिंतन की प्रबलता इसमें बहुत कम है। इनके निबंधों की शैली व्यास है जिसके कारण पर्याप्त सरलता है तथा हास्य व्यंग्य एवं भावुकता का पूर्ण अवसर है। कवि और कविता लेख में उनकी शैली का रूप द्रष्टव्य है –

"छायावादियों की रचना तो कभी–कभी समझ में नहीं आती। वे बहुधा बड़े ही विलक्षण छंदों का या वृत्तों का भी प्रयोग करते हैं। कोई चौपदें लिखते हैं, कोई छः पदें, कोई ग्यारह पदें तो कोई तेरह पदें। किसी की चार संतरें गज–गज लंबी तो दो संतरें दो ही अंगुल की। फिर ये लोग बेतुकी पद्यावली भी लिखने की बहुधा कृपा करते हैं। इस दशा में इनकी रचना एक अजीब गोरखधंधा हो जाती है। न ये शास्त्र की आज्ञा के कायल, न ये पूर्ववर्ती

कवियों की प्रणाली के अनुवर्ती न सत्य समालोचकों के परामर्श की परवाह करने वाले इनका मूलमंत्र है – 'हम चुनी दीगरे नेस्त'।"आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (साहित्य विचार)

विषयानुसार उनकी शैली में गंभीरता भी दिखलाई देती है। 'मेघदूत' निबंध की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं –"कविता कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का मेघदूत एक ऐसे भव्य भवन के सदृश्य है, जिसमें पद्मरूपी अनमोल रत्नजुड़े हुए हैं – ऐसे रत्न जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है।" वास्तव में द्विवेदी के प्रमुख संग्रह रसज्ञरंजन में सचमुच रसज्ञ पाठकों के रंजन की अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

द्विवेदी युग के अन्य निबंधकारों में माधवप्रसाद मिश्र, गोविंदनारायण मिश्र, श्यामसुंदर दास, पद्मसिंह शर्मा, अध्यापकपूर्ण सिंह, एवं चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि के नाम प्रमुख हैं। माधव प्रसाद मिश्र वषय वस्तु की दृष्टि से इन्होंने द्विवेदी का अनुसरण करते हुए विचारात्मक निबंधों की रचना की है। किंतु इनमें कहीं–कहीं शैली की विशिष्टता दिखलाई पड़ती है। माधवप्रसाद मिश्र ने धृति सत्य जैसे विषयों पर निबंध लिखकर गंभीर शैली में प्रकाश डाला है।

गोविंद नारायण मिश्र की शैली में अलंकारों की प्रधानता है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोगाधिक्य के कारण उनके निबंधों में जटिलता आ गई है। साहित्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है –"मुक्ताहारी नीर–क्षीर–विचार सुचतुर–कवि–कोविद–राज–हिम– सिंहासनासिनी मंदहासिनी, त्रिलोक प्रकाशनी सरस्वती माता के अति दुलारे, प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम, अनोखी, अतुलवाली, परम प्रभावशाली सृजन मनमोहिनी नवरसभरी सरस सुखद – विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।" इस परिभाषा को पढ़ने से साहित्य से अवगत होना तो दूर रहा स्वयं यह परिभाषा ही गले से नीचे नहीं उतरती है।

बाबू श्यामसुंदर दास उच्च कोटि के आलोचक तथा सफल निबंधकार भी थे। इनके निबंध आलोचनात्मक गंभीर विषयों पर लिखे गए हैं जैसे 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', समाज और साहित्य, हमारे साहित्योदय की प्राचीन कथा तथा कर्तव्य और सभ्यता आदि। उनके निबंधों में विचारों का संग्रह तथा समन्वय ही मिलता है। आत्मानुभूतियों का प्रकाशन या जटिलता का दर्शन उनमें नहीं होता है। उनकी शैली प्रौढ़ होते हुए भी सरल है। उनके निबंधों में जटिलता कहीं दिखलाई नहीं पड़ती है। द्विवेदी जैसी सुबोधता भी उनमें नहीं है।

पद्म सिंह शर्मा– समालोचना के जन्मदाता पद्मसिंह बाबू श्याम सुंदर दास के समकालीन थे। शर्मा जी के निबंधों के दो संग्रह –पद्मराग एवं प्रबंध मंजरी प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने निबंधों में महापुरुषों के जीवन का चित्रण, समकालीन व्यक्तियों के संस्मरण या उनको श्रद्धांजलि, साहित्य समीक्षा आदि विषयों को अपनाया है। उनकी शैली में वैयक्तिकता, भाषात्मकता एवं सरलता की प्रधानताथी। गणपति शर्मा को दी गई श्रद्धांजलि की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं –"हा! पंडित गणपति शर्मा जी हमको व्याकुल छोड़ गए। हाय हाय! क्या हो गया। यह वज्रपात, यह विपत्ति का पहाड़ अचानक कैसे टूट पड़ा? यह किसकी वियोगाग्नि से हृदय छिन्न–भिन्न हो गया। यह किसके वियोग बाण ने कलेजे को बींध दिया यह किसके शोकानल की ज्वालाएं प्राण–पखेरू के पंख जलाए डालती हैं। हा! निर्दय काल–यवन के एक ही निष्ठुर प्रहार ने किस अन्य मूर्ति को तोड़कर हृदय मन्दिर सूना कर दिया।"

अध्यापक पूर्ण सिंह अपनी शैली की विशिष्टता के लिए निबंधकारों में ख्याति प्राप्ति निबंधकार हैं। इनके निबंधों में स्वाधीन चिंतन,निर्भय विचार प्रकाशन तथा प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं शैली में अनूठी लाक्षणिकता, एवं चुभता व्यंग्य मिलता है। "बादल गरज–गरजकर ऐसे ही चले जाते हैं, परंतु बरसने वाले बादल जरा सी देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं।" या "पुस्तकों या अखबारों के पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस ड्राइंग रूप के वीर पैदा होते हैं।" "आजकल भारत वर्ष में परोपकार का बुखार फैल रहा है।" "पुस्तकों के लिखे नुस्खों से तो और भी बदहजमी हो जाती है।" जैसे वाक्यों से अध्यापक पूर्ण सिंह की निबंध शैली की रोचकता का नमूना मिल जाता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने कहानियों की तरह निबंध भी कम लिखे हैं किन्तु गुणवत्ता की दृष्टि से उनका बहुत अधिक महत्व है। उनके निबंधों में गंभीरता, एवं प्रगतिशीलता का सुंदर समन्वय दिखलाई पड़ता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, व्यंग्यात्मकता तथा सरसता का गुण अत्यधिक परिमाण में उपलब्ध होता है। उनका प्रमुख निबंध कछुआ धर्म है जिसकी कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं –"पुराने–से–पुराने आर्यों की अपने भाई असुरों से अनबन हुई। असुर असुरिया में रहना चाहते थे, आर्य सप्त सिंधु को आर्यावर्त बनाना चाहते थे। आगे ये चल दिए, पीछे वे दबाते गए. . . पर ईशान के अंगूरों और गुलों का मुंजवत् पहाड़ की सोमलता का चस्का पड़ा हुआ था, लेने जाते तो वे पुराने गंधर्व मारने दौड़ते हैं।" वास्तव में गुलेरी के निबंध उनके व्यक्तित्व की छाप से ओत–प्रोत हैं। उनकी शैली पर सर्वत्र उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है। द्विवेदी युगीन निबंधकारों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के निबंध प्रायः विचार–प्रधान हैं। भारतेंदु युगीन निबंधों की तरह इनमें तत्कालीन जीवन की अभिव्यक्ति एवं राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिवेशों का अंकन नहीं मिलता है। हास्य व्यंग्य के स्थान पर गांभीर्य की प्रधानता है। पूर्ण सिंह एवं गुलेरी के निबंधों के अतिरिक्त शेष निबंधकारों के निबंधों में वैयक्तिकता का अभाव है। निबंधों में मौलिकता नवीनता एवं ताजगी भी इनमें दृष्टिगोचर नहीं होती है। इससे यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि इनमें निबंधत्व कम वैचारिक संग्रह अधिक है। व्याकरणिक एवं भाषाई शुद्धता एवं परिमार्जन इनमें मिलता है।

3. शुक्ल युग

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विषय, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी निबंधों को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर उन्हें उनकी पराकाष्ठा प्रदान की। निःसन्देह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहा जा सकता है। द्विवेदी युग के बाद निबंधों का विकास इन्हीं के व्यक्तित्व से पहचाना जाता है। इसलिए इन्हीं के नाम पर इस युग का नामकरण किया गया है।हिंदी निबंध के विकास की गति में तीसरे मोड़ का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों के संग्रह चिंतामणि को है। इसने पाठकों केसमक्ष नवीन विचार, नव अनुभूति एवं नई शैली उपस्थित की। इस युग के निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, आचार्य नंन्ददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, रामनाथ सुमन तथा माखनलाल चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. रघुवीर सिंह आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुकल ने चिंतामणि (तीन भाग) द्वारा नवीन विचारधारा, नवीन अनुभूति तथा नव्य शैली का प्रारूप प्रदान किया। चिंतामणि के निबंधों का विषय अत्यंत सूक्ष्म एवं गंभीर है। जिसमें मनोवैज्ञानिकता तथा रसानुभूति की प्रधानता है। निबंधों का प्रतिपादन प्रौढ़तम शैली में हुआ है। जिसमें चिंतन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता तथा शैली की परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। शुक्ल की लेखन कला में वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता यथास्थान दृष्टिगोचर होती है। उनके निबंधों में व्यक्ति एवं विषय का ऐसा अद्भुत समन्वय हुआ है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनके निबंधों को व्यक्ति प्रधान या विषय प्रधान कहें। चिंतामणि (प्रथम भाग) के निवेदन में इसका निर्णय करने का भार अपने विज्ञ पाठकों पर छोड़ दिया है। ईर्ष्या, श्रद्धा–भक्ति, लज्जा, क्रोध, लोभ, मोह, लोभ–प्रीति आदि मनोवृत्तियों का विश्लेषण उन्होंने अति प्रखर दृष्टि से किया है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। शुक्ल ने अपने निबंधों में मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री एवं साहित्यकार तीनों के कार्यभार का निर्वाह अति सफलतापूर्वक किया है। उनके साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबंधों में कविता क्या है?, साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था आदि प्रमुख हैं जो अपूर्व प्रतिभा, स्वतन्त्र चिंतन एवं मौलिक विचारों की अमिट छाप पाठकों पर छोड़ते हैं। उनके विचारों एवं निष्कर्षों से असहमत रहते हुए भी उनकी मौलिकता अनिवार्य रूप से सभी ने स्वीकारी है। साधारणीकरण की जटिल समस्या

को शताब्दियों पूर्व संस्कृत के आचार्यों ने सुलझाने का प्रयत्न किया किंतु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली। उसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नये ढंग से सुलझाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। वे सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी ही नहीं अपितु नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के महान व्यक्तित्व थे।

निबंध में उनकी वैयक्तिकता प्रमुख विशेषता है। लज्जा और ग्लानि पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है "लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गई, उपासक सब पत्थर के हो गए . . . आजकल तो बहुत सी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरादी गई हैं।" वास्तव में शुक्ल के निबंधों में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो गंभीर विषयों के निबंधों के लिए अपेक्षित हैं। उनके कुछ निबंधों में जटिलता, दुरूहता, शुष्कता आदि आ गई है जिसका प्रमुख कारण निबंध–विषय की गंभीरता, अति प्रौढ़ता एवं अति सूक्ष्मता है। अति सर्वत्र वर्जयेत्र का पालन न करने से उनके कुछ निबंधों में दुर्बोधता आई है।

गुलाब राय– गुलाब राय के अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें फिर निराशा क्यों?, मेरी असफलताएं तथा मेरे निबंध आदि विशेष लोकप्रिय संग्रह हैं। गुलाब राय के निबंधों की विशेषताओं में वैयक्तिक सरलता, अनुभूति का समन्वय, वैचारिक स्पष्टता, एवं शैली की सुबोधगम्यता आदि प्रमुख हैं। 'मेरी असफलताएं' में गुलाब राय ने व्यक्ति परक विषयों को अति मनोहारी रूप से उपस्थित किया है। व्यंग्य का यथास्थान प्रयोग किया गया है। व्यंग्य का लक्ष्य किसी और को न बनाकर अपने को ही बनाया है। मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ इनका प्रमुख निबंध है उसका कुछ अंश अवलोकनीय है –"खैर आज कल उस (भैंस) का दूध कम हो जाने पर भी अपने मित्रों को छाछ भी पिला न सकने की विवशता की झूंझल के होते हुए भी उसके लिए भूसा लाना अनिवार्य हो जाता है। कहां साधारणीकरण एवं अभिव्यंजनावाद की चर्चा और कहां भूसेका भाव! भूसा खरीदकर मुझे भी गधे के पीछे ऐसे ही चलना पड़ता है, जैसे बहुत से लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं. . . लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनंद आता है जितना कि पलायनवादी को जीवन से भागने में।" गुलाबराय ने अपने निबंधों में साहित्य और मनोविज्ञान की समस्याओं का समाधान भी उपस्थित किया है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने निबंधों में मौलिकता का प्रतिपादन करते हुए नवीन शैली का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों के विषय अति सरल हैं यथा 'उत्सव', राम लाल पंडित, समाज सेवा, नाम तथा विज्ञान आदि। उनकी शैली की विशेषता अन्य निबंधकारों में नहीं मिलती है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने सांस्कृतिक विषयों को अपने निबंध का विषय बनाया है।

डॉ. रघुवीर सिंह ने इतिहास को अपने निबंधों का विषय बनाते हुए ऐतिहासिक धूमिल तथ्यों की धूल हटाकर उन्हें नवीन रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। इनकी निबंध शैली में वैयक्तिकता की प्रधानता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निबंध के विषय क्षेत्र में पर्याप्त गंभीरता, नवीनता एवं सूक्ष्मता का आविर्भाव हुआ है। शुक्ल युगीन निबंधों में गंभीर विषयों को लेकर उनकी समस्याओं को नवीन दृष्टिकोण से मौलिक विचारों के साथ प्रतिपादित किया गया है। साहित्य, इतिहास, संस्कृति तथा मनोविज्ञान इनके निबंधों के विषय रहे हैं। वैयक्तिक अनुभूतियों एवं भावनाओं के प्रकाशन को अनेक निबंधकारों ने लक्ष्य बनाया है। भाषा शैली की दृष्टि से यह युग अन्य युगों की अपेक्षा निबंध साहित्य में अत्यधिक विकसित, प्रांजल एवं प्रौढ़ दृष्टिगोचर होता है।

शुक्लोत्तर युग– शुक्ल परवर्ती निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, जैनेंद्र, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. सत्येंद्र, शांतिप्रिय द्विवेदी, डॉ. विनय मोहन शर्मा, डॉ. रामरतन भटनागर, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. विश्वंभर 'मानव', प्रभाकर माचवे, डॉ. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश', इलाचन्द्र जोशी, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, रामधारी सिंह दिनकर, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त तथा देवेन्द्र सत्यार्थी आदि प्रमुख हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी– शुक्ल परवर्ती निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं। इनके निबंध संग्रहों में अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क, विचार प्रवाह तथा कुटज विशेष उल्लेखनीय संग्रह हैं। द्विवेदी का निबंध क्षेत्र अति व्यापक है। उन्होंने भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, प्रकृति, परंपरागत ज्ञान–विज्ञान, आधुनिक युगीन विभिन्न परिवेशों, प्रवृतियों एवं समस्याओं का अपूर्व समन्वय किया है। उनके निबंध अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता तथा चिंतन की गंभीरता से युक्त हैं किन्तु द्विवेदी की वैयक्तिक सरलता, सहजता, सरसता एवं विनोदी स्वभाव उसमें नीसरता, शुष्कता या दुर्बोधता का प्रवेश नहीं होने देता है। व्यक्ति एवं विषय का पूर्ण तादात्म्य उनमें दृष्टिगोचर होता है। उनके गंभीर से गंभीर निबंधों को पढ़ते समय पाठक ऊबता नहीं है अपितु उपन्यास या काव्यानंद की रस विभोरता का अनुभव करता है। जिन निबंधों के लेखन में द्विवेदी का मन रमा नहीं है वे सरसता के अपवाद स्वरूप हैं। जब लेखक का मन ही नहीं रमा है तो पाठक का मन उसमें किस प्रकार रमकर आनंदानुभूति कर सकता है किन्तु द्विवेदी के अधिकांश निबंध लालित्य एवं कलात्मकता से परिपूर्ण आदर्श की स्थापना करते हैं। द्विवेदी की भाषा शैली में त्वरित परिवर्तनशीलता दृष्टिगोचर होती है। निबंध के मनोभाव एवं विषयानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है। कालिदास युगीन वातावरण का चित्रण करते समय उनकी शैली स्वाभाविक रूप से संस्कृत गर्भित हो जाती है जबकि ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय शैली में सारल्य एवं चलता ऊपन आ जाता है जिसमें लोक भाषा के शब्दों का आधिक्य एवं सामान्य शब्दों की प्रचुरता देखी जा सकती है। आधुनिक जीवन व विसंगतियों तथा दूषित प्रवृत्तियों का चित्रण करते समयउनकी शैली हास्य–विनोदी एवं व्यंग्यात्मक हो जाती है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं –"आसमान में निरंतर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं और मैं निश्चित जानता हूं कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हंसी खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रेलोक्य विकंपित! यह क्या कम साधना है।"

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी मुख्य रूप से आलोचक हैं। आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं। अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी साहित्य, नया साहित्य तथा नए प्रश्न प्रमुख हैं। मुख्य रूप से ये आलोचनाएं हैं किन्तु काव्य रूप एवं शैली की दृष्टि से निबंध के अंतर्गत रखा जा सकता है। इनमें वैचारिक प्रधानता है। इसलिए विचार प्रधान निबंध हैं जिनमें वैयक्तिकता की प्रधानता है। इनका मुख्य आधार व्यक्तिगत चिंतन एवं मनन है। व्यक्तिकता से प्रभावित होते हुए भी उनकी प्रतिपादन शैली विषयानुसार तथा विचारों से प्रतिबद्ध है। उसमें व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता का आभास प्रायः नहीं मिलता है। विचार–गंभीरताआ जाने से शैली भी गूढ़ एवं बोझिल हो जाती है। इस दृष्टि से आचार्य वाजपेयी, आचार्य शुक्ल की परंपरा के निबंधकार ठहरते हैं। उनकी शैली की बौद्धिकता एवं तार्किकता उच्च स्तर के पाठकों को ही बौद्धिक आनंद प्रदान करती है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्त्व संबंधी विषयों पर निबंध लिखने वाले निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं। भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्त्व से संबंधित इनके अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'पृथ्वीपुत्र', 'मात्रृभूमि' तथा कला और संस्कृति विशेष महत्वपूर्ण संग्रह हैं। डॉ. अग्रवाल के निबंधों में अध्ययन–गांभीर्य तथा चिंतन–मौलिकता का प्राधान्य है। प्राचीन तत्वों एवं उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने एवं स्पष्ट करने की अपेक्षा अपनी विशिष्ट व्याख्याओं के माध्यम से सर्वथा नवीन रूप प्रदान करते हुए उन्होंने अपने आधुनिक पाठकों के लिए उसे सुबोध बना दिया है। उनकी शैली में सरलता एवं स्पष्टता विद्यमान है जो उनके निबंधों की विशिष्टता है।

पंडित शांतिप्रिय द्विवेदी––आत्मानुभूति परक वैयक्तिक निबंध लिखने वालों में द्विवेदी का नाम मूर्धन्य है। इनके निबंध संग्रहों में जीवन–यात्रा, साहित्यि की, हमारे साहित्य निर्माता, कवि और काव्य, संचारिणी, युग और साहित्य तथा सामयिकी आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कला एवं साहित्य विषयक निबंधों की रचना की है। जिसमें स्वानुभूति के आधार पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रदान की है। किंतु 'पथ–चिन्ह' तथा 'परिव्राजक' की प्रजा आदि में वैयक्तिकता को उभारा है। शैली में सरसता एवं प्रभावोत्पादकता विद्यमान है। कहीं–कहीं यह शैली करुणा प्रधान होकर करुणोत्पादक हो गई है। जैसे अपने संबंधित संस्मरण का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है –"छुटपन में

वह विधवा हो गई थी। उस अबोध वय में उसने जाना ही नहीं कि उसके भाग्य–क्षितिज में क्या पट परिवर्तन हो गया। जन्म काल से मां का जो आंचल उसके मस्तक पर फैला हुआ था। सयानी होने पर वही अंचल अपने मस्तक परज्यों–का–त्यों पाया, मानो शैशव ही उसके जीवन में अक्षुण हो गया। अचानक एक दिन जब वह अंचल भी मस्तक पद से छाया की तरह तिरोहित हो गया, तब उसके जीवन में मध्याह्न की प्रखर ज्वाला के सिवा और क्या शेष रह गया था।"

डॉ. नगेन्द्र का साहित्यिक आलोचनात्मक निबंधों की अभिवृद्धि में असाधारण योगदान है। इनके निबंध संग्रहों में विचार और विवेचन, विचार और अनुभूति, विचार और विश्लेषण तथा कामायनी के अध्ययन की समस्याएं आदि विशेष महत्व के हैं। इन निबंधों का मूल स्वर विषय विवेचन है। अनेक निबंधों में वैयक्तिकता भी दृष्टिगोचर होती है फिर भी विवेच्य विषय या मूल समस्या के विवेचना की प्रधानता है। नगेन्द्र कुशल व्याख्याता हैं। वे किसी भी विषय पर अपना समाधान प्रस्तुत करने से पहले उसे पाठकों के हृदय में प्रतिष्ठापित कर देते हैं जिसके कारण पाठक निबंध को पढ़ते समय उबासी न लेकर अतिदत्त–चित्तता से उद्योपांत पढ़ जाता है। इसका उदाहरण उनका "साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद" है। इस शैली का यह सर्वश्रेष्ठ निबंध है। डॉ. नगेन्द्र ने अधिकांश निबंधों में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली अपनाई है किन्तु कुछ निबंधों में रूपकात्मक या अप्रस्तुतात्मक शैली का प्रयोग भी किया है। जैसा कि वीणा–पाणि के कंपाउंड में या हिंदी उपन्यास में किया गया है। वास्तव में विचारों की गंभीरता, चिंतन की मौलिकता एवं शैली की रोचकता इन तीनों का डॉ. नगेन्द्र ने सामंजस्य स्थापित किया है। साहित्य एवं कला संबंधी विषयों पर उत्कृष्ट निबंध लिखे हैं जिनमें कला, कल्पना और साहित्य तथा साहित्य की झांकी आदि संग्रहीत हैं। तथ्यों को तर्क एवं प्रमाण से परिपुष्ट करके प्रतिपादन करते हैं।

डॉ. विनयमोहन शर्मा के निबंध संग्रह 'साहित्यावलोकन' तथा 'दृष्टिकोण' आदि हैं। इन्होंने मुख्यतः सौंदर्य शास्त्रीय तथा साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे हैं। इनके व्यक्तित्व की सरलता एवं उदारता के परिणाम स्वरूप निबंध शैली में सरलता, स्पष्टता तथा ऋजुता के गुण विद्यमान हैं। विषय प्रतिपादन से पूर्व पाठक मनोभूमि को विषयानुसार ढाल लेते हैं जिससे वह प्रतिपाद्य निबंध को सुनने, समझने या अध्ययन में तल्लीनता पूर्वक प्रवृत्त हो जाता है। उदाहरण के लिए कलाकार एवं सौंदर्य बोध निबंध का अंश अवलोकनीय है –"सौंदर्य क्या है?, उसका बोध कैसे होता है? और कवि या कलाकार पर उसकी किस प्रकार प्रतिक्रिया होती है? ये प्रश्न वर्षों से साहित्य और दर्शन में विवाद बने हुए हैं।" आलोचना या निबंध में ऐसे प्रश्न पाठक की उत्सुकता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा– अत्यंत तीखी, व्यंग्यपूर्ण एवं सशक्त शैली में निडरता से विषय का प्रतिपादन करने वाले निबंधकारों में डॉ. रामविलास शर्मा का विशेष स्थान है। इन्होंने साहित्य, कला, संस्कृति तथा राजनीति आदि विषयों पर सौ से अधिक निबंध लिखे हैं जो संस्कृति और साहित्य, प्रगति और परंपरा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं तथा स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य आदि संग्रहों में संग्रहीत हैं। डॉ. शर्मा मार्क्सवादी या प्रगतिवादी विचारधारा के निबंधकार हैं। इनके निबंधों में यही दृष्टिकोण प्रधान है।

प्रकाशचन्द्र गुप्त के निबंधों का संग्रह 'नया हिंदी साहित्य : एक भूमिका' तथा 'साहित्य धारा' हैं जिनमें इनके निबंध संगृहीत हैं। शैली सरल, स्पष्ट तथा रोचक है।

शिवदान सिंह चौहान के निबंध संग्रह 'साहित्यानुशीलन' तथा 'आलोचना के मान' हैं जिनमें इनके निबंधों का संग्रह किया गया है। इनकी शैली में सरलता, स्पष्टता तथा रोचकता विद्यमान है।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के निबंधों के विषय ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक हैं जिनमें उन्होंने उत्कृष्ट निबंधों का प्रस्तुतीकरण किया है। निबंधों में अध्ययन, मनन एवं चिंतन की गंभीरता दृष्टिगोचर होती है। इनके निबंध संग्रह 'भारत की संस्कृति का सामाजिक विश्लेषण', 'इतिहास के पृष्ठों पर', 'खून के धब्बे' तथा 'सांस्कृतिक निबंध' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. भगीरथी मिश्र के निबंधों का संग्रह कला और साहित्य है।

डॉ. रामरतन भटनागर का निबंध संग्रह 'अध्ययन और आलोचना' है।

डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' के निबंधों के संग्रह मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर तथा रेती के फूल हैं।

महादेवी वर्मा– संस्मरणात्मक निबंध लिखने वालों में महादेवी का नाम सर्वश्रेष्ठ है। इनके संस्मरणों के संग्रह अतीत के चल–चित्र, स्मृति की रेखाएं तथा श्रृंखला की कड़ियां हैं। जिनमें सामाजिक विषमता तथा दीन–हीन मानव, पशु–पक्षियों की वेदना का चित्रण किया गया है। शब्द चयन एवं पद–विन्यास के भावों की मार्मिकता को स्पष्ट करने की सामर्थ्य एवं क्षमता विद्यमान है। उदात्त विषयों के प्रतिपादन में शैली में सशक्तता एवं प्रौढ़ता विद्यमान है। महादेवी के संस्मरणों एवं निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें दार्शनिक की अंतर्दृष्टि, कवि की अभिव्यक्ति, चित्रकार की प्याली–तूलिका, तथा साहित्यकार की अजस्त्र लेखनी का अपूर्व समन्वय विद्यमान है।

रामवृक्ष बेनीपुरी के निबंध संस्मरणात्मक हैं। जिनमें उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों से संबंधित व्यक्तियों का सहृदयापूर्ण शैली में चित्रांकन किया है। इनके निबंध संग्रह 'माटी की मूरते' तथा 'गेहूं और गुलाब' हैं। इनकी शैली काव्यात्मक तथा विवरणात्मक है। कही इनकी शैली आकुल–व्याकुल सामुद्रिक लहर–तरंगों के कंपायमान अधरों का चुंबन प्रति चुंबन लेकर अट्टहास कर उठती है।

हरिवंश राय 'बच्चन' ने संस्मरणात्मक निबंध लिखे। जिनका संग्रह 'क्या भूलूं क्या याद करूं' है। जिसमें इनके जीवन के मर्मस्पर्शी संस्मरण संग्रहीत हैं।

देवी लाल चतुर्वेदी 'मस्त' के निबंधों का संकलन 'झरोखे' है।

आचार्य चन्द्रबली पांडेय ने समीक्षात्मक एवं गवेष्णात्मक निबंधों की रचना की। इनके निबंधों के संग्रह एकता तथा विचार विमर्श हैं। इनके निबंधों में अध्ययन गांभीर्य एवं तर्क–पूर्ण शैली का समन्वय दृष्टिगोचर होता हैं।

नलिन विलोचन शर्मा ने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर निबंध लिखे।

रांगेय राघव ने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबंध लेखकों में इनका विशेष स्थान है।

डॉ. देवराज ने अपने निबंध का विषय साहित्य एवं संस्कृति को बनाया।

इलाचन्द्र जोशी का निबंध क्षेत्र व्यापक है। इन्होंने अनेक विषयों को निबंध के लिए चुना। इनके निबंधों के संग्रह 'साहित्य सर्जना', 'विवेचन', 'विश्लेषण', 'देखा–परखा' तथा 'महापुरुषों की प्रेम कथाएं' हैं। जोशी ने साहित्य, मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण से संबंधित विविध विषयों पर विवेचनात्मक एवं प्रभावोत्पादक शैली में निबंध लिखे।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने निबंध हेतु साहित्यिक विषयों का चयन किया। इनके निर्णयों का संग्रह त्रिशंकु है।

यशपाल– यशपाल ने कथा साहित्य की भांति निबंध साहित्य की अभिवृद्धि में भी असाधारण योगदान किया। इनके निबंधों के संग्रह 'देखा,सोचा, समझा', 'मार्क्सवाद', 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष, 'गांधीवाद की शव परीक्षा', तथा राज्य की कथा' आदि प्रमुख हैं। शैली में सरलता तथा विचारोत्तेजकता विद्यमान है। कहीं–कहीं इनकी शैली व्यंग्यात्मक हो गई है। व्यंग्य सामाजिक एवं तीखे हैं, उदाहरण द्रष्टव्य है –"कारतूसों की एक दुकान खोलो, जिसमें 'कलमाइड कारतूस' मुसलमानों के लिए और 'झटकाइड कारतूस' सिक्खों के लिए रहें। अच्छा मुनाफा रहेगा।"

गोपालप्रसाद व्यास के निबंधों में हास्य–विनोद तथा व्यंग्य की प्रधानता है। उनके निबंध संग्रह 'कुछ सच : कुछ झूठ' तथा मैंने कहा प्रमुख हैं। व्यास छोटी से छोटी बात को भी अत्यंत रोचक एवं साहित्यिक ढंग से प्रतिपादन करने में सिद्धस्त थे। उदाहरण के लिए स्नान घर में भैंस वास्तव में घुस गई या पत्नी के मोटपे पर व्यंग्य करने के

लिए कल्पना कर लिया और कल्पित भैंस को स्नानघर में घुसा ही नहीं दिया बल्कि अनूठा निबंध लिख डाला तथा यत्र–तत्र वे विभिन्न वर्गों के साहित्यकारों को भी भैंस के बहाने याद कर लेते हैं –"एक दिन बाबू जी की पत्नी गुसलखाने में स्नान कर रही थी, तो भैंस भी अपना अधिकार समझकर उसमें घुस पड़ी। संकरा दरवाजा, छोटी जगह। भैंस घुस तो गई, मगर अब निकले कैसे?. . .एकदम नई उलझन थी। प्रगतिशील भैंस के बढ़े हुए कदम प्रतिक्रियावादी होने को कतई तैयार न थे।"

प्रभाकर माचवे ने 'मुंह', गला, गाली, बिल्ली, मकान आदि साधारण विषयों का निबंध हेतु चयन करके अति रोचक निबंधों की रचना की है। उनके निबंध संग्रह नाम जो होता नहीं है, 'खरगोश की सींग'। शैली सरल, मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक है।

देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक संस्कृति एवं लोक गीतों की पृष्ठभूमि पर, विभिन्न विषयों पर, अनुभूति पूर्ण निबंधों की रचना की है। इनके निबंधों के अनेक संग्रह एक युग : एक प्रतीक, रेखाएं बोल उठीं, क्या गोरी क्या सांवरी, कला के हस्ताक्षर आदि हैं। इनके निबंध अति मनोहारी हैं जिनमें मन को आकर्षित करने की क्षमता विद्यमान है।

जयनाथ नलिन के निबंधों का संग्रह कला और चिंतन है जिसमें मौलिक निबंधों का संग्रह किया गया है।

डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' इंटरव्यू का हिंदीकरण अंतव्यू किया गया है। यदि इस शब्द में अंत्याक्षरागम के अनुसार अंतव्यू – अंतर्व्यूह कर लिया जाए तो चक्रव्यूह के आधर इस शब्द की सार्थकता में वृद्धि हो जाए। हिंदी साहित्य की निबंध परंपरा में अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है। एक नवीन शैली 'अंतर्व्यू शैली' है इसके प्रवर्तनका श्रेय डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' को है। इनके निबंध का संकलन 'मै इनसे मिला' (दो भाग) हैं। इन्होंने विभिन्न साहित्यकारों के लिए गए अंतर्व्यूह (साक्षात्कार) के आधार पर उनके व्यक्तित्व, दर्शन, साहित्य–सृजन के भिन्न पक्षों को अति कलात्मक शैली में प्रतिपादित किया है। अंतर्व्यूह के अतिरिक्त डॉ. कमलेश के अन्य अनेक निबंधों की रचना करके हिंदी निबंध साहित्य की अभिवृद्धि की है। इनके निबंधों में वैचारिक सरलता एवं स्पष्टता तथा शैलीगत सरसता विद्यमान है।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने जीवन एवं समाज को प्रेरित करने के लिए रोचक एवं प्रभावोत्पादक निबंधों की रचना की। प्रभाकर के निबंध संग्रह जिंदगी मुस्कराई, बाजे पायलिया के घुंघरू, दीप जले शंख बजे तथा क्षण बोले कण मुस्काए आदि उल्लेखनीय हैं।

रामनाथ सुमन ने सैकड़ों निबंध लिखे हैं।

जैनेन्द्र कुमार ने सांस्कृतिक, नैतिक, राजनीतिक चिंतन को अपनी विशिष्ट शैली में विश्लेषणात्मक निबंधों को प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों का संग्रह 'समय और हम है'।

डॉ. संपूर्णानंद के निबंधों में दार्शनिक विवेचन है किन्तु उसमें जटिलता नहीं है। ललित निबंधों में लालित्य पर अधिक बल दिया जाता है। यह निबंध की नई विधा नहीं है। लालित्य निबंध की विशिष्ट विशेषता है। वर्तमान में इसे प्रवृत्ति के आधार पर अलग विधा मान लिया गया है। निबंधकार अपने भावों, विचारों को सरस, अनुभूतिजन्य, आत्मीय एवं रोचकरूप में प्रस्तुतीकरण करता है।

ललित निबंधों को गंभीर विश्लेषण, ऊबाऊ वर्णन, जटिलता से बचाया जाता है। ललित निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। उनके निबंधों में मानवतावादी जीवन दर्शन एवं संवेदनशीलता दोनों दृष्टिगोचर होते हैं। निबंधों में पांडित्य के साथ नवीन चिंतन–दर्शन भी दिखलाई पड़ता है। विचार और वितर्क "अशोक के फूल" तथा कल्पलता आदि उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त ललित निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय तथा विवेकी राय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रमुख विद्वान हैं। लोक साहित्य, साहित्य और लोक संस्कृति में उनकी गहरी पैठ है। शैली भावपूर्ण एवं काव्यमय है। प्रमुख निबंध संग्रह 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', तुम चन्दन हम पानी, संचारिणी, लागो रंग हरी तथा तमाल के झरोखे से आदि हैं।

व्यंग्य निबंध– हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग में ही व्यंग्य का प्रारम्भ हो चुका था किन्तु स्वतंत्र्योत्तर युग में व्यंग्य निबंध के नए युग का सूत्रपात हुआ। इसका श्रेय हरिशंकर परसाई को है। उन्होंने व्यंग्य को एक स्वतन्त्र विधा बनाने का यत्न किया। वास्तव में व्यंग्य स्वतन्त्र विधा नहीं है। व्यंग्य निबंधों में निबंधकार समाज की समस्या विशेष पर निबंध लिखता है। व्यंग्य से पाठक में नवीन दृष्टि और सामाजिक जागरुकता पैदा करता है।

हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, बेढब बनारसी, तथा हरिश्चन्द्र वर्मा आदि प्रमुख हैं।

हिंदी निबंध साहित्य ने थोड़े से समय में ही पर्याप्त उन्नति कर ली है। भारतेंदु युग से आज तक निबंध साहित्य प्रौढ़त्तर होता जा रहा है। कुछ निबंधकार पाश्चात्य निबंधकारों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में भाषा एवं सौंदर्य की विहीनता का प्रतिपादन करते हैं। निबंध में अनुभूति मुख्य तत्व है। वर्तमानकाल में निबंध में अनुभूति शून्यता आती जा रही है। निबंधकार साहित्यिक समस्याओं तक अपने को संकुचित करता जा रहा है। अन्य परिवेशों को अपने निबंध का विषय बनाने में अपने को असफल पाता जा रहा है। प्रफुल्लता, ताजगी, रोचकता तथा व्यंग्यात्मकता से वर्तमान निबंध दूर होता जा रहा है। ये प्रवृत्तियां हिंदी निबंध कोश का द्योतन करती है। हिन्दी निबंध लेखकों का इस ओर विशेष ध्यान देना वर्तमान अनिवार्यता है।

6. संस्मरण परिचय, उद्‌भव एवं विकास

संस्मरण एक मनोहारी आत्म परक हिंदी गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है। वास्तव में संस्मरण किसी समर्थमान स्मृति का शब्दांकन है। संस्मरणकार अपने वैयक्तिक जीवन के संपर्क में आए हुए व्यक्तियों के विभिन्न स्वरूपों का अपनी स्मृत्यानुसार जो कथात्मक शैली में रेखांकन करता है वह संस्मरण कहलाता है। मानव जीवन में संपर्क में आने वाले व्यक्तियों की संख्या असीमित होती है जिसकी ओर सामान्य मनुष्य ध्यान नहीं देता है किन्तु संवेदनशील मानव संपर्क में आए उस विशिष्ट मनुष्य को भुला नहीं पाता जिसकी कुछ–न–कुछ अमिट छाप उस पर पड़ी होती है। वे यादें अंतस्तल में सोई रहती हैं जिनके सहारे संस्मरणकार उनका चरित्र–चित्रण स्वानुभूति के आधार पर शब्दों के माध्यम से करता है। अंतस्तल में सोई हुई छवि आकुलता–व्याकुलता के क्षण में जागृत हो शब्दायमान होकर संस्मरण का रूप धारण कर लेती है।

संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियों का विशेष महत्व है। संस्मरणकार अतीत की स्मृतियों के आधार पर जो कुछ देखता–सुनता या अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूतियों से राग रंजित करके उन्हें संस्मरण का साहित्यिक जामा पहना देता है। इस विषय में डॉ. आशा कुमारी का कहना है कि संस्मरणकार इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण मात्र नहीं देता अपितु अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमंडित करके प्रस्तुत कर देता है। इतिहासकार मात्र महत्वपूर्ण तथ्यों एवं घटनाओं को ही ग्रहण करता है जबकि संस्मरणकार सामान्य से सामान्य, छोटी से छोटी घटना को अपने संस्मरण का विषय बनाकर, अनुभूतियों से अभिषिक्त कर मनोरम, सरल, सरस शैली के द्वारा साहित्यिक रूप प्रदान कर संस्मरण का सृजन करता है। संस्मरण की वैयक्तिक भिन्नता के परिणाम स्वरूप प्रस्तुतीकरण में भी भिन्नता आ जाती है।

हिंदी संस्मरण विभाजन

भिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए संस्मरण को अनके वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. मानव परक

2. पशु–पक्षी परक

3. यात्रा विवरणात्मक

4. आत्मकथात्मक

5. जीवनीमूलक

6. डायरीनुमा

7. मूल्यांकनपरक

8. श्रद्धांजलि मूलक

1. मानव परक– संस्मरणकार के जीवन में अनेक व्यक्ति आते हैं किंतु विशिष्ट होते हैं वे जो अपनी अमिट छाप अपने किसी गुण से छोड़ जाते हैं। महादेवी की पेड़ के नीचे लगने वाली साप्ताहिक ग्रामीण पाठशाला का एक शिष्य घीसा है जो सफाई पसंद है। सबसे पहले आकर पेड़ के नीचे सफाई करता है। एक ही कुर्ता है जिसे धो लेता है तो न सूखने पर गीला ही पहन कर आ जाता है। अपने पिल्ले से इतना प्रेम करता है कि गुरु जी से मिली जलेबी उसके लिए ले जाता है। गुरुभक्ति इतनी प्रबल है कि गुरु जी जाते समय अपनी गरीबी में एक तरबूज गुरु दक्षिण में देता है। हिंदू मुसलमान के दंगे से भयभीत गुरु जी को न जाने के लिए आग्रह करता है। ऐसा चरित्र कभी भूल सकता है। महादेवी ने उसे अपने संस्मरण का विषय बनाकर अमर कर दिया है।

2. पशु–पक्षी परक– संस्मरणकार के जीवन संपर्क में मानव मात्र का ही आगमन नहीं होता है अपितु पशु–पक्षी जानवर आदि का मनुष्य से भी अधिक लगाव हो जाता है। महादेवी ने तोते के बच्चे को देखा जिसे कौवे मार रहे थे। बचा लिया और पिंजरे में पाल लिया जो सीता राम कहकर महादेवी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। यही स्थिति गिलहरी के बच्चे की थी जिसे कौवे मार रहे थे महादेवी ने बचाकर पाल लिया जो इनकी मेच पर, कुर्सी पर कभी आगे, कभी पीछे, कभी दायें, कभी बायें फुदकता रहता था कुछ खाने लगती तो वह अपना भाग पहले लेता था। उसका नामकरण कट्टो रखकर महादेवी ने जाति वाचक संज्ञा को व्यक्ति वाचक संज्ञा बना दी। सोना हिरणी भी ऐसी थी। महादेवी ने असंख्य पशुपक्षियों एवं जानवरों को जीवन दान ही नहीं दिया अपितु अपने संस्मरणों में उन्हें स्थान देकर उन्हें सदा के लिए अमर बना दिया।

3. यात्रा विवरणात्मक– संस्मरणकार यात्राएं करता रहता है। यात्रा में मानव, पशु–पक्षी, जीव जंतु, प्रकृति आदि अनेक से उसका संपर्क होता है। विशिष्ट विशेषता वाले को संस्मरण में स्थान देता है।

4. आत्मकथात्मक– संपूर्ण जीवन में अनेक तथ्य, घटनाएं एवं मनुष्य आते रहते हैं आत्मकथा लिखते समय उसमें से प्रबल शक्तिमान बिला बुलाए आ टपकता है उसके विषय में खट्टी मीठी यादें आ जाती हैं जिन्हें संस्मरण में शब्दांकित करता है।

5. जीवनी मूलक– जिस प्रकार संस्मरणकार के जीवन में आने वाले अनेक तथ्य या व्यक्ति होते हैं उसी प्रकार जिसकी जीवनी लिख रहे होते हैं उसके संपर्क में आने वालों का चित्रण जीवनी मूलक संस्मरण कहलाता है।

6. डायरी नुमा– प्रतिदिन की घटनाओं, घटनाओं से संबंधित पात्रों को दैनंदिनी में अंकित करते हैं। जिसका विशेष महत्व होता है वह संस्मरण का रूप लेकर व्यापार आधार फलक ग्रहण करता है।

7. मूल्यांकन परक– व्यक्ति, वस्तु, भाव या स्थान का मूल्यांकन करते समय उससे संबंधित विशिष्टता उभर कर सामने आ जाती है जो संस्मरण के रूप में विकसित हो जाती है।

8. श्रद्धांजलि मूलक– किसी की मृत्यु या मृत्यु दिवस पर शोक संवेदना प्रकट करने को श्रद्धांजलि कहते हैं। दिवंगत व्यक्ति गुणवान होता है तभी श्रद्धांजलि का अधिकारी होता है। उसके गुण विशेष या प्रेरणादायक तथ्यों का चित्रा भी उस समय उभरकर आ जाता है जिसे संस्मरण का रूप श्रद्धांजलि कर्ता की संवेदना दे देती है।

हिंदी संस्मरणों का विकास इन वर्गों के आधार न करके सामान्य रूप से कालक्रमानुसार करना उचित है।

हिंदी संस्मरण : उद्‌भव एवं विकास

हिंदी साहित्य में संस्मरणों का अभाव नहीं है। हिंदी संस्मरण के विकास में सरस्वती, सुधा, माधुरी, चांद तथा विशाल भारत आदि पत्रिकाओं का विशेष योगदान है।

प्रथम संस्करण– सन् 1907 ई. में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने पं. प्रतापनारायण मिश्र एक संस्मरण लिखा जिसे हिंदी का प्रथम संस्मरण स्वीकारा गया। कुछ आलोचकों का कहना है कि बाबू बालमुकुंद गुप्त प्रथम संस्मरण लेखक नहीं हैं अपितु प्रथम संस्मरण लेखक स्वामी सत्यदेव परिव्राजक या पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र आधुनिक काल के गद्य साहित्य के जन्म दाता कहे जाते हैं। जिन्होंने गद्य लेखन की अनेक विधाओं की भांति संस्मरण लेखन का भी कार्य किया। उनका कुछ आप बीती कुछ जग बीती सुंदर संस्मरण है। उपर्युक्त दो संस्मरणों का उल्लेख मात्र है। शीर्षक तक ज्ञात नहीं है। इसलिए कुछ आप बीती कुछ जग बीती को प्रथम संस्मरण एवं भारतेंदु हरिश्चन्द्र को प्रथम संस्करणकार मानना औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

विकास

हिन्दी साहित्य में वास्तविक संस्मरण लेखन कार्य द्विवेदी युग से प्रारंभ हुआ। द्विवेदी की प्रेरणा से सरस्वती में अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए। इन जीवन परिचयों या संस्मरणों में लेखक की आत्मानुभूति की प्रधानता रही है। उन्हें मात्र जीवन वृत्त नहीं कहा जा सकता है। इसलिए उन्हें जीवनी साहित्य न कहकर संस्मरण कहना उचित प्रतीत होता है ऐसा डॉ. गोविन्द तिगुणायत का कहना है। संस्मरण साहित्य को समृद्ध बनाने में अनेक संस्मरणकारों का योगदान मिला जिनमें प्रमुख संस्मरण लेखक निम्नलिखित हैं–

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक – हिंदी संस्मरण लेखकों में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का विशेष महत्व है। सन् 1905 ई. में उन्होंने अमेरिका की यात्रा की थी। यात्रा से संबंधित घटनाओं एवं संपर्क में आनेवालों का उन्होंने सजीव शब्दांकन किया है जो भाव एवं अनुभूति प्रधान है।

हेमचन्द्र जोशी संस्मरण में उन्होंने फ्रांस यात्रा का वर्णन किया। यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक अनुभव किए जिसे उन्होंने सरस एवं मनोरम शैली में प्रस्तुत किया। इसमें साहित्यिकता अधिक है। जोशी के संस्मरणों का संकलन 'फ्रांस यात्रा और संस्मरण' में किया गया है।

डॉ. पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' का संस्मरण लेखकों में विशेष स्थान है। इन्होंने अपने संस्मरणों का विषय साहित्यकारों को बनाया। शर्मा उग्र स्वभाव के थे जिसके परिणामस्वरूप उनके संस्मरणों में सरसता के साथ–साथ नोंक–झोंक के भी दर्शन होते हैं। महाकवि अकबर इलाहाबादी का संस्मरण अति रोचक एवं सरस शैली में प्रतिपादित किया है। जिसमें अकबर का जीवनवृत्त उभर कर सामने आ गया है तथा 'कमलेश' की विद्वता, सजीवता, त्वरित वाकपटुता ने भी साकार रूप ग्रहण कर लिया है। संस्मरण की भाषा सशक्त एवं भावाभिव्यंजन में सहयोगी सिद्ध हुई है।

पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी– संस्मरणकारों में श्रीनारायण चतुर्वेदी का विशेष स्थान है। इनके संस्मरणों का संकलन लखनऊ से देहरादून तक की यात्रा' में किया गया है। इसके अतिरिक्त मनोरंजक संस्मरण भी प्रकाशित हुआ। इनके संस्मरणों में हास्य–विनोद की प्रधानता है।

श्रीराम शर्मा– संस्मरण लेखकों में श्रीराम शर्मा उल्लेखनीय हैं। शर्मा शिकार के शौकीन थे। इसलिए इनके संस्मरणों में शिकार–संबंधित विषयों को अपनाया गया है। वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण संस्मरणों में यथार्थ को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संस्मरण रोचक भी हैं। इनकी प्रमुख कृति सन् बयालीस के संस्मरण है।

बनारसीदास चतुर्वेदी– संस्मरण के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति हैं। उन्होंने अनेक संस्मरण लिखकर हिन्दी संस्मरण साहित्य की संवृद्धि की है। अपने संस्मरणों में महापुरुषों को विषय रूप में ग्रहण करके सामाजिक वातावरण को सजीवता प्रदान की है। इनके प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के फलस्वरूप हिंदी में अनेक संस्मरण ग्रंथों का प्रकाशन हुआ।

महादेवी वर्मा के संस्मरण हिंदी संस्मरण साहित्य की अक्षय निधि हैं। उनके संस्मरणों का संग्रह अतीत के चलचित्र सन् (1941) ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित सभी संस्मरणों में मर्मस्पर्शिता एवं रागात्मक अनुभूति की प्रधानता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो महादेवी की ममता इन संस्करणों में आकर सजीव एवं साकार हो उठी है। स्मृति की रेखाएं एवं पथ के साथी में संकलित संस्मरणों में महादेवी की साहित्य कला का चरमोत्कर्ष एवं पराकाष्ठा देखी जा सकती है। महादेवी ने स्वतः कहा है– "इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधलीया उजली परिधि में ही लाकर देख पाते हैं।" महादेवी के संस्मरण उनके जीवन की विशिष्टताओं को अभिव्यंजित करने में पूर्ण समर्थ हैं। महादेवी मूलतः कवियित्री हैं, नारी हैं। इसलिए उनके संस्मरणों में कवि सुलभ एवं नारी सुलभ सभी विशेषताओं कोमलता, भावुकता, ममता, दया, त्याग, बलिदान एवं मधुरता आदि को स्वाभाविक रूप से स्थान मिल गया है। जिन्होंने संस्मरणको श्रेष्ठता प्रदान की है। महादेवी के संस्मरणों में सभी भाषिक गुण ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रोपमता भावाभिव्यंकता, सरलता तथा माधुर्य आदि विद्यमान हैं।

श्री निधि विद्यालंकार – नए संस्मरण लेखकों में विद्यालंकार का नाम अग्रगण्य है। इनका संस्मरण शिवालिक की घाटियों में प्रमुख है। जिसमें प्राकृतिक छटा वर्णित है। प्रकृति के सौंदर्य का संश्लिष्ट चित्रण अति मनोरम एवं आकर्षक बन गया है। चित्रात्मक भाषा इनकी प्रमुख विशेषता है।

राजेन्द्रलाल हांडा – हांडा आधुनिक संस्मरण लेखक हैं। इनके संस्मरणों का संकलन 'दिल्ली में बीस वर्ष' है।

राजा राधिकारमण सिंह – संस्मरण लेखकों में राजा राधिकारमण सिंह का नाम अति आदर से लिया जाता है। इनके संस्मरण अनेक संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके संस्मरणों में वर्णन–चित्रण की सापेक्षित शैली का प्रयोग किया गया है। इनके संस्मरणों में टूटा तारा, नारी क्या एक पहेली, सावनी सभा, सूरदास, हवेली की झोपड़ी, पूरब और पश्चिम, वे और हम, देव और दानव तथा जानी, सुनी–देखी भाली आदि प्रमुख हैं।

अयोध्याप्रसाद गोयलीय – गोयलीय के अनेक संस्मरण प्रकाशित हो चुके हैं। इनका प्रसिद्ध संस्मरण संग्रह जन जागरण के अग्रदूत हैं। इनके अधिकांश संस्मरणों में जीवनियां हैं। इनके अतिरिक्त शांतिप्रिय द्विवेदी, रामवृक्ष वेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, राहुल सांकृत्यायन, गुलाब राय, देवेन्द्र सत्यार्थी, इलाचन्द्र जोशी, सेठ गोविंद दास, राजेन्द्र यादव, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ. नगेन्द्र, भदंत आनंद कौसल्यायन, ओंकार शरद तथा विष्णु प्रभाकर आदि भी उल्लेखनीय संस्मरण लेखक हैं। जिन्होंने अपने उत्कृष्ट संस्मरणों से हिंदी संस्मरण साहित्य के भंडार में अभिवृद्धि की है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि 20वीं सताब्दी के अस्तित्व में आए संस्मरणों ने अपने अल्पकालीन जीवन में अत्यधिक विकसित रूप धारण करके उल्लेखनीय प्रगति का द्योतन किया है। आधुनिक प्रत्येक साहित्यकार संपर्क में आए हुए महान व्यक्ति से संबंधित विशिष्ट घटना को अपनी अनुभूतियों में पिरोकर, मनोरम, स्पष्ट, साहित्यिक भाषा

का जामा पहनाकर, अपने विचारों से संपृक्त करके रूपायित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। हिंदी संस्मरण साहित्य की प्रगति इस तथ्य को द्योतन करती है कि गद्य की अन्य विधाओं की भांति संस्मरण साहित्य का भविष्य अति उज्ज्वल है।

7. रेखाचित्र : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

हिंदी गद्य साहित्य की नवीनतम विधा रेखाचित्र है। इसके लिए शब्दस्केच, शब्दचित्र, व्यक्तिचित्र, तूलिकाचित्र या चरितलेख आदि शब्द युग्मों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें अंतिम चरित लेख भिन्न है। लेख निबंध का लघु रूप है। अर्थात् संक्षेप में किसी का चरित्र–चित्रण करना चाहिए लेख कहलाता है। रेखा चित्र शब्द युग्म का द्वितीय समस्त पद चित्र है। अन्य समासों में भी द्वितीय समस्त पद चित्र ही है चित्र को अलग कर देने से शब्द, शब्द, व्यक्ति, तूलिका ही बचते हैं। स्केच का अर्थ भी चित्र होता है। तूलिका चित्र बनाने का साधन है। शब्द अभिव्यक्ति का साधन है किंतु पेंसिल या पेन मात्र रेखाएं खींच कर चित्र उकेरते हैं। शब्दों के माध्यम से उकेरे गए चित्र को रेखाचित्र कहा जाता है। इसमें चित्र की पूर्णता न होकर अभिव्यक्तिकी पूर्णता होती है। इन सबमें हिंदी में रेखाचित्र ही सर्वग्राह्य है।

रेखाचित्र का आधार फलक यथार्थ है। रेखाचित्र किसी व्यक्ति का शब्द चित्र, किसी विशिष्ट व्यक्ति का संक्षिप्त विवरण, किसी विशिष्ट प्रवृत्ति या घटना का व्यंग्यात्मक चित्रण हो सकता है। रेखाचित्र गद्य की वह विधा है जिसमें चरित्र, दृश्य या घटना विशेष का मुख्य रूप से वर्णन किया गया हो।

डॉ. शिवदान सिंह चौहान का रेखाचित्र विषयक कथन द्रष्टव्य है– "किसी व्यक्ति के रेखाचित्र में यह विशेषता होगी कि उसके व्यक्तित्व ने जो विशेष मुद्राएं शारीरिक या अवयवों की बनावट में जो विकृतियां ऊपर को उभार दी हैं उनके आभास को चित्र में ज्यों का त्यों पकड़ा जाए ताकि लेखक की अनुभूति के साथउसके व्यक्तित्व की रेखाएं और भी सघन होकर दिखाई पड़ने लगें।"

डॉ. नगेन्द्र ऐसी किसी भी रचना को रेखाचित्र की संज्ञा देने के लिए उद्यत हैं जिसमें तथ्यों का उद्‌घाटन मात्र हो। उनके अनुसार तथ्यों का मात्र उद्‌घाटन रेखाचित्र है।

डॉ. विनय मोहन शर्मा के अनुसार –"व्यक्ति, घटना या दृश्य के अंकन को रेखाचित्र की संज्ञा दी जा सकती है।"

डॉ. भगीरथ मिश्र रेखाचित्र के लिए व्यक्ति का आलंबन ही स्वीकारते हैं, घटना या वातावरण का चित्रण उसकी सीमा के अंतर्गत नहीं आता।

उपर्युक्त परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कह सकते हैं कि रेखाचित्र वह शब्द चित्र है जिसमें व्यक्ति के आलंबन स्वरूप तथ्यों का अंकन किया जाता है। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने रेखाचित्र की विवेचना करते हुए लंबी परिभाषा दी है – "रेखाचित्र, चित्रकला और साहित्य के सुंदर सुहाग से उद्‌भूत एक अभिनव कला रूप है। रेखा चित्रकार साहित्यकार के साथ–साथ चित्रकार भी होता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलारूप स्पर्श से चित्रपटल पर अंकित विशृंखल रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को संवार कर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार मनः पटल पर विशृंखल रूप से बिखरी हुई शत–शत स्मृति रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग से रंजित करके जीते–जागते शब्द चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्द रेखाचित्र कहलाता है।"

हिंदी रेखाचित्र : उद्‌भव एवं विकास

रेखाचित्र की विषय वस्तु की संघटना देशानुरूप होती है। प्रवृत्यानुसार रेखाचित्र को भावात्मक, विचारात्मक, विवरणात्मक, वर्णनात्मक, प्रकृति सौंदर्यात्मक, घटनात्मक, वैयक्तिक, समस्यात्मक, प्रतीकात्मक, हास्य व्यंग्यात्मक, संस्मरणात्मक, आत्मकथात्मक, तथ्यात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनीतिक आदि अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

वास्तव में रेखाचित्र चरित्रात्मक ही होता है। यूनानी लेखक थियोफेस्टस ने 'कैरेक्टर्स' में विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों के रेखाचित्र प्रस्तुत किए थे। हिंदी में रेखा चित्रों का आर्विभाव बीसंवी सदी के तीसरे दशक में हुआ। रेखा बिन्दु की ओर जनमानस का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय सन् 1938 ई. में प्रकाशित हंस के रेखाचित्र विशेषांक को है। जिसमें पच्चीस रेखा चित्र संकलित हैं। मधुकर ने भी रेखाचित्र विशेषांक निकाले। इन रेखाचित्रों की विषय वस्तु साहित्यकार, पत्राकार, कवि, अध्यापक, कथाकार तथा लेखिकाएं हैं। ये इन रेखाचित्रों ने अपने–अपने क्षेत्र के लब्ध–प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही रेखाचित्र का विषय बनाया है। हिंदी के प्रारंभिक रेखाचित्रों पर अंग्रेजी तथा रूसी रेखा चित्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

हिंदी – प्रथम रेखाचित्र– हिंदी में रेखाचित्र सृजन का श्रेय पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' को है। इन्हें रेखाचित्र का जन्मदाता माना जाता है। इनके रेखाचित्रों का संकलन पद्‌म–पराग है जिसे हिंदी का प्रथम रेखाचित्र एवं पद्‌म सिंह शर्मा कमलेश को प्रथम रेखा चित्रकार माना जाता है। इन्होंने व्यक्ति चरित्रांकन में दक्षता प्रदर्शित की है। बनारसी दास चतुर्वेदी ने उनके अकबर पर लिखे गए रेखाचित्र को प्रथम रेखाचित्र माना है।

भारतेंदु युग–गद्य की प्रायः प्रत्येक विधा का प्रारंभ भारतेंदु युग में हुआ। रेखा चित्र की स्वतन्त्र स्थापना इस युग में नहीं हो पाई थी। किंतु भारतेंदु के चरित्र प्रधान निबंधों में रेखा चित्र दृष्टिगोचर होते हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र– स्वतंत्र रेखाचित्र नहीं लिखे।

प्रतापनारायण मिश्र – आत्माभिव्यंजनात्मक लेखों में रेखाचित्र के तत्व विद्यमान हैं।

बालमुकुंद गुप्त – दोनों की रचनाओं में रेखाचित्र के तत्व उपलब्ध होते हैं।

द्विवेदी युग – द्विवेदी युग में भी रेखाचित्र का स्वतन्त्र विधा के रूप में विकास नहीं हुआ था। मात्र कुछ लेखकों के चरित्र लेखन में रेखाचित्र का आभास मिलता है।

पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' – पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने इस युग में चरित्रांकन कला में दक्षता प्रदर्शित की। इनके रेखाचित्रों का संकलन 'पद्‌म पराग' है। कमलेश में कला का वह रूप नहीं पाया जाता है जो आज के रेखाचित्रों में उपलब्ध है फिर भी कमलेश के अनुगामी आधुनिक रेखाचित्रकार हैं। भाषा सर्वसाधारण की है जिसमें अरबी, फारसी, तत्सम तथा तद्‌भव शब्दों का मिश्रण पाठक को भावविभोर कर देता है। भाषा आडंबर विहीन आलंकारिक है। डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त का कथन द्रष्टव्य है – "आपके रेखा चित्रों की शैली में भी कुछ अपनी विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। उनमें एक ओर उर्दू का चुलबुलापन भाषा और प्रवाह मिलता है तो दूसरी ओर हिंदी के अनुरूप विषय की गंभीरता विचारों की मौलिकता और प्रतिपादन शैली की प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है।"

श्रीराम शर्मा – सन् 1936 ई. तक हिंदी रेखाचित्रों का प्रकाशन पत्र–पत्रिकाओं में ही होता था। क्योंकि रेखाचित्र की स्वतन्त्र विधा का विकास द्विवेदी युग एवं छायावाद युग के संधिकाल में हुआ। श्रीराम शर्मा का सर्वप्रथम रेखाचित्र संग्रह 'बोलती प्रतिमा' सन् 1927 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह पर रूसी लेखक तुर्गनेव के संग्रह जीवित समाधि का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। बोलती प्रतिमा हिंदी का बहुचर्चित रेखाचित्र संकलन है। इन

रेखाचित्रों में शर्मा ने ग्रामीण अंचल की समस्याओं, परिवेशों एवं श्रेष्ठताओं का सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा ने 'जंगल के जीव', प्राणों का सौदा तथा वो जीते कैसे आदि संकलन प्रकाशित किए।

बनारसी दास चतुर्वेदी – हिंदी रेखाचित्र विधा को समृद्ध बनाने में बनारसी दास का विशेष योगदान रहा है। सन् 1919 ई. में बनारसी दास का प्रथम रेखाचित्र औरंगजेब, मर्यादा में प्रकाशित हुआ। उनके प्रारंभिक रेखाचित्र हमारे साथी तथा प्रकृति के प्रांगण में नामक पुस्तकों में संगृहीत हैं। अपने जीवन में अनेक अनूठे रेखाचित्र हिंदी साहित्य को प्रदान किए। अधिकांश

पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके प्रसिद्ध संग्रह – प्रिंस क्रोपाटकिज, रेखाचित्र, सेतुबंध तथा रंगों की बोलती रेखाएं आदि हैं। चतुर्वेदी के अनेक रेखाचित्र पत्र–पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। जिन्हें संकलित करने की आवश्यकता है। रेखाचित्र इनका सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र संग्रह है। चतुर्वेदी की कला का पूर्ण परिचय उनके रेखाचित्रों से मिलता है जिनमें उन्होंने सामान्य व्यक्तियों को आधार स्वरूप ग्रहण करके जीवनव्यापिनी करुणा को मूर्तिमान किया है। इनमें एक सिपाही, संपादक की समाधि तथा अंधी चमारिन आदि आत्मचरित्रात्मक घटना प्रधान चित्र कहे जा सकते हैं। मूलतः इनके रेखाचित्र व्यक्ति प्रधान हैं। सरलता, रोचकता, तथा मनोरंजकता इनकी भाषा शैली की विशेषता है। उनके रेखाचित्र राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरी – हिंदी रेखाचित्र के साहित्य भंडार को समृद्ध करने वाले रामवृक्ष बेनीपुरी का अपूर्व योगदान है। बेनीपुरी का प्रतीकात्मक एवं रूपात्मक रेखाचित्र लिखने में विशेष महत्व है। इनकी भाषा में सारल्य, सरसता, अभिव्यक्ति कौशल, सहजता आदि गुण विद्यमान हैं जिसने इनके रेखाचित्रों को महत्वपूर्ण बना दिया। इनके रेखाचित्रों के संग्रह में लालतारा, माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब, तथा मील का पत्थर आदि उल्लेखनीय हैं। गेहूँ और गुलाब की भूमिका में उन्होंने लिखा है – "ये शब्द चित्र पहले शब्द चित्रों से भिन्न हैं – छोटे, चलते, जीवंत। मैंने कहा – हैंड कैमरा के स्नैप–शॉट, आलोचना ने उस दिन डांटा – हांथी दांत पर की तस्वीरें।" बेनी पुरी ने कला पर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना ध्यान विषय विविधता पर केंन्द्रित किया है। जिसके परिणाम स्वरूप उनके रेखाचित्र मुखर होकर भी प्रभावोत्पादक नहीं हैं। समाज की कुरूपता को छांट–छांट कर अपने रेखाचित्रों का विषय बनाया है। "तत्कालीन मानव समाज की सम्पूर्ण स्थितियां एवं विवशताएं उनके रेखाचित्रों में मूर्ति हो उठी हैं।" शोषण, वर्ग संघर्ष, सामाजिक अन्याय, असमानता, कृषकों की दयनीय अवस्था, जमींदारी प्रथा के दुष्परिणाम, भ्रष्टाचार, नवीन संस्कृति की आकांक्षा, क्रांतिकारी भावनाएं, ईश्वर धर्म पर व्यंग्य, छुआछूत, जाति–पाँति के उत्पन्न विषमताएँ आदि उनके रेखाचित्रों के विषय हैं।

डॉ. प्रभाकर माचवे ने बेनी पुरी के विषय में विचार करते हुए लिखा है –"बेनीपुरी जी की भाषा शैली में भावोद्रेक के साथ ही शब्दों और व्यंग्य खंडों का संयत गठत हुआ प्रयोग एक अनूठी व्यंजना का निर्माण करता है। वे कहीं कहीं अति भावुकता से शब्दों और विराम चिन्हों का अतिरंजित प्रयोग करते हैं।"

छायावाद युग

श्रीराम शर्मा – श्रीराम शर्मा के रेखाचित्रों का प्रकाशन छायावाद युग में हुआ। चित्रकार साहित्य के रचयिता के रूप में इनको ख्याति मिली किंतु व्यक्तियों के चित्रांतन की विशिष्टता के फलस्वरूप वे सफल रेखाचित्रकार के रूप में हिंदी जगत में प्रसिद्धि मिली। इनके रेखाचित्रों में मानव के साथ–साथ जंगली प्राणियों के जीवन का भी चित्रण किया गया है। इनके रेखा चित्रदीप स्तंभ के समान रेखा चित्रकारों का मार्ग–दर्शन करने में सक्षम एवं समर्थ हैं।

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' – महाकवि निराला के रेखाचित्र उच्चकोटि के हैं। उनके रेखाचित्रों में कला एवं भावना की प्रधानता है। उनके रेखाचित्रों में चतुरी चमारी, कुल्ली भाट तथा बिल्लेसुर बकरिहा आदि रेखाचित्र आदि प्रसिद्ध हैं।

महादेवी वर्मा – हिंदी रेखाचित्र लेखकों में महादेवी वर्मा सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र लेखिका हैं। उनके रेखाचित्रों को देखकर ऐसी प्रतीत होता है मानों साक्षात छाया चित्र का अवलोकन कर रहे हों। क्योंकि उनमें फोटो ग्राफी का सौंदर्य समाविष्ट है। महादेवी वर्मा के अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं, पथ के साथी तथा मेरा परिवार आदि महत्वपूर्ण रेखाचित्र संग्रह हैं। स्मृति की रेखाएं पथ के साथी तथा मेरा परिवार में विशेष रूप से उन्होंने अपने जीवन की उन अनेक कटु–मधुर, करुणा–विगलित स्मृतियों को संजो–संवार कर रखा है जिन्होंने उनके जीवन में एक स्थायी स्थान बना लिया है। महादेवी ने स्वयं स्वीकारा है कि इनमें उनका जीवन चित्रित है। अतीत के चलचित्र में निम्न वर्गीय पात्रों की वेदनाओं, अभावों, समस्याओं, संघर्षों, संकटों, शोषण की विविध स्थितियों तथा विशेषताओं का चित्रण किया है। अतीत के चलचित्र के संबंध में डॉ. राजमणि शर्मा का कथन अवलोकनीय है–"अतीत के चलचित्र' हिंदी की वह धाती है जो सन् 1930–1940 ई. के निम्न मध्यवर्गीय समाज की सच्ची झांकी सदैव संजोए रहेगी। इसमें मानव की आशा, आकांक्षा, निराशा है, कल्पना का ऐसा सजीव जगत है जो अपने वैविध्य में जगमगा कर हमारे समक्ष अपनी निधि खोल देता है।"

डॉ. ब्रजमोहन गुप्त ने उनके विषय में लिखा है –"लेखिका का निरीक्षण इतना सूक्ष्म है और संवेदना का रंग इतना गहरा और उज्ज्वल है कि स्मृति में जो रेखाएं मात्र थीं – कागज पर उतरकर उनसे करुणा और हास्य व्यंग्य के छाया–प्रकाश में हंसते खेलते उच्चतम मानवीय तत्वों से अनुप्राणित स्पंदनशील चित्रबन गए हैं।"इससे स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण प्रधान हैं। वास्तविकता यह है कि यह निर्णय करना कठिन है कि वे संस्मरण हैं या रेखाचित्र। क्योंकि उनका नामकरण भी ऐसा है अतीत के चलचित्र तथा स्मृति की रेखाएं। अतीत एवं स्मृति एक भाव के बोधक हैं तो चलचित्र संस्मरण तथा रेखाएं रेखाचित्र द्योतन करती हैं। वास्तव में दोनों का सुंदर समन्वय है।

छायावादोत्तर युग

यह युग रेखाचित्र का उत्कर्ष युग है। इस युग में सर्वाधिक रेखाचित्रकार हुए एवं रेखाचित्र लिखे गए। विषय की व्यापकता तथा रेखाचित्र की उत्कर्षता इसी युग में आई। लेखकों ने रेखाचित्र के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त– आधुनिक रेखाचित्र लेखकों में प्रकाशचन्द्र गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं।

इनके रेखाचित्र संग्रह में पुरानी स्मृतियां और नए स्केच तथा रेखाचित्र प्रमुख हैं। इनके रेखाचित्रों में मानवता की प्रेरणा को प्रमुखता दी गई है। वास्तव में गुप्त का यह प्रयत्न हिंदी रेखाचित्र साहित्य में सर्वप्रथम, मौलिक एवं सर्वथा नवीन है।

देवेन्द्र सत्यार्थी– भावात्मक रेखा चित्रकारों में देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने अति सजीव तथा भाव प्रवण रेखाचित्रों की रचना की है। रेखाएं बोल उठीं। तथा अन्य संग्रहों में संगृहीत रेखा चित्रों में उनका ध्यान विशेष रूप से भावों तथा तथ्यों पर केन्द्रित होता गया है। उनके रेखाएं 'बोल उठी' संग्रह में संगृहीत दादा–दादी के चित्र, चिर नूतन चित्र तथा अच्छे भले आदमी की बात आदि रेखाचित्रों में जहां तथ्य निरूपण का प्राचुर्य है वहीं रेखाएं बोल उठी, सौंदर्य बोध तथा आज मेरा जन्म दिन है में भावात्मकता की अधिकता विद्यमान है। रेखाचित्र प्रायः भावात्मक शैली में लिखे जाने के परिणामस्वरूप गद्यकाव्य जैसा सौंदर्य प्रस्तुत करते हैं। तथ्य निरूपक रेखाचित्रों में मार्मिकता का अभाव है।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर– वर्तमान हिंदी रेखा चित्रकारों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर उत्कृष्ट रेखाचित्रकार हैं। इनके रेखाचित्र संग्रहों में नई पीढ़ी के विचार, भूले हुए चेहरे, जिंदगी मुस्कुराई, माटी हो गई सोना, दीप जले शंख बजे, मंहके आंगन चहके द्वार तथा क्षण बोले कण मुस्काए आदि प्रमुख हैं। सभी संग्रहों में विशेषकर जिंदगी

मुस्कुराई में प्रभाकर ने जिस प्रकार अपने पात्रों के अंतस्तल का सूक्ष्म चित्रांकन कर उनके जीवन के प्रति सहृदय की भावना को अत्यधिक गहनता प्रदान कर दी है, वह सराहनीय है। इनका एक रेखाचित्र मंजर अली सोख्ता पर लिखा गया है जिसकी प्रशंसा बनारसीदास चतुर्वेदी ने खुले दिल से की है।

राहुल सांकृत्यायन– समस्याजनक रेखाचित्र लिखने वालों में राहुल का नाम अग्रणी है। राहुल किसी भी समस्या को लेकर उसका शब्द चित्र प्रस्तुत करने में सिद्धस्त हैं। उनका रेखाचित्र रूपी विशेष उल्लेखनीय है जिसमें वेश्यावृति की समस्या को उभारा गया है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं जो पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

हर्षदेव मालवीय – हिंदी में व्यंग्यात्मक रेखाचित्र लेखकों में हर्षदेव मालवीय को प्रसिद्धि मिली है। इनके पुराने तथा पोंगल गुरू रेखा–चित्रों को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है।

विनय मोहन शर्मा – इनके रेखाचित्रों का संग्रह 'रेखा और रंग है' है जिसमें चौदह रेखाचित्र संगृहीत हैं। इसमें पूसी बिल्ली से लेकर वृक्ष, चिड़िया, थर्ड क्लास तक के विषय हैं। व्यक्तियों में डबली बाबू, घर के नौकर, वकील साहब, जग्गू काका, कन्हैया, बदलू धोबी, बंसी, इला, मास्टर साहब तक उनका प्रसार है। विनय मोहन शर्मा पात्रों के बहिरंग पर ऐसी दृष्टि डालते हैं कि वे मूर्तिमान होकर पाठकों के समक्ष सजीव एवं साकार हो जाते हैं।

विष्णु प्रभाकर – आधुनिक रेखा चित्राकारों में विष्णु प्रभाकर की रचना प्रक्रिया द्वंद्वमयी होने के कारण व्यक्ति और वस्तु के बहिरंग तक ही सीमित नहीं रहती वरन भीतर और बाहर के द्वंद्व को उजागर करने का प्रयास करती है। वास्तव में प्रभाकर वातावरण और वस्तुओं के माध्यम से व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्घाटित करने में पारंगत हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'– अज्ञेय ने अनेक रेखाचित्रों की सृजना की है। उनका रेखाचित्र संग्रह एक बूंद सहसा उछली है जिसमें अनेक सुंदर रेखाचित्रों को संगृहीत किया गया है। अज्ञेय की दृष्टि इतनी पैनी और तीखी है कि वह दृश्य तथा अंतस्तल पर एक ही साथ जा पड़ती है। वे देश तथा दृश्य को एक नहीं मानते हैं उनकी विभिन्न अवस्थाएं मानकर अग्रसर होते रहते हैं। वे तो किसी भी स्थिति को प्रवाहमान धारा के रूप में देखने के अभ्यस्त हैं अतः दृश्य या व्यक्ति के माध्यम सेवे हमें कुछ दे जाते हैं जो अन्यों के लिए अजूबा बना रहता है।

अन्य रेखाचित्रकार – कुछ अन्य रेखा चित्रकारों ने भी इस विधा के विकास में पर्याप्त योगदान किया है जिनमें उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क, सुरेंद्रनाथ दीक्षित, महावीर अधिकारी, फणीश्वरनाथ रेणु, वृंदालाल शर्मा, प्रो. कपिल, पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी, हरिशंकर शर्मा, गुलाब राय, डॉ. नगेंद्र, अमृत लाल नागर, ओंकरा शरद, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. रामशंकर त्रिपाठी तथा डॉ. प्रेम नारायण टंडन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक काल में रेखाचित्र विधा का विकास ज्योति तुल्य है। विभिन्न परिवेशों को विषय रूप में ग्रहणकर रेखचित्र लिखे जा रहे हैं। इनके विकास में पत्र–पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान है। अभिनंदन ग्रंथों के रूप में भी रेखाचित्र विधा का व्यापक उत्कर्ष–उन्नयन, प्रचार–प्रसार हो रहा है।

8. जीवनी

भारतीय साहित्य में पाश्चात्य साहित्य जैसी जीवनी लिखने की परंपरा नहीं रही है। जीवनी के विषय में विचार विश्लेषण करते हुए अमृतराय ने लिखा कि यह अकाट्य सत्य है कि हमारे यहाँ जीवनियों का एक सिरे से अकाल है, जबकि यूरोप की जुबानों में यह चीज़ आसमान पर पहुँची हुई है, कोई बड़ा साहित्यकार नहीं है, कलाकार नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है, जननायक नहीं हैं, जिसकी कई–कई जीवनियां, एक से एक अच्छी न हों। भारतीय आत्म प्रकाशन के स्थान पर आत्मगोपन को महत्व देता है जबकि जीवनी साहित्यगोपन के स्थान पर प्रकाशन में विश्वास

करता है। कृष्णानंद गुप्त ने इस विषय में लिखा है–"हमारे देश के प्राचीन साहित्यकारों ने अपने विषय में कभी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी। यहाँ तक कि दूसरों के संबंध में भी वे सदा चुप रहे हैं। इसी से हमारे यहां आधुनिक युग में जिसे इतिहास कहते हैं वह नही है, जीवन चरित भी नहीं है और आत्मकथा नाम की चीज तो बिलकुल नहीं है।" भारतीय जीवन दृष्टि व्यष्टिमूलक न होकर समष्टिमूलक है। व्यक्तिवादी अपने को अन्यों के समक्ष रखने तथा अन्य के व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करने में विश्वास रखता है। जीवन में व्यष्टिवादी महत्व को प्रतिपादित करते हुए विश्वनाथ सिंह ने लिखा है–"जीवनी और आत्म कथा के लिए लौकिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त व्यष्टिमूलकता भी होनी चाहिए, जिसका अभाव लौकिक संस्कृत में भी रहा है। भारतीय मनीषियों की चेतना इस काल में भी समष्टिमूलक रही है। वे समष्टि में ही अपना व्यष्टि विलीनकर देने के पक्षपाती थे।" जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में जीवनी साहित्य का अभाव रहा है। हिंदी साहित्य के आरंभिक काल में जीवनी का प्रारंभिक रूप चरित काव्यों तक सीमित रहा है। मध्यकाल में संतों, भक्तों एवं महात्माओं के जीवन चरित लिखने की परंपरा प्रोत्साहित हुई। भक्ति कालीन कवियों की श्रद्धा भावना ने उनकी जीवनी लिखने की प्रेरणा दी। संतों के जीवन चरित को परचई, परिचय कहा गया। ऐसी परचईयों में कबीर जी की परचई, नामदेव जी की परचई, रैदास जी की परचई तथा मलूकदास जी की परचई आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् भक्तों के जीवन चरित्र संबंधी ग्रन्थों में नाभादास – 'भक्तमाल', गोकुलनाथ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अष्ट सरवान की अभिप्राय अष्ट छाप के कवियों से है। इन ग्रंथों का सृजन वैष्णव धर्म की वृद्धि एवं पुष्टि हेतु किया गया है इसलिए इनमें तथ्यों का अभाव होने के कारण इन्हें जीवनी ग्रंथ की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। वार्ता ग्रंथों के अतिरिक्त इस काल में आचार्य केशव दास – वीरसिंह चरित – सन् 1608 ई., जहांगीर–जस–चंद्रिका सन् 1621 ई.; सूदन – सुजान चरित तथा चंद्रशेखर – हम्मीर हठ – सन् 1845 ई. आदि चरित काव्य की परंपरा में आते हैं।

जीवनी विकास

आधुनिक काल में जीवनी साहित्य का प्रारंभ हुआ। भारतेंदु युग – गद्य की अन्य विधाओं की भाँति जीवनी साहित्य का श्रीगणेश भी भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में आते ही जीवनी ने प्राचीन रूप का परित्याग करके नवीन रूप धारण किया तथा जीवनी गद्य साहित्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठि तकिया। राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में जीवनी लेखन का अवसर प्रदान किया। अनेक जीवनियाँ प्रकाश में आई। जिनमें संत, महात्मा, राजा, विदेशी शासक, नेता, देशभक्त, क्रांतिकारी युवा तथा साहित्यकार का जीवन चरित प्रमुख रूप से उकेरा गया।

प्रथम जीवनी साहित्य – सर्वप्रथम जीवनी साहित्य भारतेंदु कृत 'चरितावली' है। उसके पश्चात् भारद्वाज हिंदी जीवनी साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन है। तथा प्रथम जीवन लेखक डॉ. भगवान शरण भारद्वाज हैं। इस ग्रंथ में भारतेंदु से स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तक लिखित सैकड़ों जीवनियों की सूची प्रस्तुत की गई है। साहित्यिक जीवनी कार्तिक प्रसाद खत्री द्वारा लिखित मीराबाई का जीवन चरित्र सन् 1893 ई. है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र – भारतेंदु हरिश्चन्द्र साहित्य की अन्य विधाओं के साथ जीवनी लेखन में अग्रगण्य रहे हैं उनके द्वारा लिखी जीवनी 'चरितावली' है। जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन चरित लिखे हैं। उसके पश्चात् पंच पवित्रात्मा – सन् 1884 ई. उल्लेखनीय हैं। इसमें मुस्लिम धर्माचार्यों – महात्मा मुहम्मद, मुहम्मद अली, बीवी फातिमा तथा इमाम हसन – इमाम हुसैन की संक्षिप्त जीवनियां लिखी हैं।

द्विवेदी युग – द्विवेदी युग में साहित्य की अन्य विधाओं के साथ जीवनी लेखन में डॉ.सम्पूर्णानन्द ने सम्राट अशोक की जीवनी, महादेव भट्‌ट – लाला लाजपतराय की जीवनी आदि में जीवन के प्रमुख रूपों को उकेरा गया है।

छायावाद युग – छायावाद युग में जीवनी साहित्य का विकास होने लगा। धार्मिक, सामजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के कर्मठ कार्यकर्ताओं की जीवनियाँ लिखी जाने लगीं जो प्रेरणा तथा उत्साहवर्धक प्रमाणित हुईं। ऐसी जीवनियों में प्रमुख जीवनियाँ निम्नलिखित हैं –

स्वामी सत्यानंद – श्रीमद् दयानंद प्रकाश – सन् 1918 ई

शिवनारायण टंडन – पंडित जवाहर लाल नेहरू –सन् 1937 ई

जगतपति चतुर्वेदी – लाला लाजपत राय – सन् 1933 ई

श्री ब्रजेंद्र शंकर – सुभाष चन्द्र बोस–सन् 1938 ई

मंमथ नाथ गुप्त – चन्द्र शेखर आजाद – सन् 1938 ई

रामनाथ लाल 'सुमन' – मोतीलाल नेहरू – सन् 1939 ई.

घनश्याम दास बिड़ला – बापू – सन् 1940 ई

कार्तिक प्रसाद खत्री – जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि साहित्यिक जीवनी लेखकों में कार्तिक प्रसाद खत्री प्रथम जीवनी लेखक तथा इनके द्वारा लिखित मीराबाई का जीवन चरित्र– सन् 1893 ई प्रथम जीवनी है। ये सफल जीवनी लेखक थे। जीवनी लेखन में इनका पदार्पण जीवनी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

शिवनंदन सहाय – शिवनंदन सहाय ने 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' लिखा। इस जीवनी में भारतेंदु के जीवन की पूर्णता दृष्टिगोचर होती है। इसकी भाषा की सरसता एवं रोचकता ने इसे सफल जीवनी साहित्य का रूप प्रदान किया। शिवनंदन सहाय द्वारा लिखित दूसरी जीवनी गोस्वामी तुलसीदास सन् 1916 ई. है। यह जीवनी दो खंडों में विभक्त है। बनारसी दास चतुर्वेदी – बनारसी दास चतुर्वेदी ने कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी सन् 1926 ई. लिखी है। यह जीवनी उल्लेखनीय है। इसका महत्व इसलिए और अधिक है क्योंकि इसमें एक साधारण व्यक्ति का जीवन चरित मानवीय रूप में प्रस्तुत किया गया है।

छायावादोत्तर युग

श्रीमती शिवरानी देवी – प्रेमचन्द का स्वर्गवास छायावाद युग में ही हो गया था। शिवरानी देवी छायावादोत्तर युग की लेखिका हैं। इन्होंने प्रेमचन्द घर में सन् 1944 ई. में प्रकाशित हुई। जिसमें प्रेमचन्द का जीवन चरित वर्णित है। यह महत्वपूर्ण जीवनी है। इसकी शैली संस्मरणात्मक, भाषा सरल, सहज एवं मनोरम है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी जीवनी लेखन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। इसलिए इसे हिंदी जीवनी लेखन का चरमोत्कर्ष काल कहा जाता है। इस समय विश्वव्यापी वैज्ञानिक प्रगति हुई। मानव भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण नैतिक मूल्यों का ह्रास होने लगा। राष्ट्र के प्रति मानव का मोहभंग यातनापूर्ण प्रतिक्रियाओं को जन्म देने लगा। मानव जीवन का कठोर यथार्थता से परिचय होने लगा जिसके परिणामस्वरूप युग के परिवेश में मानव–जीवन पढ़ा जाने लगा तथा वस्तुपरक कलात्मक अभिव्यक्ति का जन्म हुआ। फलस्वरूप जीवनी लेखन कला का महत्व बढ़ने लगा तथा कला की दृष्टि से इस युग की जीवनियां अद्वितीय रूप ग्रहण कर गई।

इस युग में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक नेताओं, राष्ट्रीय क्रांतिकारियों तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की अनेक जीवनियां लिखी गई हैं।

आध्यात्मिक जीवनियां

पंडित ललिताप्रसाद – इन्होंने धार्मिक सामाजिक संत–महात्माओं की जीवनियां लिखी हैं जिनमें सन् 1947 ई. में श्री हरि बाबा की जीवनी प्रमुख है। रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर – रंगनाथराम चंद्र ने श्री अरविंद की जीवनी महायोगी लिखी।

राजनीतिक जीवनियां

महापंडित राहुल सांकृत्यायन – राजनीतिक महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर जीवनियाँ लिखने वालों में सांकृत्यायन का नाम सर्वोपरि है। इन्होंने साम्यवादी विचारकों को अपनी जीवनी लेखन के विषय के रूप में चयन किया। सन् 1953 ई में स्तालिन, सन् 1954 ई. में कार्ल मार्क्स एवं लेनिन तथा सन् 1956 ई. में माओत्से तुंग की जीवनियां लिखीं। सांकृत्यायन द्वारा लिखित इन जीवनियों में राजनेताओं के बाह्ययांतरिक जीवन का सूक्ष्म स्थूल, विवेचन – विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपितु उनके मार्क्सवादी जीवन–दर्शन का ही प्रतिपादन किया गया है। राहुल की निष्ठा मार्क्सवाद में थी इसलिए उन्होंने स्वनिष्ठानुसार लोगों में साम्यवादी निष्ठा जागृत करने के लिए ये जीवनियाँ लिखी हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरी – रामवृक्ष बेनीपुरी ने राजनीतिक नेताओं को जीवनियों का आधार बनाया है। इन्होंने कार्ल मार्क्स तथा जयप्रकाश नारायण नामक जीवनियां लिखीं जिनका विशेष महत्व है। इन जीवनियों में बेनी पुरी ने अपना हृदय रस उड़ेल दिया है। जिससे उनके चरित नायकों का जीवन उभर कर सामने आया है।

साठोत्तरी युग–

सन् 1960 ई. के बाद के काल में साठोत्तरी युग कहा गया है। स्वतन्त्रता के लगभग 12–13 वर्षों के पश्चात् जीवनी लेखन में नया मोड़ आया। जीवन धारा में परिवर्तन आया। देश विकास की ओर अग्रसर हुआ। नैतिक मूल्यों में बदलाव आया। आध्यात्मिकता का स्थान भौतिकता ने ले लिया। ओंकार शरद – ओंकार शरद ने प्रसिद्ध समाज सेवी नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया को जीवनी लेखन का विषय चुना। सन् 1971 ई. में लोहिया एवं स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी की जीवनी' धरती की बेटी आकाश हो गई लिखी। डॉ चन्द्र शेखर – डॉ. चन्द्र शेखर ने सन् 1985 ई. में स्व. राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह की जीवन यात्रा लिखी। राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखित जीवनियों के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्रता से पूर्व राजनीतिक व्यक्तियों की जीवनियों के लेखन में उनके लेखक अपने चरित नायकों के राजनीतिक क्रिया कलापों के उल्लेख को अपनी उपलब्धि स्वीकारते थे इसलिए उनके मानवीय पक्षों की उपेक्षा की है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवनी लेखकों की विचारधारा में महान परिवर्तन आया है उन्होंने अपने चरित नायकों के अंतर्बाह्य गुणों को भी उभारा है जो उनका प्रशंसनीय कार्य है।

क्रांतिकारी जीवनियां

राजनीतिक नेताओं के अतिरिक्त जीवनी–लेखकों का ध्यान क्रांतिकारियों की ओर भी गया है। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारियों की जीवनियां लिखी गई जिनमें –

विश्वनाथ राय वैशंपायन – अमर शहीद चंद्रशेखर – सन् 1965 ई.।

प्रो. वीरेंद्र सिंधु– युग दृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे – सन 1968 ई.

धर्मवीर – लाला हर दयाल – सन् 1970 ई.

मन्मथनाथ गुप्त – क्रांतिदूत भगत सिंह और उनका युग – स. 1962।

साहित्यिक जीवनियाँ – जीवनियाँ तो सभी साहित्यिक गुणों से संतृप्त होकर साहित्यिक होती हैं किंतु इनमें साहित्यकारों के जीवन एवं उनकी कृतियों को जीवनी का विषय बनाया गया है जिनमें प्रमुख जीवनियां निम्नलिखित हैं–

ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ – बरुआ सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं। इन्होंने जीवनी लिखी है –

माखनलाल चतुर्वेदी – सन् 1960 ई

अमृतराय – प्रेमचन्द कलम के सिपाही – सन् 1962 ई.।

डॉ.रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना – (प्रथम खंड जीवन चरित) –सन् 1969ई. विष्णु प्रभाकर – शरत् चन्द्र की जीवनी – आवारा मसीहा सन् 1968 ई.।

हिंदी जीवनी के विकासक्रम विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी जीवनी लेखक का प्रारंभिक हिंदी साहित्य के प्रारंभिककाल से ही हो गया था किंतु रीति काल तक उनमें साहित्यिक रूप नहीं आ पाया था। माध्यम गद्य न होकर पद्य था। इसलिए उनको जीवनी की संज्ञा नहीं दे सकते। भारतेंदु युग से जीवनी का वास्तविक प्रारंभ माना जाना चाहिए। आधुनिक काल जीवनी लेखन का उत्कर्ष युग माना जाता है। इस काल में नेता, शासक, देशभक्त, क्रांतिकारी, तथा साहित्यकारों की जीवनियां लिखी गई। जीवनी लेखन के तत्वों तथा मानदण्डों के अनुसार अनेक श्रेष्ठ जीवनियां सामने आई। वर्तमान समय में हिंदी का जीवनी – साहित्य जीवनी लेखन की कला तथा मानदंड के अनुसार अत्यधिक समृद्ध हो गया है जिसमें गुणात्मकता एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से प्रगति दृष्टिगोचर हो रही है। जीवनी लेखन का भविष्य उज्ज्वल है आज यह युग की मांग है। यह युग की मांग है।

उपसंहार – जीवन–साहित्य का विकास पर्याप्त मात्रा में हुआ है, यहां तो कतिपय लेखकों का उल्लेख ही संभव हो सका है। साथ ही अभिनंदन ग्रंथों की परंपरा ने भी जीवनी–साहित्य को पुष्ट किया है। यह विधा अतीत से हमें जोड़े रखती है, अतीत की श्रेष्ठताओं से हमारा परिचय कराती है। डॉ. प्रेम मनारायण टंडन द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्यकार कोश' भी महत्वपूर्ण है। इसमें संक्षेप में ही सही साहित्यकारों पर सामग्री तो हैं; रामनाथ सुमन ने भी 'हिंदी के दिवंगत साहित्यकार' शीर्षक में पर्याप्त सामग्री बटोरी है।

जीवन–साहित्य पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि जीवन–चरित्र को जिस श्रेष्ठ साहित्यिकता के साथ उजागर करना चाहिए वैसा संभव नहीं हो सका है। इस दृष्टि से कतिपय जीवनियां अवश्य अति श्रेष्ठ बन पड़ी है।। निराला की 'साहित्य–साधना' और 'आवारा मसीहा' को इनमें गिना जा सकता हैं

9. आत्मकथा : परिचय, उद्‌भव एवं विकास

साहित्य में ऐसी पुस्तक जिसमें किसी व्यक्ति ने अपने जीवन की सभी मुख्य–मुख्य बातों का वर्णन किया हो। इसे आत्मचरित भी कहते हैं। इसका अंग्रेजी पर्याय ऑटोबायोग्राफी है। कोई भी व्यक्ति आत्मकथा अपने जीवन के उत्तरार्द्ध के अंतिम भागमें लिखता है। उस समय जीवन की संपूर्ण घटनाएं यथा तथ्य उसके समक्ष नहीं होती हैं। उनको संस्मरणों के सहारे स्मृति पटलपर अंकित करके आत्मकथा का सृजन करता है। इसलिए आत्मकथा को हिंदी गद्य साहित्य की एक संस्मरणात्मक विधा कहागया है। संस्मरणात्मक होने पर भी यह संस्मरण नहीं है उससे भिन्न विधा है। हिंदी साहित्य की आधुनिक नवीन विधाओं में आत्मकथा गद्य की प्रमुख विधा है। हिंदी में आत्मकथा लेखन की परंपरा अन्य भाषाओं की अपेक्षा अत्यल्प है। तात्विक विवेचन एवं यथार्थ की प्रधानता के अनुसार अन्य विधाओं से अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक विधा है। स्वयं अपने अतीत जीवन का व्यवस्थित क्रमिक वर्णन आत्मकथा को जन्म देता है। आत्मकथा का शाब्दिक अर्थ 'अपनी कहानी' होता है। आत्मकथा ऐसी जीवन कथा है जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है जिसके जीवन वृत का वर्णन अभीष्ट होता है। इसे आत्मचरित या आत्मचरित्र भी कहा जा सकता

है। इसमें लेखक अपने गुण दोषों तथा घटनाओं–दुर्घटनाओं का वर्णन निष्पक्ष भाव से करता है। वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का सुख–दुखात्मक कैसी भी हों यथार्थ रूप में वर्णन करता है।

आत्मकथा 'स्व' के प्रकटीकरण का माध्यम है। व्यक्ति समाज में अपने को प्रकट करने के लिए प्रतिपल छटपटाता रहता है। वह किसी न किसी रूप में अपने को प्रकट करना चाहता है। इसी व्यग्रता को दूर करने के लिए वह आत्मकथा लिख कर संतोष पाता है, इसलिए आज आत्मकथा लेखन में समृद्धि हो रही है। आत्मकथा एक सामासिक पद है जिसका विग्रह है– आत्मन्+कथा। आत्मन् शब्द संस्कृत का है, जिसका हिन्दी अर्थ होगा आत्मा का अर्थात् स्वयं का, अपना या निज का। कथा का अर्थ है कहानी। इस प्रकार आत्मकथा की शाब्दिक व्याख्या होगी अपनी अथवा स्व की कहानी। लेखक द्वारा अपने जीवन पर लिखा गया एक सत्य है आत्मकथा। जिसमें वह अपने जीवन का ब्यौरा सिलसिलेवार प्रस्तुत करता है। संस्कृत आचार्यों के अनुसार "आत्मनः विषये कथ्यते यस्यां सा आत्मकथा" अर्थात् जहाँ अपने ही विषय में बात की जाए, वही आत्मकथा है।

आत्मकथा स्त्रीलिंग शब्द है। आत्मकथा को अन्य नामों से भी जाना जाता है। आत्मनिवेदन, आत्मकहानी, आत्मचरित, अपनी रामकहानी, आत्मजीवनी, आत्मगाथा, आत्मवृत्तांत, आपबीती, अपनीबात, अपनी खबर, स्मृतियों के आइने में, मेरी जीवन स्मृतियाँ, जीवन कथा, जीवन कहानी, जीवन चरित्र आदि विविध नामों से विभूषित किया है, लेकिन कुल मिलाकर ये सब आत्मकथा ही हैं। आत्मकथा के लिए अंग्रेजी में 'ऑटोबायोग्राफी' (Autobiography) शब्द प्रचलित है। लेखक जब स्वयं अपने जीवन का क्रमिक ब्यौरा पेश करता है तो उसे 'आत्मकथा' कहते हैं।

पाश्चात्य विचारक डॉ. ई.एस.बेटरा के अनुसार, "आत्मचरित की भांति अनोखा, अद्‌भुत तथा चमत्कारयुक्त संग्रहालय अन्य कोई साहित्य का रूप नहीं है।

डॉ. गोविंद त्रिगुणापत "आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सफलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्‌घाटन में समर्थ होता है।

डॉ.कमलेश सिंह के अनुसार ''आत्मकथा एक ऐसा गवाक्ष है कि जिसके द्वारा पाठक आत्मकथा लेखक के निजी जीवन में ताक-झांक करने के लिए प्रेरित होता है, यह जानने के लिए कि उसका वैयक्तिक जीवन कैसा था? वह अपने सामाजिक जीवन से कितना भिन्न था? उसके जीवन के उत्थान-पतन के विशिष्ट कारण क्या थे? उसके जीवन में ऐसे कौन से तत्त्व है, जिन्हें अपनाकर तथा उसके पदचिह्नों का अनुसरण करके पाठक अपने जीवन को सफलता की ओर मोड़ सकता है।''

हंस के आत्मकथांक की 'हंस□वाणी' में कृष्णानंद गुप्त ने आत्मकथा के संदर्भ में कहा है कि ''व्यक्तित्व को प्रकट करने की लालसा ने जहाँ उपन्यास, नाटक प्रबंध, कहानी अथवा गीति काव्य को जन्म दिया है, वहीं आत्मकथा जैसी वस्तु की वही जननी है। अपने को व्यक्त करने की गुंजाइश उपन्यास, नाटक में कम है। वह गुण कविता में कुछ ज्यादा है परन्तु आत्मकथा द्वारा हम सही या गलत अपने को ही व्यक्त करते हैं।''

प्रथम आत्मकथा हिंदी आत्मकथा का साहित्य लगभग 400 वर्ष पुराना है। प्राचीनतम आत्म कथा 'बनारसी दास जैन' द्वारा लिखी गई। सन् 1641 ई. की रचना 'अर्द्धकथा' है। इसके विषय में संपादक का कथन द्रष्टव्य है।"कदाचित समस्त आधुनिक भारतीय साहित्य में इससे पूर्व कोई आत्मकथा नहीं है।" डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने भी आत्मकथा लेखन का प्रारंभ यहीं से माना है। उनका कथन उल्लेखनीय है–'आत्मकथा लिखने वालों में जिस निरपेक्ष एवं तटस्थ दृष्टि की आवश्यकता होती है। वह निश्चय ही बनारसी दास में थी। उसने अपने सारे गुण दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्मकथा पद्य में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकालमें किसी अन्य

आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता।" इस आत्मकथा में अकबर के समय के परिवेशों का यथार्थ चित्रांकन हुआ है। पद्यबद्ध होने कारण इसे प्रथम आत्मकथा श्रेय नहीं दिया जा सकता है। उसके बाद कुछ दिनों तक आत्मकथा नहीं लिखी गई है।

गद्य की अन्य विधाओं की भांति आत्मकथा का आरम्भ भी भारतेंदु युग से माना जाता है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' आत्मकथा को ही कुछ विद्वानों ने हिंदी की प्रथम आत्मकथा माना हैं।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिशचंद्र बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। अधिकांश विद्वानों ने प्रथम आत्मकथा लेखन का श्रेय भारतेंदु हरिशचन्द्र को दिया गया है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित आत्मकथा 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' में उनकी युवावस्था की रोचक काव्यात्मक घटनाएं प्रस्तुत की गई हैं किन्तु यह आत्मकथा पूर्ण नहीं अपूर्ण है। पंडित अंबिकादत्त व्यास – व्यास हरिश्चन्द्र के समकालीन आत्मकथा लेखक थे। इन्होंने 'निजवृत्तांत' नामक आत्मकथा लिखी है। इसके पश्चात् आत्मकथा लेखक निम्नलिखित हैं–

सत्यानंद अग्निहोत्री – मुझमें देव जीवन का विकास।

स्वामी श्रद्धा नंद – कल्याण पथ का पथिक – आदि इस युग की आत्मकथाओं की भाषा शिथिल है किंतु तथ्य परक स्पष्टता अति उत्कृष्ट है।

द्विवेदी युग– द्विवेदी युग के प्रथम एवं प्रमुख साहित्यकार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी है। इन्हानें 'सरस्वती' में अपनी ''अधरी कहानी' प्रकाशित करवाई। महावीर प्रसाद द्विवेदी – अधूरी कहानी, पं. देवी दत्त शुक्ल , पदुम लाल पुन्नामल बख्शी, श्यामसुंदर दास – इनकी आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई। इसके विषय में हरदयाल का कथन अवलोकनीय है –"श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्म कहानी' सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई। यह बड़ी सुगठित और समृद्ध आत्मकथा है इसमें साहित्यिक शैली में बाबू श्यानसुंदर दास ने अपने जीवन के साथ–साथ उस समय के साहित्यिक इतिहास को प्रस्तुत किया है।"

जयशंकर प्रसाद – पद्यमय आत्मकथा लिखी।

मुंशी प्रेमचंद – मेरी कहानी।

वियोगी हरि – मेरा जीवन प्रवाह भावात्मक शैली।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद – आत्मकथा – राजनीतिक।

भाई परमानंद – आपबीती।

रामविलास शुक्ल – मैं क्रांतिकारी कैसे बना।

वास्तव में सभी आत्मकथाएं मात्र लेखकों के जीवन वृत का ही द्योतन नहीं करती हैं अपितु इनमें समसामयिक परिवेश सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदि का चित्रण किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

इस युग तक आते आते आत्मकथा बहुमुखी हो गई। स्वाधीन भारत की चिंतन प्रणाली में परिवर्तन आ गया। इस युग की प्रथम आत्मकथा' सिंहावलोकन' यशपाल ने लिखी। इसमें क्रांतिकारियों की आत्मकथा की मार्मिकता का विशेष उल्लेख मिलता है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने बीस वर्षों की कथा को निष्पक्ष किंतु कलात्मक ढंग से प्रतिपादित किया।

सेठ गोविंद दास – आत्म निरीक्षण (तीन भाग)।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री – मेरी आत्म कहानी।

वृंदावन लाल शर्मा– अपनी कहानी।

डॉ. हरिवंश राय बच्चन – इधर एक दशक में सबसे महत्वपूर्ण आत्मकथा डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने चार खंडों में प्रकाशित की है।

1. क्या भूलूं क्या याद करूं।

2. नीड़ का निर्माण फिर।

3. बसेरे से दूर और

4. दश द्वार से सोपान तक।

बच्चन ने इन्हें स्मृति यात्रा–यज्ञ नाम दिया है। इनके विषय में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन उल्लेखनीय है –"इसमें उनका प्रारंभिक जीवन – संघर्ष, इलाहाबाद विश्व विद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर के अनेक संदर्भ, केंब्रिज विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, केंब्रिज से डाक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनकी उपेक्षा, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार का असुरक्षित अनुभव करना, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिंदी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में ऑफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिंदी) के रूप में राजनयिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए किए गए उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहां से अवकाश लेने के बाद उनका जीवन अनुभव एक वृहत उपन्यास की रोचक शैली में जीवंत और साकार हो उठा है। इस स्मृति यात्रा यज्ञ में प्रकारांतर से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का हिंदी भाषा और साहित्य का पूरा संघर्ष ही मूर्त हो गया है। इस आत्मकथा में संस्मरण, यात्रावृत, कविता, साक्षात्कार, नैरेशन आदि अनेक विधाएं और शैलियां गुंफित हैं। सबसे बड़ी बात है – लेखक के आत्म स्वीकार का साहस। "डॉ. बच्चन की आत्मकथा के विषय में धर्मवीर भारती ने लिखा है – "हिंदी में अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस और सद्भावना से कह देना यह पहली बार हुआ है।"

डॉ. देवराज उपाध्याय – यौवन के द्वार पर

राजकमल चौधरी – भैरवी तंत्र।

साठोत्तरी युग

डॉ. रामविलास शर्मा –'घर की बात' आत्मकथा रामविलास शर्मा की विस्तृत आत्मकथा है जिसके विषय में स्वयं डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है –"घर की बात में वैज्ञानिक विवेचन कम, मानवीय संबंधों का चित्रण अधिक है। . . . इसमें कई पीढ़ियों के लेखक और वार्ताकार सम्मिलित हैं।"

शिवपूजन सहाय– 'मेरा जीवन' आत्मकथा में शिवपूजन सहाय के वैयक्तिक जीवन उभर कर सामने आया है साथ–साथ अनेक साहित्यकारों, साहित्यिक घटनाओं तथा विभिन्न संदर्भों का प्रामाणिक दस्तावेज भी पाठक के समक्ष उपस्थित हो गया है।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर – तपती पगडंडियों पर पदयात्रा में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के तेजस्वी, सैद्धांतिक तथा कर्तव्यपरायण व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

फणीश्वरनाथ रेणु – फणीश्वरनाथ रेणु की आत्मकथा आत्मपरिचय शैली में लिखी गई है जिसमें उन्होंने अपने जीवन तथा रचना संघर्ष को अति स्वाभाविक ढंग से वर्णित किया है।

डॉ.नगेन्द्र – डॉ. नगेंद्र की आत्मकथा 'अर्धकथा' है जिसमें उनके जीवन का अर्धसत्य अभिव्यक्ति पर पा सका है। डॉ. नगेंद्र ने स्वयं लिखा है –"यह मेरे जीवन का केवल अर्ध सत्य है – अर्थात् उपर्युक्त तीन खंडों में मैने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण दिया है।... जहां तक अंतरंग जीवन का प्रश्न है, वह नितांत मेरा अपना है – आपको उसका सहभागी बनाने की उदारता मुझमें नहीं है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. नग्रेंद्र ने अपनी आत्म कथा 'अर्धकथा' में वास्तव में आधे अधूरे सत्य को ही उद्घाटित किया है जीवन की गोपनीयता या रहस्य का उद्घाटन नहीं किया है उसके विषय में चुप्पी साध ली है।

अमृतलाल नागर – अमृतलाल नागर की आत्मकथा 'टुकड़े–टुकड़े दास्तान' है। आत्मकथा की भूमिका में उन्होंने कहा है– "मैं पत्थर पर अकेरी गई ऐसी मूर्ति हूं जो कहीं कहीं छूट गई हो। "वास्तव में इसमें कथा रस लबालब भरा है। इस आत्मकथा को आधुनिक जागरण का जीवंत इतिहास कहा जाए तो अत्युक्तिन होगी।

रामदरश मिश्र – रामदरश मिश्र की आत्मकथा 'सहचर' है समय के नाम से प्रकाशित हुई हैं।यह चार भागों –1. जहां मैंखड़ा हूं, 2. रोशनी की पगडंडियां, 3. टूटते बनते दिन तथा 4. उत्तर पथ में लिखी गई है। इसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण परिस्थितियों से बाहर निकलकर, संघर्षरत अपने मार्ग का अनुसंधान करता हुआ, लक्ष्य की खोज में मग्न साहित्यकार

सांसारिक अनुभव को अपनी व्यापकता में समेटे हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो आधा भारत ही उसमें सिमट कर सजीव हो उठा है। डॉ. रामदरश मिश्र की आत्मकथा 'सहचर' है समय के विषय में डॉ. रामचंद्र तिवारी ने लिखा है "इसमें रामदरश मिश्र ही नहीं आज की पूरी साहित्यिक पीढ़ी है, बनते–बिगड़ते गांव हैं जिनका जीवन रस सूख रहा है, उभरते हुए नगर हैं जिनमें मनुष्यता मर रही है और सैकड़ों सामान्य लोग हैं जिनके रोजी रोटी के लिए किए जाने वाले ऊपरी खुरदुरे संघर्ष के भीतर संवेदना और सहानुभूति की तरल धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। सचमुच यह आत्मकथा आज के भारत के सामान्य आदमी केजीवन का दस्तावेज है।"

उपर्युक्त आत्मकथाओं के अतिरिक्त अनेक आत्मकथाकारों की आत्मकथाएं जिनमें स्वतन्त्र रूप से छपाने की सामर्थ या क्षमता नहीं है अथवा छपास नहीं है वे आत्म कथाएं 'सारिका' नामक पत्रिका के 'गर्दिश के दिन' नामक स्तंभ में प्रकाशित होती रही है। ऐसे आत्म कथा लेखकों में भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, कामता नाथ, दूधनाथ सिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिनकी संघर्षपूर्ण आत्मकथाएं प्रकाशित हुई हैं। इनको आत्मकथ्यपूर्ण आत्मकथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि इसमें आत्मकथा लेखकों का विभिन्न व्यक्तित्व अपना भिन्न–भिन्न मिजाज व्यक्त करता है। हिंदी आत्म कथा साहित्य अभी अपने को समृद्ध नहीं बना सका है। भविष्य में क्या करेगा कुछ कहा नहीं जा सकता है। कुछ आलोचकों का यह मात्र भ्रम है कि हिंदी माध्यम को अपना कर लिखने–पढ़ने वाले पंडित, मनीषी, महान, विद्वान या गौरवशाली नहीं हो सकते। किंचित उन्होंने कबीर, तुलसी, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी या नगेंद्र के व्यक्तित्व को भली भांति जांचा परखा नहीं है क्या ये हिंदी माध्यम नहीं थे या हिंदी लिखने पढ़ने वाले नहीं थे।

10 सारांश

वर्तमान समय में हिंदी साहित्य गद्य विधाओं की दृष्टि समृद्ध है। पत्र साहित्य, यात्रा साहित्य, भेटंवार्ता, डयारी लेखन जैसी विधाएं प्रकास में आ रही हैं किंतु जो स्थान कहानी, नाटक, उपन्यास एवं निबंध जैसी विधओं का है वह अन्य विधओं का नहीं। भारतेंदु युग से निरंतर ये विधाएं लोकप्रिय रही हैं। संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा तथा

रिपोर्ताज जैसी विधाएं भी पाठकों का ध्यान खींचती हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिंदी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के स्वरूप और विकास को भली प्रकार से समझ गए होंगे।

11 मुख्य शब्दावली

वर्ण संकर – दोगला, व्यभिचारी की संतान

स्वातंत्र्योत्तर – स्वतंत्रता के बाद

अंतर्द्वंद्व – आंतरिक संघर्ष

यायावर – घुमक्कड़

त्रिपथगा – तीन चरणों वाला, तीन पदों वाला गंगा नदी

आलोचना – समीक्षा करना, देखना

परिमार्जित – त्रुटि रहित

अनुसंधानपरक – खोजयुक्त, अन्वेषण युक्त

समसामयिकता – समकालीन

अभिहित – उल्लिखित, कहा खुला

12 अभ्यास हेतु प्रश्न

हिन्दी उपन्यास के विकास पर प्रकाश डालिए।

कहानी का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहानी का विकास समझाइए।

संस्मरण एवं रेखाचित्र का अंतर स्पष्ट कीजिए।

जीवनी और आत्मकथा में अंतर स्पष्ट कीजिए।

हिन्दी निबंध के विकास पर प्रकाश डालिए।

नाटक के स्वरूप एवं विकास को समझाइए।

आलोचना के क्रमिक विकास के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य का आदिकाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2014
4. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास (दो खण्ड)
5. बच्चन सिंह – हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

6. नामवर सिंह	–	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018
7. नगेन्द्र	–	रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
8. बच्चन सिंह	–	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास
9. रामविलास शर्मा	–	लोकजागरण और हिन्दी सौन्दर्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
10. सुमन राजे	–	हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 2004
11. शिवकुमार मिश्र	–	भक्तिकाव्य और लोकजीवन, पीपुल्स लिटरेसी प्रकाशन, दिल्ली, 1983
12. रामअवध द्विवेदी	–	साहित्य रूप
13. रामसजन पाण्डेय	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2017
14. रामकिशोर शर्मा	–	हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

लघुत्तरी प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के उद्‌भव के समय की आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के उद्‌भव के समय इंग्लैण्ड की औद्योगिक विकास का प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। इंग्लैण्ड के लिए भारत कच्चे माल का सस्ता तैयार स्रोत और तैयार मालकी बड़ी मण्डी से ज्यादा महत्व नहीं रखता था। भारतीय कुटीर उद्योग इंग्लैण्ड के कारखानों में बने माल का मुकाबला नहीं कर सके। रेल, डाक तार आदि का प्रचलन मूलतः अंग्रेजों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए हुआ था, परन्तु कालान्तर में इनसे राष्ट्रीयता की भावना तीव्र हुई। प्रथम महायुद्ध के बाद अंग्रेजों का भारतीयों ने विरोध किया। 1905में बंग–भंग हुआ और इसके विरोध में स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत हुई।

2. आधुनिक काल के नामकरण पर विचार कीजिए।

उत्तर– इसे गद्यकाल भी कहा जाता है। संवत् 1900 से जो साहित्य रचा जाने लगा उसमें विधात्मक दृष्टि से गद्य का ही विकास अधिक और प्रमुख रूप से हुआ है। यह आज तक की सृजन प्रक्रिया के इतिहास से एकदम स्पष्ट है। अतः इसे गद्यकाल कहना भी उचित ही है। प्रवृतियों और रूचियों की दृष्टि से इस काल में अपने पूर्ववर्ती कालों से स्पष्ट भिन्नता है। उस विभिन्नता में आधुनिक वैविधय भी है, अतः आधुनिक काल नाम समीचीन है। इस नामकरण और युगीन प्रवृतियों में गद्य व पद्य की समस्त साहित्यिक विधाओं का स्वतः समावेश हो जाता है।

3. हिन्दी साहित्य के आधुनिक की राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–सन् 1857 में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पहला अध्याय लिखा गया। 1857 ई. की क्रांति की ज्वाला को अंग्रेजों ने अपने दमन चक्र से दबा अवश्य दिया परन्तु वे उसे पूर्ण रूप से समाप्त न कर सके। कम्पनी राज्य, विक्टोरिया के शासन में बदला और इतिहास में भयंकर आर्थिक शोषण का युग प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस ने भारतीयों के लिए अधिकारों को मांगना आरम्भ कर दिया। तिलक ने कहा, "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, इसे मैं लेकर

रहूंगा।" सुभाष ने चेतावनी दी कि आजाद हिन्द फौज दिल्ली के लाल किले पर ध्वज फहराएगी, लाला लाजपत राय ने जय घोष किया कि – "हम न खाएंगे, न खाने देंगे, न सोयेंगे, न सोने देंगे।" इस प्रकार के वातावरण में राजनीतिक उथल पुथल मची हुई थी।

4. हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल की आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– इंग्लैण्ड की आद्यौगिक विकास का प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इंग्लैण्ड के लिए भारत कच्चे माल का सस्ता स्रोत और तैयार माल की बड़ी मण्डी से ज्यादा महत्व नहीं रखता था। इंग्लैण्ड के तैयार माल का भारत के उद्योग मुकाबला न कर सके। परिणामस्वरूप उद्योग और मजदूर सब बेकार हो गए। रेल, डाक तार आदि का प्रचलन मूलतः अंग्रेजों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए हुआ। कारखानों में हड़तालें हुई। 1905 में बंग–भंग हुआ और इसके विरोध में स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत हुई। गांधी जी का चरखा आंदोलन और खादी का प्रचार इसी आर्थिक शोषण के विरोध का एक रूप था।

5. हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की सांस्कृतिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए।

उत्तर– यह युग पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रसार का युग है। छापाखाना अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। ईसाई मिशनरियों का प्रचार जोरों पर था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा आर्य समाज जैसे सुधार आन्दोलन भारतीय द्वारा भी चलाए जा रहे थे। अंग्रेजों के प्रचार–प्रसार से जहां पाश्चात्य जगत की ओर झांकने के लिए खिड़की खुली वहीं पर संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं की उपेक्षा से हम अपनी विरासत से कटने भी लगे। बंगाल में एशियाटिक सोसायटी और पुरातत्व विभाग की स्थापना की गई। राजगृह, तक्षशिला, बनारस, पहाड़पुर तथा हड़प्पा और मोहनजोदड़ो आदि स्थानों की खुदाई में भारत के प्राचीन गौरव से संबंधित स्थानों पर खुदाई हुई। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद अंग्रेजी में होने लगा। पश्चिम का भौतिकवाद और मार्क्सवाद की अवधारणाएं एवं रूस की क्रांति भी भारतीय जनमानस को आंदोलित कर रही थी। विवेकानन्द, टैगोर तथा श्री अरविंद का प्रभाव भी पढ़े–लिखे वर्ग पर पड़ रहा था।

6. आधुनिक काल की साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– आधुनिक काल का साहित्य आम आदमी का साहित्य है। इस युग के साहित्यकार का सरोकार आदमी की आशाओं आकांक्षाओं से था। रीतिकालीन दरबारी संस्कृति क्रमशः नष्ट हो रही थी और साहित्य समाज का दर्पण और दीपक एक साथ बन रहा था। भारतेंदु युग पुनर्जागरण युग बना तो द्विवेदी युग समाज सुधार की तीव्र धारा को लेकर आया। छायावादी युग में शिल्पगत प्रयोगों का प्रारम्भ हुआ तो प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में क्रमशः लघु मानव की प्रतिष्ठा एवं काव्य विषयों का विशदीकरण हुआ। आधुनिक युग साहित्य की दृष्टि से विविधता, बिखराव एवं विशिष्ट काव्य प्रवृत्तियों का युग है।

7. भारतेंदु युगीन काव्य में देश भक्ति की भावना मुखरित हुई है, विवेचन कीजिए।

उत्तर – भारतेंदु आधुनिक युग के प्रथम राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं उनके काव्य में देश भक्ति की सशक्त भावना अभिव्यक्त हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "भारतेंदु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति का था।" उनकी कविताओं में देश की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया गया है। इस युग में विदेशी वस्तुओं का परित्याग और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का प्रचार किया गया है।

8. भारतेंदु युगीन कविता का परिचय दीजिए।

उत्तर– भारतेंदु युगीन कविता यथार्थ के काफी निकट है। यह उस युग की चेतना की प्रतिध्वनि ही नहीं, बल्कि उसका प्रतिनिधित्व भी करती है। इसमें जहां भारत की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया वहीं प्राचीन भारत के

गौरव, और संस्कृति का भी वर्णन है। इस कविता में कहीं देश के अतीत की गौरव गाथा है तो कहीं अधोगति और कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिंता है। उन्होंने हिंदी कविता को नवीन विषयों की ओर अग्रसर किया। हास्य व्यंग्य और विनोद भी इस कविता में मिलता है। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास आदि इस युग के मुख्य कवि हैं।

9. प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय भारतेंदु युगीन काव्य में दिखाई पड़ता है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– भाव, भाषा, शैली और उद्देश्य सभी दृष्टियों से इस युग के साहित्य में प्राचीनता और नवीनता के एक साथ दर्शन होते हैं । इस युग के साथ समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति का एक नया जमाना शुरू होता है। व्यापक जन चेतना को नई दिशा–दशा व राजनीति के कारण भारत के अतीत की ओर ध्यान जाता है, अतः भारतीय अतीत का गौरव आदर्श साहित्य का विषय बनता है। इस काल के साहित्य में नए पुराने दोनों प्रकार के विचार, आदर्श और उद्देश्य दिखाई पड़ते हैं।

10. 'भारतेंदु स्वयं एक महान कृष्ण भक्त कवि थे।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– भारतेंदु युग में भक्तिकालीन भक्ति भावना के आदर्श भी दिखाई पड़ते हैं। इस युग के गेय पदों में राधा और श्री कृष्ण की लीलाओं का सुंदर चित्रण किया गया है। भारतेंदु स्वयं एक महान कृष्णभक्त कवि थे। भारतेंदु ने माधुर्य भाव की भक्ति को ग्रहण किया था। वे कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करते थे।

11. भारतेंदु युग का काव्य जन जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– रीतिकालीन साहित्य के विपरीत भारतेंदु युग का काव्य सीधा जन जीवन से अधिक जुड़ा हुआ है।इसमें समाज सुधार की प्रवृति पर बल दिया गया। इस काल के कवि ने न केवल राजनीतिक स्वाधीनता को ही प्रमुखता नहीं दी बल्कि मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे को भी महत्व दिया। इसमें सामाजिक बुराइयों छल–कपट, स्वार्थ परकता, पश्चिमी रंग में रंगे शिक्षितों पर व्यंग्य, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों की लूट–खसोट, देश की सामान्य दुर्दशा, अकाल आदि का चित्रण करके समाज को जागृत किया है।

12. इतिवृत्तात्मकता भारतेंदु युग के कवियों में दिखाई पड़ती है, क्या यह सही है? विवेचन कीजिए।

उत्तर– भारतेंदु युगीन कविता में विचारों और अनुभूतियों की महानता नहीं है। केवल तुकबंदियों के द्वारा ही कवियों ने विभिन्न सामाजिक पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। प्रताप नारायण मिश्र के पद्यात्मक निबंध तथा दूसरे कवियों की उपदेशात्मक और सुधारात्मक कविताएं केवल इतिवृत्तात्मकता से परिपूर्ण हैं। इस काल की कविता को किसी उच्च कोटि में नहीं रखा जा सकता।

13. भारतेंदु कालीन काव्य में समाज सुधार की भावना व्यंजित हुई है। विवेचन कीजिए।

उत्तर– भारतेंदु कालीन काव्य में देश प्रेम की भावना के साथ साथ सामाजिक जागरण एवं समाज सुधार की प्रवृति भी देखीजा सकती है। नारी शिक्षा का समर्थ, वर्णगत भेद–भाव का विरोध, बाल विवाह का विरोध तथा अनमेल विवाह का निषेध जैसे गंभीर विषयों का वर्णन इस युग के काव्य में हुआ है। पश्चिमी सभ्यता के संपर्क में नया ज्ञान, आदर्श और नए संदेश हमारे देश में आने लगे। जिससे कुछ सुधार संभव हो पाए।

14. भारतेंदु युग के कवियों ने प्रकृति चित्रण में परम्परा का निर्वाह भर किया है। यह कथन क्या सही है? समीक्षा कीजिए।

उत्तर– प्राकृतिक सौंदर्य का स्वच्छन्द चित्रण भारतेंदु युग की विशेषता है, किंतु अधिकांश कवियों ने केवल परम्परा का ही निर्वाह किया है। ऋतु विशेष में नायक–नायिका की मनोदशाओं के वर्णन में अधिक रूचि ली है। भारतेंदु ने

सत्य हरिशचन्द्र नाटक में गंगा वर्णन और चंद्रावली नाटिका में यमुना वर्णन किया है। इस काल के काव्य में संवेदनशीलता की कमी है और नागरिकता की अधिकता है।

15. भारतेंदु हरिश्चन्द्र पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर– भारतेंदु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के चार रूप हैं – कवि, नाटककार, निबंधकार, तथा पत्रकार। उनके द्वारा रचित कृतियों की संख्या लगभग सत्तर है। उनमें प्रेम–मालिका, प्रेम–सरोवर, वर्षा विनोद, विनय पचासा, वेण गीत, प्रेम फुलवारी आदि प्रसिद्ध हैं। इनका प्रकाशन भारतेंदु ग्रन्थावली के नाम से हो चुका है। भारतेंदु की काव्यभाषा ब्रज भाषा है। उनकी व्यंग्यपूर्ण पहेलियां और मुकेरियां प्रसिद्ध हैं।

16. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' का परिचय दीजिए।

उत्तर– 'प्रेमधन' भारतेंदु कालीन काव्य धारा के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। उन्होंने पद्य और गद्य दोनों विधाओं में रचनाएं की। पत्रकार के रूप में इन्होंने नागरी नीदर और आनन्द कादम्बिनी आदि पत्रिकाओं का सफल सम्पादन कियज्ञं अलौकिक लीला, वर्षा, बिन्दु, मयंक महिमा, हार्दिक , जीर्ण–जनपद आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियां हैं। इनकी कविता का प्रमुख स्वर स्वदेश प्रेम और समाज–सुधार का है।

17. पंडित प्रतापनारायण मिश्र का परिचय दीजिए।

उत्तर– मिश्र जी भारतेंदु युग के प्रसिद्ध कवि, निबंधकार और नाटककार थे। उन्होंने देश–भक्ति, राम भक्ति, गौरक्षा, बुढ़ापा आदि विषयों पर काव्य रचना की मन की लहर 'प्रेम–पुष्पावली', 'श्रृंगार विलास' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएं हैं। उनकी कविताओं में इतिवृत्तात्मकता की अधिकता है। इनकी कविता में राजनीतिक व्यंग्य का उदाहरण–

"पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे न देश कलेस।

जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेश।"

18. अम्बिकादत्त व्यास का परिचय दीजिए।

उत्तर– व्यास जी कवि, नाटककार और पत्रकार थे। काशी के अच्छे कवियों में उनकी गणना होती थी। 'पावस पचासा', 'हो–हो होरी', 'सुकवि सतसई' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियां हैं। उन्होंने समस्या पूर्ति संबंधी अनेक कविताएं लिखी हैं। इनकी काव्य भाषा ब्रजभाषा है। कविता का उदाहरण देखिए–

सुमिरत छवि नन्दनन्द की, विसरत सब दुःख द्वंद्व।

ओम अमन्द अनन्द हिय, मिलत मनहु सुख कंद।

19. द्विवेदी युगीन काव्य में इतिवृत्तात्मकता की भावना प्रधान थी, विवेचन कीजिए।

उत्तर– द्विवेदी युगीन कविता में प्रायः श्रृंगार मुक्त काव्य लिखा गया। इनके काव्य में आदर्श वादिता, सात्विकता आरै संयम के तत्व अधिक हैं। आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं के प्रभाव से साहित्य से अश्लीलता और उच्छृंखलता का बहिष्कारकर दिया गया जिससे कविता में इतिवृत्तात्मकता की भावना बढ़ी। इस कविता पर मराठी की इतिवृत्तात्मकता काप्रभाव है, जिससे कविता में शुष्कता और नीरसता बढ़ी और अनुभूति से अधिक गहराई नहीं रही।

20. द्विवेदी युग के साहित्य का क्या महत्व है ?

उत्तर– हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् 1950 से 1975 तक का समय द्विवेदी युग के नाम से अभिहित किया जाता है, जिसमें साहित्य चेतना का सूत्रधार महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। वे सरस्वती पत्रिका के सम्पादक थे। खड़ी बोली के व्याकरण की रचना, परिष्कार और संस्कार का सार द्विवेदी जी और उनके समकालीन कवियों को जाता

है। द्विवेदी युग की कविता में राष्ट्रीयता का स्वर उभरा और इसके साथ ही आलोचना और कथा साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रौढ़ता आई। इस युग के आलोचकों में मिश्रबन्धु, पंडित पदम सिंह शर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनका युग वास्तव में ही गद्य का युग था। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के आरम्भ में जिन शैलियों को जन्म मिला, द्विवेदी युग में उन्हें विकास का पूर्ण अवसर मिला। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं।

21. द्विवेदी युग का काव्य बौद्धिकता से प्रभावित हैं युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर– द्विवेदी युगीन कवि को पाश्चात्य संस्कृति के बौद्धिकवाद ने प्रभावित किया। इसी के प्रभाव से इन्होंने भारतवासियों के मन से हीन भावनाओं को दूर करने के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की। हिन्दू जागरण के लिए यह अति आवश्यक था। गुप्त के लिए राम अवतारी न होकर आदर्श मानव है। आर्य समाज का प्रभुत्व इसयुग में छाया रहा। व्यक्तियों और आलोचकों ने प्राचीनता की बुद्धि सम्मत व्याख्या करके आधुनिकता को आदर्श बनाकर सफलता प्राप्त की।

22. 'द्विवेदी युग में उपदेशात्मक प्रवृति को छोड़कर कवियों ने मानवतावाद को ग्रहण किया।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– भगवान के गुणगान और सैद्धान्तिक व्याख्या के साथ साथ मानवता के आदर्शों की भी प्रतिष्ठा की है। इनमें पीड़ितों, शोषितों, दुर्बलों दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। कवि का मानना है कि मानव प्रेम से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है। दीन–दुखियों के आंसू भक्त को भगवान के और निकट करते हैं और इसी के लिए इन्होंने दुखियों के प्रति अन्याय और अवहेलना करने वाली सामन्तीय सभ्यता की निन्दा की है। राम और कृष्ण को आदर्श के रूप में स्थापित किया है।

23. 'द्विवेदी युग में देश भक्ति से परिपूर्ण काव्य रचना हुई।' सिद्ध कीजिए।

उत्तर– द्विवेदी युगीन कविता की राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी, जिसका मुख्य आधार देश के उज्ज्वल अतीत का गौरव था। केसरी नारायण शुक्ल के अनुसार – "जनता को अपना अतीत इतना प्रिय लगा कि इसके समक्ष उसे पाश्चात्य संस्कृति बिल्कुल हेय प्रतीत होने लगी।" देश भक्ति की भावना मुक्तक और प्रबन्ध काव्यों में प्रकट हुई। गुप्त का साकेत, उपाध्याय का प्रिय प्रवास, आदि जहां हिन्दी के गौरव ग्रंथ हैं वहां देश भक्ति और भारत की महान विभूतियों का भव्य दर्शन भी उनमें हैं।

24. प्रकृति चित्रण की दृष्टि से द्विवेदी युग की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– इस युग के कवियों का ध्यान प्रकृति के यथा तथ्य वर्णन की ओर गया। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिहं उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, आदि ने कहीं कहीं अद्‌भुत प्रकृति चित्रण किया है। इनके प्रकृति चित्रण मे संवेदनात्मकता एवं चित्रात्मकता का सम्मिश्रण है। नदी, पर्वत, समुद्र आदि का चित्रण करते हुए यदि इन्होंने परम्पराओं का पालन किया है तो उसमें रहस्यात्मकता को भी समावेशित किया है। परिगणन शैली का प्रयोग भी कहीं कहीं दिखाई देता है। पर उस से सजीव चित्र उपस्थित नहीं हो पाता।

25. 'द्विवेदी युग के कवियों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– इस काल के कवि स्वयं को गांधीवाद से अछूते न रख सके। रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त गांधीवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। गांधी जी के प्रति गुप्त जी की गहरी आस्था थी। उन्होंने गांधी जी के अनेक सिद्धान्तों को अपने काव्य में पिरोया है। मानवीय संवेदना, अछूतोद्धार भावना, सत्याग्रह, अहिंसा आदि अनेक सिद्धान्तों का निरूपण उनके काव्य में हुआ है।

26. भाषा की दृष्टि से द्विवेदी युग का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर– भाषा की दृष्टि से द्विवेदी युग सुधारवादी युग माना जाता है। अब ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा सुधार कार्य किया तथा खड़ी बोली को स्वतन्त्रा व्याकरण सम्मत और परिमार्जित किया। उधर गुप्त ने खड़ी बोली की कड़ाहट को दूर करके इसे साहित्यिक भाषा बनाया। इस युग में निश्चयही खड़ी बोली अपना सुंदर रूप सुधार पर सुंदर भाषा बन गयी।

27. महावीर प्रसाद द्विवेदी का परिचय दीजिए।

उत्तर– द्विवदी जी सबसे प्रभावशाली साहित्यकार थे। वे सस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। सरस्वती के सम्पादक के रूप में इन्होंने भाषा और साहित्य के परिष्कार और उन्नति के लिए अथक परिश्रम किया। इनके ग्रंथों की संख्या अस्सी बनाई जाती है। इनकी प्रमुख काव्य कृतियों में काव्य मंजूषा, सुमन, गंगा लहरी, ऋतु तरंगिणी आदि हैं। इनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है।

28. अयोध्या सिहं उपाध्याय 'हरिऔघ' जीवन परिचय दीजिए।

उत्तर– हरिऔघ जी समय के प्रख्यात कवि थे। इन्होंने उर्दू, फारसी और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने काव्यों की रचना की जिनमें प्रियप्रवास, पद्य–प्रसून, चुभते चौपदें, चौखे चौपदे, रस कलश, पदैही वनवास आदि प्रसिद्ध हैं। हरिऔध जी सुधारवादी आंदोलन से प्रभावित थे। इनमें भक्ति श्रृंगारिकता की प्रवृतियां विद्यमान थीं। राष्ट्रीयता की प्रवृति उनके काव्य में मिलती है।

29. श्रीधर पाठक का परिचय दीजिए।

उत्तर– श्रीधर पाठक का नाम द्विवेदी युगीन काव्यों में महत्वपूर्ण है। इन्होंने खड़ी बोली पद्य के लिए ताल एवं स्वर के नए ढांचे निकाले। उन्होंने लावणी शैली के आधार पर एकान्तवासी योगी तथा सन्तों की सधुक्कड़ी पद्धति पर जगत सच्चाईसार की रचना की। उनकी कविताओं में प्रकृति–प्रेम का आधिक्य मिलता है। प्रकृति वर्णन सम्बन्धी कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

विजन वन प्रात था, प्रकृति मुख शान्त था।

अटन का समय या रजनि का उदय था।।

30. जगन्नाथ 'रत्नाकार' का परिचय दीजिए।

उत्तर– ये हरियाणा के सफीदो नगरा के निवासी थे। ये उर्दू, फारसी, संस्कृत, बंगला आदि अनके भाषाओं के ज्ञाता थे। इनके काव्य में भक्ति नीति, श्रृंगार एवं वीरता की प्रवृतियां मिलती हैं। इनकी काव्य भाषा ब्रजभाषा है। श्रृंगार लहरी, हरिश्चन्द्र हिंडोला, गंगावतरण, उद्यवशतक आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

31. रामचरित उपाध्याय का परिचय दीजिए।

उत्तर– ये संस्कृत के अच्छे पण्डित थे और पुराने ढगं की कविता किया करते थे। बाद में द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से भी खड़ीबोली में कविता करने लगे। राष्ट्र–भारतीय, देवदूत, देवी–द्रौपदी, भारत भक्ति आदि अनेक कविताएं उन्होंने खड़ी बोली में लिखी। रामचरित चिन्तामणि इनका प्रबन्ध काव्य है। सामाजिक बुराइयों को दूर करने में इनकी कविता नितान्त सक्षम एवं प्रभावी रही है।

32. रामनरेश त्रिपाठी 'निराला' का परिचय दीजिए।

उत्तर– इनकी कविता लिखने में बचपन से ही रूचि थी। मिलन, पथिक, स्वप्न आदि अनेक प्रसिद्ध काव्य खण्ड हैं

जिनमें राष्ट्र के प्रति प्रेम और समाज सेवा की प्रेरणा दी गई है। उन्होंने अनेक सुधारवादी कविताएं लिखी हैं। उनकी कविता में विश्व बंधुत्व की भावना मिलती है। यथा –

रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की।

अरि को वश करना चरित्र से शोभा है तन की।।

33. मैथिलीशरण गुप्त का परिचय दीजिए।

उत्तर– मैथिलीशरण गुप्त सच्चे अर्थों में राष्ट्र–प्रेमी, भारतीय संस्कृति के निष्ठावान व्याख्याता तथा उदारशमी मानवतावादी कवि थे। वे राष्ट्र कवि थे। उन्होंने अपने युग की सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा को अपने काव्य का विषय बनाया। अनमेल विवाह, दुर्भिक्ष, दहेज प्रथा, व्यभिचार आदि के निरुपण के माध्यम से उन्होंने देशवासियों को जगाने का प्रयास किया। साकेत, जयद्रथ वध, यशोधरा, भारत भारती आदि इनकी रचनाएं हैं।

34. छायावाद की परिभाषा एवं स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर– दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छन्दतावादी कविता को छायावादी कविता की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि छायावाद हिंदी साहित्य की मौलिक और स्वतन्त्र काव्य धारा है परन्तु फिर भी कुछ आलोचक इसे अंग्रेजी की रोमान्टिक धारा या बंगला की नकल मानते हैं। छायावाद नाम प्रतीकात्मक है। मुकुटधर पाण्डेय ने सर्वप्रथम काव्यात्मक रूप में कहा था।– "यह कविता न होकर उसकी छाया है।" जो कि बाद में कविता के लिए रूढ़ हो गया। डॉ. नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्षम का विद्रोह मानते हैं।"

35. 'छायावादी काव्य में वैयक्तिवाद की प्रधानता है', स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– वैयक्तिकता से अभिप्राय व्यक्तिवादिता से है। छायावादी कवियों ने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया है।इस काव्य में जाति, महाजाति अथवा आदर्श व्यक्तियों के सुख–दुख की नहीं अपितु साधारण व्यक्ति के सुख–दुखकी बात है। कवि विषय वस्तु की खोज बाहर से नहीं, अपितु अपने भीतर से करता है और इसीलिए इसके काव्य में कहीं–कहीं अहं भावना की अति है। इसका अहं भाव असामाजिक नहीं है। उसमें सर्व मिला हुआ है।

36. 'छायावाद का सबसे उज्ज्वल पक्ष उसका मानवतावाद है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– छायावाद का युग विश्वयुद्ध और मानवतावाद की भावना का युग था। मानव मात्र की समानता का प्रचार कर रहे थे। प्रसाद की कामायनी और निराला की तुलसीदास इस भावना का सशक्त प्रचारक बन कर काव्य क्षेत्र में अवतरित हुए थे। मानव–प्रेम, करुणा, असाम्प्रदायिकता, उदारता, विश्व बंधुत्व, राष्ट्रीय जागरण आदि भावनाओं के साथ भावुकता, कल्पना तथा प्रकृति में चेतना के दर्शन करने की प्रवृत्ति ने हमारे ज्ञान के संबंध में वृद्धि की थी। मानव प्रेमका वर्णन पंत ने यूं किया है –

"सुंदर है विहग सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।"

37. छायावाद में प्रकृति के सुंदर चित्र अंकित हुए हैं, स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– छायावादी कवियों का मन प्रकृति में खूब रमा है। इस काल के काव्य में प्रकृति पर चेतनता का आरोप किया है।इसके लिए कवियों ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है। सभी प्रमुख छायावादियों ने प्रकृति का चित्रण नारी रूप में किया है। प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, दूती, रहस्यवादी सभी रूपों का चित्रण यहां हुआ है। इस चित्रण में अश्लीलता और सात्विकता विद्यमान है।

38. छायावादी काव्य की नारी भावना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –छायावदी कवियों ने नारी के प्रति सहज सहानुभूति रखी है। इनके नारी के प्रति प्रेम और सौंदर्य चिंतन में सूक्ष्मता और अश्लीलता नहीं हैं इनके नारी चित्रण में छुटाव छिपाव नहीं है। उसमें कवि की वैयक्तिकता है। उनकी कविताओं में नारी के सौंदर्य चित्रण में स्थूलता व नग्नता नहीं, बल्कि स्वाभाविकता है। कवियों ने नारी के दया, ममता, वासना, सहानुभूति – आदि भावों का भी चित्रण किया है।

39. छायावादी युग कवियों में स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है। सिद्ध कीजिए।

उत्तर –छायावादी कवियों के काव्य में राष्ट्रीय जागरण और स्वतन्त्रता का आह्वान भी सर्वत्र है पाश्चात्य रोमांटिक धारा केकवियों ने भी रहस्यवाद और स्वच्छन्दता की भावनाओं का सम्मिश्रण किया था। इस राष्ट्रीय जागरण की गोद में गढ़ने वाले कवियों के काव्य में राष्ट्र प्रेम की भावनाओं का पाया जाना स्वाभाविक है। जयशंकर प्रसाद के काव्य तो अलग,सभी नाटक भी राष्ट्र प्रेम की भावना और गीतों से ओत–प्रोत हैं

40. छायावादी काव्य में वेदन और करुणा की भावना सर्वत्र अभिवयक्त हुई है। सिद्ध कीजिए।

उत्तर–इस काव्य में युगानुरूप वेदना की विवृति हुई है। छायावाद के कर्णधारों का काव्य वेदना सेवावाद, मानवतावाद और अध्यात्मकवाद पर आधारित है। कुछ आलोचकों ने इस निराशावाद को तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन में असफलता के कारण माना है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं – "इसलिए यद्यपि उनकी वाणी में मनुष्य की महिमा का उदघोष है तो कहीं–कहीं घोर नैराश्य से भरा और आत्मपीड़क चीत्कार भी है।"

41. छायावादी कविता में रहस्य भावना दिखाई पड़ती है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर– छायावादी कवियों का वर्णन विषय आध्यात्मिकता से अछूता नहीं है। छायावाद में बाह्य पदार्थों की अपेक्षा आंतरिकता की प्रवृति अधिक है। यही प्रवृति मनुष्य को रहस्यवाद की ओर अग्रसर करती है। रहस्यवादी कवि लौकिकता से अलौकिक और स्थूल से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता है। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त के शब्दों में – "वीणा में पंत रहस्यवादी थे, गुंजन में पत्नी या प्रेयसीवादी और युगान्त के बाद स्थूल भौतिकवादी और यही बात निराला में मिलती है।"

42. छायावादी काव्य आदर्शवादिता की भावना से परिपूर्ण है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– छायावाद में आंतरिकता की प्रवृति की प्रधानता है। उसमें पदार्थों के बाह्य रूप चित्रण की प्रवृति नहीं है। अपनी इस अन्तर्मुखी प्रवृति के कारण उसका दृष्टिकोण काव्य के भावजगत् और शैली में आदर्शवादी रहा है। उसे सांसारिक पदार्थों के बाह्य चित्रण की अपेक्षा अपनी सहानुभूतियां अधिक यथार्थ और महत्वपूर्ण लगी हैं। यही कारण है कि उसका काव्य संबंधी दृष्टिकोण कलात्मक रहा और उसमें सुंदर तत्वों की प्रधानता बनी रही।

43. 'छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं थे वे संगीत के भी कुशल ज्ञाता थे। इस स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –छायावाद का काव्य छन्द और संगीत दोनों दृष्टि से उच्च कोटि का है। इसमें प्राचीन और नवीन दोनों छन्दों का प्रयोग है। छायावादी कवि प्रणय, यौवन और सौंदर्य का कवि है। संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्मभिव्यंजना, भाषा की मसृणता आदि सभी गुण इनके काव्य में हैं। रामनाथ सुमन के शब्दों में – "इस कवि में जो मस्ती है, भावना, अनुभूति की मृदुता है। उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति काव्य की रचना के अत्यन्त उपयुक्त थी।"

44. जयशंकर प्रसाद का परिचय दीजिए।

उत्तर–जयशंकर प्रसाद ने छायावादी काव्य का श्रीगणेश किया। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि क्षेत्रों में साहित्य का सृजन किया। वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि

हैं। प्रकृति चित्रण उनके काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। नारी की महत्ता, प्रेम निरूपण, कल्पना की प्रधानता, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता आदि प्रसाद जी के काव्य की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। इनकी काव्य कृतियों में कामायनी, आंसू झरना, लहर, कानन–कुसुम, करुणालय, प्रेम पथिक रचनाएं महत्वपूर्ण हैं।

45. सुमित्रानन्दन पंत का परिचय दीजिए।

उत्तर –पंत जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। बिम्ब योजना, अलंकार–योजना, गीतिकार सौन्दर्य भावना, कल्पना की अतिशयता आदि अनेक काव्य की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

46. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का परिचय दीजिए।

उत्तर– निराला जी छायावादी के उद्भव कवि में माने जाते हैं। 'जूली की कली' से उनका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ होता है। उनके काव्यमें भारतीय संस्कृति के अतीत गौरव के प्रति श्रद्धा, सांस्कृतिक जागरण, राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिवादी विचारधारा, नारी सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें परिमल, अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अनिमा, वेला, नये पत्ते, अर्चना और आराधना आदि प्रमुख हैं। परिमल और अनामिका में छायावाद की सभी प्रवृत्तियां देखी जा सकती हैं। कुकुरमुत्ता में कवि ने पूंजीपतियों पर तीखा प्रहार किया है। राम की शक्ति पूजा उनकी प्रौढ़तम कृति है। छायावादी काव्य को निराला जी की मुख्य देन है – मुक्तछन्द।

47. महादेवी वर्मा का परिचय दीजिए।

उत्तर– महादेवी वर्मा का कवयित्री एवं गद्य लेखिका के रूप में हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। नीहार रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा आदि उनके प्रसिद्ध काव्यग्रंथ हैं। रश्मि और दीपशिखा उनके मौलिक गीतों का संकलन है। भावमयता, प्रकृति चित्रण, वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता, श्रृंगार एवं व्यंग्य भावना, कल्पना की उड़ान, मानवीकरण, लाक्षणिक प्रयोग, प्रतीकात्मकता, आदि अनेक विशेषताएं उनके काव्य में झलकती हैं। महादेवी जी करुणा और वेदना की कवयित्री हैं। उनके काव्य में करुणा एवं वेदना की तीव्र अनुभूति झलकती है।

48. रामधारी सिंह दिनकर का परिचय दीजिए।

उत्तर–'दिनकर जी की कविता पर राष्ट्रीयता की छाप सबसे अधिक झलकती है। रेणुका, रसवन्ती, द्वद्वंगीत, हुंकार, धूप–छावं सामधेनी, कुरुक्षेत्र रश्मिरथी आदि उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। उनकी रेणुका में रोमांस और आक्रोश है। हुंकार में कविका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी है। सामधेनी में परिवेश के प्रति विक्षोभ एवं राष्ट्र प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। दिनकर जी की काव्य दृष्टि प्रगतिशील, मानवीय एवं सांस्कृतिक है।

49. प्रगतिवाद का स्वरूप एवं परिचय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद, देश के क्षेत्र में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद है। इस प्रगतिवाद का मूल आधार कार्लमार्क्स की विचारधारा है। अनेक विद्वान प्रगतिवाद और प्रगतिशील को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं यह भ्रामक है। इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है –"प्रगतिवाद शब्द मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा में सर्वथा सम्बद्ध हैं। जबकि प्रगतिशील शब्द उससे सर्वथा स्वतन्त्र।"

50. कला के प्रति प्रगतिवादी लेखकों का क्या दृष्टिकोण है?

उत्तर– कला के प्रति प्रगतिवादी लेखक का दृष्टिकोण पूर्णतः समाजवादी है। कला ऐसी है जो सबकी समझ में आ सके और सबसे शुभ प्रेरणा प्रदान कर सके। प्रगतिवादी चित्रण में भौतिक जीवन का चित्रण रहता है। प्रगतिवादी सर्वसाधारण की भाषा के लिए कलागत विकास, रूप रंग और रोमांस का मोह त्याग कर खरी और तीखी शैली

अपनाता है। कला और शैली के इस रूप में बाहरी चमक दमक और आकर्षण नहीं होता पर फिर भी इसमें प्रभाव डालने की उद्‌भुत शक्ति होती है।

51. प्रगतिवादी काव्यधारा में क्रांति की भावना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए पुरानी परम्पराओं का समूल नाश आवश्यक है। शोषक वर्ग का पूर्ण विनाश जब हो जाएगा तभी मजदूर किसान को समाज में उच्चता प्राप्त होगी। लेकिन शोषक वर्ग सरलता से मार्ग से हटने वाला नहीं है। अतः क्रांति के मार्ग पर चलकर प्रलयकारी स्वर उत्पन्न करना आवश्यक है। प्रगतिवादी कवि शोषण रूपी फोड़े का इलाज मरहम से नहीं अपितु उसे जड़े से काट कर फैंक देना चाहता है। अमीरों और राजनीतिज्ञों के धोखे में कवि नहीं आना चाहता। अहिंसा की दुहाई देते हुए विनोबा भावे ने भूदान आंदोलन आरम्भ किया, लेकिन नागार्जुन ने इसका विरोध किया।

52. प्रगतिवादी काव्यधारा में नारी की स्थिति का वर्णन कीजिए।

उत्तर– प्रगतिवादी कवि के लिए नारी भी मजदूर एवं किसान के समान शोषित है, जो कि युग–युग से सामंतवाद की धारा में पुरुष दसात की लौहमयी श्रृंखलाओं में बंद है। वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो चुकी है। समाज में उसे वह स्थान प्राप्त नहीं है जो पुरुष को है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसे सम्मान देने की मांग की है। प्रगतिवादी कवि ने रूपसी नारी का चित्रण न करके कृषक बालाओं एवं मजदूर स्त्रियों का चित्रण किया है।

53. प्रगतिवादी काव्य में मार्क्स तथा रूस का गुणगान किया गया है युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर– प्रगतिवादी कवियों ने साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स तथा रूस, जहां उनकी विचार पल्लवित और पुष्पित हुई, दोनों का उन्मुक्त गान किया। इस बात का विचार न करते हुए कि वहां की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती हैं या नहीं। पंत को कहीं–कहीं साम्यवादी दर्शन की व्याख्या मात्र जुटाने में लग जाते हैं। निःसन्देह उनकी ऐसी रचनाओं में भाषा की स्वच्छता है, पर वे किसी प्रकार भी रागात्मक साहित्य की कोटि में नहीं आएगी।

54. मानवतावाद की दृष्टि से प्रगतिवादी काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर –प्रगतिवादी कवियों के दो समुदाय हैं – 1. अपनी मातृभूति के लिए लिखता है और विधवाओं का उद्धार करना चाहता है। 2. समस्त मानवता का उद्धार चाहने वाले। उसे संसार के सब पीड़ित लोगों से प्यार एवं सहानुभूति है। उसे संसारके किसी भी कोने में किए गए अत्याचार के प्रति रोष है। उसके लिए हिन्दु मुस्लिम, हब्शी और यहूदी मानव के नाते सब बराबर हैं।

55. प्रगतिवादी काव्य में वेदना और निराशा की भावना अभिव्यक्त हुई है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– इस काव्य धारा की वेदना वैयक्तिक और सामाजिक है। प्रगतिवादी कवि संघर्षों से जूझता हुआ निराश नहीं होता। उसे विश्वास है कि वह इस सामाजिक वैषम्य को दूर करने में सफल होगा और वह उस समता के स्वर्ग विहान की आशा करता है। उसकी ओजस्विनी वाणी शोषित वर्ग को स्फूर्ति प्रदान करके उसे अत्याचार के विपरीत मोर्चा लेने के लिए तैयार करती है। प्रगतिवादी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं।

56. प्रगतिवादी काव्य में रूढ़ियों का विरोध हुआ है।' विवेचन कीजिए।

उत्तर –प्रगतिवादी कवि ईश्वर को सृष्टि का कर्ता न मानकर उसके महत्व को नकारता है। उसे ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उसकी दृष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि

है। उसके लिए धर्म एक अफीम का नशा है और प्रारब्ध एक सुंदर प्रवंचना। उसके लिए वर्ण–व्यवस्था निराधार है। सभी समान हैं। बाह्य आडंबरों एवं अंधविश्वासों में यह विश्वास नहीं करता, अपितु इनकी आलोचना करता है।

57. प्रगतिवादी काव्य जहां एक ओर शोषितों के प्रति स्नेह रखता है वहीं दूसरी शोषकों के प्रति घृणा।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– प्रगतिवादी कवि का मानना है कि शोषित मानव जाति के लिए एक घोर अभिशाप है और इसका निवारण साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य है। कवि शोषित की करुण दशा का चित्रण स्नेह वश करता है। वह दीन दलितों की दशा को देख आंसू बहाता है जबकि शोषकों की कटु आलोचना करते हुए आंखों से अंगार बरसाता है। कहता है "हो यह समाज चिथड़े–चिथड़े शोषण पर जिसकी नीव गढ़ी।" कवि सामाजिक जीवन के वैषम्य को देखकर आक्रोशमयी प्रलयंकारी वाणी में वज्र निघौष कर उठता है।

58. प्रयोगवाद का आरम्भ कब और क्यों हुआ?

उत्तर– सन् 1943 में अज्ञेय जी के तारसप्तक के सम्पादन के साथ ही प्रयोगवाद का जन्म हुआ है। कारण, प्रथम तो छायावाद ने अपने शब्दाडंबर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्वों को नष्ट कर दिया। दूसरे प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भावस्तरों एवं शब्द संस्कारों को अभिधात्मक बना दिया था। ऐसी स्थिति में भाषा और शैली में सामर्थ्य नहीं रहा। परिणामस्वरूप उन कवियों को जो इनसे पृथक थे, सर्वथा नया स्तर और नए माध्यमों का प्रयोग करना पड़ा। ऐसा इसलिए भी करना पड़ा कि भाव स्तर की नई अनुभूतियां विषय और संदर्भ में इन दोनों से सर्वथा भिन्न थीं।

59. प्रयोगवाद के मूल तत्व क्या हैं ?

उत्तर–1. नवीनता – नवीन विषयों का वर्णन नई शैली में करना।

2. मुक्त यथार्थवाद – यथार्थ का ज्यों का त्यों चित्रण करना। साहित्य में जो प्रसंग (अश्लीलता, नग्नता) अब तक स्थान नहीं प्राप्त कर सके थे, उनका चित्रण इन कवियों ने किया है।

3. बौद्धिकता – नया कवि बौद्धिकता का अधिक वर्णन करता है, भावात्मकता का नहीं।

4. क्षणिकता – प्रयोगवाद में एक क्षण का महत्व प्रतिपादित किया गया है। क्षणिक आनन्द सम्पूर्ण जीवन में सुख ही सुख भर देता है।

60. प्रयोगवाद काव्य धारा में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद आत्मा तक छाया हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– प्रगतिवादी कवि की अन्तरात्मा में अहंनिष्ठा व्यक्तिवाद इस रूप से कटिबद्ध है कि वह सामाजिक जीवन के साथ किसी प्रकार से गठबधंन नहीं कर पाता। वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति आधुनिक काव्य की मुख्य विशेषता है। भारतेंदु द्विवेदी और छायावादी युग में इसकी प्रधानता रही पर प्रयोगवादी कवि की वैयक्तिकता तो मात्र आत्म विज्ञान बनकर ही रह गई। इनका लक्ष्य है–"कवि न होऊँ नहि चतुर कहाऊँ।"

61. प्रयोगवादी कविता में नारी का क्या रूप चित्रित हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –प्रयोगवादी कविता में नारी के तीन रूपों का चित्रण हुआ हैं 1. आधुनिक नारी जो बौद्धिक है, 2. भारतीय गृहणी जो हिन्दू संस्कृति में अपनी दृढ़ आस्था रखती है, 3. मध्यवर्गीय परिवारों की नारियां जो जीवन को एक भार समझकर ढो रही हैं। अज्ञेय जी ने पुरूष एवं स्त्री का संबंध पति पत्नी स्वीकार न करके चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध स्वीकार किया है। पुरुष से संबंध स्थापित करती है अपनी तन, मन, धन की लालसा को पूर्ण करने के लिए। वह धोखा देती है और धोखा खाती है।

62. प्रयोगवादी कविता और रीतिकालीन कविता में क्या समानता है?

उत्तर– यद्यपि प्रयोगवादी कवि स्वयं को आधुनिक मानता है परन्तु उसकी कविता में सदियों पुरानी रीतिकाव्य की पद्धति का अनुकरण स्पष्ट दिखाई देता है। जिस प्रकार उन्होंने (रीतिकाल के कवियों) जीवन के व्यापक मूल्यों में से केवल रसिकता और कामुकता का मुख्य रूप से चित्रण किया, उसी प्रकार नए कवि ने कुण्ठाओं और दमित वासनाओं का अधिक चित्रण किया है। उसकी अभिव्यक्ति, अर्थशून्य है। रीतिकाव्य की चमत्कार वादिता नई कविता में भी देखी जासकता है। उनका कलापक्ष मनोहारी था, लेकिन उनका तो यह पक्ष भी सिवाय नए प्रयोगों के कुछ नहीं है।

63. प्रयोगवादी काल में नग्नता एवं अश्लीलता दिखाई पड़ती है। उत्तर दीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी काव्य में उन वस्तुओं का चित्रण बड़े गौरव के साथ किया है जिनका श्रेष्ठ साहित्यकार बहिष्कार करता है। इस कवि का लक्ष्य दमित वासनाओं एवं कुठाओं का चित्रण मात्र रह गया है। काम वासना जीवन का अंग अवश्य है, किंतु जब वह अंग न रहकर अंगी और साधन न रहकर साध्य बन जाती है तब उसकी विकृति एक घोर भयावह विकृति के रूप में होती है। यदि यूं कहा जाए कि प्रयोगवादी काव्य में सेक्स का खुला चित्रण है तो कोई अत्युक्तिन होगी।

64. नई कविता में निराशावादी भावनाओं से संपृक्त है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर– नई कविता का कवि अतीत की प्रेरणा और भविष्य की उल्लासमयी उज्ज्वल आकांक्षा दोनों से विहीन है, उसकी दृष्टि केवल वर्तमान पर टिकी है। यह निराशा के कुहा से संर्वत्र आवृत है। उसका दृष्टिकोण दृश्यमान जगत के प्रति भ्रमवादी तथा निराशावादी है। उनके लिए कल निरर्थक है, उसे उसके दोनों रूपों पर भरोसा और विश्वास नहीं है। डॉ0 गणपति चंद्र गुप्त के शब्दों में – "उनकी (नई कविता के कवियों की) स्थिति उस व्यक्ति की भांति है जिसे यह विश्वास हो कि अगले क्षण प्रलय होने वाली है। अतः वे वर्तमान में ही सब पा लेना चाहते हैं।"

65. 'नई कविता (प्रयोगवाद) में बौद्धिकता की प्रधानता है। क्या यह ठीक है। युक्ति–युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर –नई कविता में अनुभूति एवं रागात्मकता की कमी है। इसमें बौद्धिक व्यायाम की उछल–कूद आवश्यकता से भी अधिक है। नया पाठक इससे प्रभावित हुए बिना इसकी पहेली बुझौवल के चक्रव्यूह में फंस जाता है। धर्मवीर भारती ने इसे बौद्धिकता के विषय में कहा है – "प्रयोगवादी कविता में भावना है, किंतु हर भावना के सामने एक प्रश्नचिन्ह लगा हिंदी साहित्य का इतिहास हुआ है। इसी प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न चिन्ह उसी की छविमात्र है।"

66. प्रयोगवादी कविता में उपमानों की नवीनता है। निरुपण कीजिए।

उत्तर– प्रयोगवादी कवि ने उपनामों के इतने अधिक नए प्रयोग किए हैं, जिससे लगता है कि कवि बाजीगर बन गया है। इन नए उपमानों के प्रयोग में सुरूचि का भी ध्यान आवश्यक है। अलंकारों का धर्म काव्य सौंदर्य में अभिवृद्धि करना है, किंतु उजले वस्त्रों को कफन की उपमा देना, बादल को हड्डी कहना तथा टूटे सपने को भुंजा हुआ पापड़ कहने से सौंदर्य सृष्टि न होकर पाठक के मन में विक्षोभ की सृष्टि होती है। हां कहीं कहीं अच्छे उपमान भी दिखाई पड़ते हैं।

67. 'प्रयोगवादी काव्य में छन्द के बंधन को स्वीकारा नहीं गया।' क्या यह कथन ठीक है। विवेचन कीजिए।

उत्तर– प्रयोगवादी कलाकार अन्य क्षेत्रों के समान छन्द के बंधन को स्वीकार न सका और उसने मुक्तक परंपरा में विश्वास किया। कुछ नए गीतों की रचना की, कुछ नए प्रयोग किए। कुछ ऐसी कविताओं की रचना की जिसमें न लय है नगति अपितु गद्य की सी नीरसता एवं शुष्कता है। एक प्रसिद्ध आलोचक ने कहा है – "यही कारण है कि

प्रयोगवादी कवियों ने मुक्तक छन्द अपने आप में हलचल सी, एक बवंडर सा रखते हुए प्रभाव शून्य प्रतीत होते हैं। उनकी करुणा और उच्छवास भी पाठक के ह्रदय को द्रवित नहीं कर पाते। हां, तो होता क्या है कि विस्मयकारिणी सृष्टि।"

68. अज्ञेय का परिचय दीजिए।

उत्तर –अज्ञेय नई कविता के प्रवर्तक एव समथर्क कवि हैं। इनके उपन्यासकार कवि, कहानीकार, पत्रकार, यात्रावृत्तान्त लेखक आदि अनेक रूप हैं। अज्ञेय जी नई कविता के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। भग्नदूत, चिंता, हरि घास पर क्षणभर, बावरा–अहेरी, इन्द्र धनुष रौंदे हुए, आंगन के पार द्वार आदि उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं। आस्था, विश्वास का स्वर व्यष्टि वसमष्टि की भावना, व्यंग्य आदि उनके काव्य की अनेक विशेषताएं हैं। उनकी कविता में बौद्धिकता की प्रधानता है। उन्होंने अपनी कविता में नए उपमानों, बिम्बों प्रतीकों एवं शब्दों को विकसित किया है। इस दृष्टि से अज्ञेय नई कविता के प्रमुख स्तम्भ हैं।

69. गिरिजाकुमार माथुर का परिचय दीजिए।

उत्तर– प्रयोगवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुर का नाम भी प्रसिद्ध है। इनकी कविता का प्रमुख विषय प्रेम और विरह है। उनकी कविता में श्रृंगारिकता की प्रधानता है। कहीं कहीं संघर्ष और क्रांति की भावना भी झलकती है। शिल्प के क्षेत्र में संगीतात्मकता एक प्रमुख विशेषता है। उनकी कविता में सहज संगीत, लय और प्रवाह है। माथुर जी ने अपनी कविता में नए शब्दों, बिम्बों एवं प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। मंजीर धूप के धान, नाश और निर्माण, पृथ्वी कल्प आदि उनकी प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

70. धर्मवीर भारती का परिचय दीजिए।

उत्तर– धर्मवीर भारती एक सफल प्रयोगवादी कवि एवं पत्रकार हैं। उनकी रचनाओं में वासनाओं एवं काम कुण्ठाओं, दुःख, निराशा का सुंदर चित्रण हुआ है। उनकी काव्य रचनाओं में अंधा युग, ठण्डा लोहा, सात–गीत वर्ष, कनुप्रिया आदि प्रमुख हैं। अंधायुग में उन्होंने सांस्कृतिक क्रांति उत्पन्न करने का प्रयास किया है। निराला के प्रति थके हुए कलाकार से फूल मोमबत्तियां और टूटते सपने आदि उनकी बड़ी सुन्दर कविताएं हैं। बिम्ब और प्रतीक योजना, नाटकीयता की दृष्टि से उनकी कविता सरल है। उनकी भाषा सहज, सरल और स्पष्ट है।

71. 'नई कविता में क्षण का महत्व स्वीकार किया गया है।' समीक्षा कीजिए।

उत्तर– यह कविता जीवन के एक क्षण को सत्य मानती है और सत्य को पूरी शक्ति के साथ भोगने का आग्रह करती है। क्षणबोध शाश्वत जीवन बोध का विरोधी नहीं बल्कि उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षण में दिखाई पड़ने वाले किसी जीवन सौंदर्यमय भाव में अनुभूत होने वाली जीवन–व्यथा, जीवन का उल्लास, क्षण में दिख पड़ने वाली मनःस्थिति या बाहरी व्यापार का कोई हिस्सा छोटा नहीं होता । उसका जीवन और साहित्य में एक अपना मूल्य है– वह क्षण की मार्मिक सत्यानुभूति जीवन को एक नवीन सार्थकता प्रदान करती है।

72. व्यंग्यात्मकता की दृष्टि से नई कविता का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर– नई कविता में कवियों ने आज के युग में व्याप्त विषमता का व्यंग्यात्मक चित्रण किया हैं व्यंग्यात्मक शैली में जीवन और सभ्यता के चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। श्रीकान्त वर्मा ने नगरहीन मन शीर्षक कविता में आजके नागरिक जीवन की स्वार्थ परकता, छल–कपटपूर्ण जिंदगी को स्वर दिया है। अज्ञेय की कविता सांप में भी नागरिक सभ्यता पर करारा व्यंग्य किया है। – "सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे...।"

73. समकालीन कविताकी अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– जब कभी आधुनिकता शब्द को लेकर विद्वान चर्चा करते हैं तो वे आधुनिकता और समकालीनता में भेद

करने का प्रयास करते हैं। यह भी कहते हैं – 'आधुनिकता काल–निरपेक्ष मूल्य है जबकि समकालीन काल–सापेक्ष अनुभव है। डॉ. हरदयाल के शब्दों में – "कोई व्यक्ति अपने समय को यदि अनुभव के स्तर पर ग्रहण कर लेता है तो वह समकालीनता के बोध से युक्त है।" फिर भी प्रश्न उठता है कि इसका अर्थ क्या है? इसका शाब्दिक अर्थ है – अपने समय से जुड़ने का भाव।

74. 'समकालीन कविता में सांस्कृतिक विपन्नता के दर्शन होते हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– सास्कृतिक विपन्नता के दर्शन होने का कारण है कि हमारी सस्कृति के अधिकांश मूल्य खो रहे हैं। नया बनता समाज उन्हें छोड़ रहा है। या यूं भी कह सकते हैं कि आधुनिक पीढ़ी उन्हें अपनाना ही नहीं चाहती। आठवें दशक तक आते आते संस्कृति के प्रति ये आक्रमण और आक्रोश और भी तीव्र हो गए। समकालीन कविता में संस्कृति के प्रति ये बेगानापन हमें बार बार दिखाई पड़ता है। मानो ये कवि कहना चाहते हों कि हमारे समूचे इतिहास एवं संस्कृति की पुनः जांच होनी चाहिए।

75. समकालीन कविता विद्रोह और तनाव की कविता है क्यों?

उत्तर– समकालीन कविता के लिए राजनीति एक सजीव सच्चाई है। पंचवर्षीय योजनाओं में अरबों रूपये लगाने के उपरान्त भी गरीबी, बेकारी, मंहगाई, भुखमरी, अकाल आदि की स्थिति बनी रही है। हमारी गृह नीति और विदेश नीति असफल रही। इस प्रकार के वातावरण का साहित्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इस कविता में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश की भावना विद्यमान है। लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले आदि अत्यधिक आक्रोश के कवि हैं।

76. 'समकालीन कविता में पौराणिक संदर्भ किस प्रकार आए हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– समकालीन कविता में पौराणिक संदर्भों को लेकर लिखने वाले अनेक कवि हैं। अज्ञेय की असाध्य वीणा, नरेश मेहता की संशय की एक रात, कुंवर नारायण की चक्रव्यूह तथा जगदीश चतुर्वेदी की 'सूर्यपुत्र' जैसी कविताओं को लिया जा सकता है। सन् 1985 में प्रकाशित विश्वनाथ तिवारी की कविता 'टल गया एक महाभारत' इस बात का सबूत है कि आज का कवि अपनी रचनात्मक ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए मिथक और यथार्थ के अनेक रूपों को स्वीकार करता है।

77. समकालीन कविता में आम आदमी की स्थिति कैसी है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–समकालीन कविता को आम आदमी की कविता कहा गया है। उसमें सर्वत्र आम आदमी की खोज का प्रयास किया गया है। लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं –'बाहर कहीं से भी दबोचो आदमी की जात' ढीली पड़ गई। समकालीन कविता की भाषा अत्यंत सरल एवं दैनिक जीवन की भाषा है। यह आम आदमी की भाषा है।

78. राजस्थानी गद्य पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर– हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में राजस्थान ही संस्कृति और साहित्य का केन्द्र रहा। इस समय की भाषा डिंगल थी। चारण भाट कवियों ने धर्म, नीति, इतिहास, छन्द शास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे। इस काल की कुछ पुस्तकें हैं – रघुवरजस प्रकास, आनन्द रघुनन्दन, पंचाख्यान, भाषा भरथ, बेलि क्रिसन रुकमणीरी आदि। बाद में इसमें ब्रजभाषा का प्रयोग बढ़ गया और राजस्थानी गद्य का निर्माण लगभग बंद हो गया।

79. ब्रजभाषा गद्य पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर– ब्रजभाषा गद्य का सर्वप्रथम लेखन गोरख पंथी किसी लेखक को माना जाता है। गोरख सार गोरख गणेश गोष्ठी, महादेव गोरख संवाद इनकी गद्य रचनाएं हैं। 16वीं शताब्दी में बल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने श्रृंगाररक्ष मण्डन लिखा तथा 17वीं शताब्दी में पुष्टिमार्गी कवि ने चौरासी वैष्णव की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता

नामक पुस्तकें लिखीं, जिनका ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक मूल्य अब भी है। 1795 ई. में जयपुर नरेश प्रताप सिंह की आज्ञा से हीरालाल ने 'आइने अकबरी' का भाषा कथनिका नामक बड़ी पुस्तक लिखी।

80. खड़ी बोली ग्रंथ पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर– खड़ी बोली दिल्ली के आस पास बोली जाने वाली जनसाधारण की भाषा है। धीरे–धीरे खड़ी बोली विकसित होकर गद्य लेखन की मुख्य भाषा बन गई। गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली की प्रतिष्ठापना का एक अन्य कारण यह भी है कि अंग्रेजों ने अपना काम सुचारू रूप से चलाने के लिए जिस भारतीय भाषा को सीखा वह यही थी क्योंकि इसका प्रचलन समाज में सबसे अधिक था। खड़ी बोली गद्य की सर्वप्रथम रचना अकबर के दरबारी कवि गंग की चंद छन्द बरनन की महिमा (1570 ई.) है। इसके पश्चात् रामप्रसाद निरंजनी की भाषायोग वरिष्ठ रचना है।

81. लेखक चतुष्टय से अभिप्राय है?

उत्तर –खड़ी बोली गद्य के विकास की परम्परा में मुंशी सदासुख लाल नियाज, इंशा अल्ला खां, लल्लू जी लाल और सदलमिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई और इस में जानगिल क्राइस्ट ने हिन्दी उर्दू में गद्य की पुस्तकें तैयार करने की व्यवस्था की। लल्लू जी लाल और सदलमिश्र दोनों इस कॉलेज में काम करते थे पर सदासुख लाल और इंशा अल्ला खां ने स्वतन्त्र रूप से खड़ी बोली गद्य में लिया।

82. सदासुख लाल का परिचय दीजिए।

उत्तर –सदासुख लाल दिल्ली के निवासी थे और एक कंपनी में नौकरी करते थे। ये उर्दू फारसी में शायरी करते थे और उन्होंने इन भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखीं। नौकरी से रिटायर होने के पश्चात् इन्होंने विष्णु पुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक लिखी और हिंदी में श्रीमद्भागवत का सुखसागर के नाम से स्वतन्त्र अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दुओं की बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया यह इनके गद्य में जगह जगह पंडिताऊपन है। स्थान स्थान पर तत्सम शब्दावली के प्रयोग के द्वारा उन्होंने भावी साहित्यिक रूप की स्थापना का आभास दे दिया था।

83. हिन्दी गद्य के विकास में इंशा अल्ला खां का योगदान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –इंशा अल्ला खां उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। अनेक नवाबों की सेवा में रहकर इन्होंने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इनके द्वारा लिखित रानी केतकी की कहानी हिन्दी गद्य की पहली मौलिक रचना है। इन्होंने फड़कती हुई मुहावरेदार और विनोदपूर्ण शैली में लिखा। इन्होंने, अरबी, फारसी, अवधी, ब्रज और संस्कृत के शब्दों से बचकर खड़ी बोली में लिखने का प्रयास किया पर फिर भी फारसी ढंग के वाक्य विन्यास का प्रभाव इन पर स्पष्ट है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में, "गद्य में मुहावरों का ऐसा प्रयोग उनके पूर्ववर्ती किसी लेखक ने नहीं किया था और न ही किसी ने हिन्दी गद्य में इस कोटि की मौलिक रचना की थी।"

84. भारतेंदु युगीन हिन्दी निबन्ध पर एक प्रयोगवाद नोट लिखिए।

उत्तर –भारतेंदु हिन्दी के प्रथम प्रतिभा सम्पन्न निबन्धकार हैं। उन्होंने समाज सुधार, इतिहास, धर्म, पुरातत्व, यात्रा, कला, भाषा, इतिहास आदि विभिन्न विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। निबन्धों के द्वारा उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का जमकर प्रहार किया है। अंग्रेजी सरकार पर भी व्यंग्य किया है। रामायण का समय, काशी, कश्मीर कुसुम, संगीत सार, हिन्दी भाषा आदि उनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। इस युग के बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्री निवासदास, राधाचरण गोस्वामी आदि प्रमुख निबंधकार हैं। इस युग के निबंध आंख, भौं, नाक, कान आदि से लेकर सामाजिक साहित्यिक आदि सभी विषयों पर लिखे गए हैं।

85. हिन्दी गद्य के विकास में ईसाइयों का योगदान क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर –अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए ईसाई मिशनरियों ने अनेक स्कूल खोले। ईसाई लोग मुफ्त में ही अपने द्वारा छापे गए ग्रन्थों को लोगों को देने लगे। इनका गद्य उच्च कोटि का नहीं था। इसमें कृत्रिमता, शिथिलता, व्यर्थ शब्दों और मुहावरों का गलत प्रयोग था। इनका गद्य सरल और सीधा था। चलती भाषा में भावों को अभिव्यक्त किया गया था। शिक्षा संबंधी पुस्तकें और नागरी लिपि में सुंदर टाइप के लिए हमें ईसाई धर्म के प्रचारकों का आभार स्वीकार करना चाहिए। उनका गद्य के विकास में प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष सहयोग अवश्य रहा है।

86. राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दी ने हिन्दी के विकास में क्या योगदान दिया था?

उत्तर– शिवप्रसाद हिन्दी के पक्षपाती एवं संरक्षक अनेक विघ्नबाधाओं के आने पर भी इन्होंने हिन्दी के उद्धार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ये शिक्षा विभाग में इन्स्पैक्टर थे और अंग्रेजों के कृपाभाजन थे। इन्होंने हिन्दी में पुस्तकें लिखी और सहयोगियों से लिखवाई। इन्होंने इतिहास, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र आदि से संबंधित पुस्तकें छपवाई और हिन्दी की रक्षा की।

87. राजा लक्ष्मण सिंह की हिन्दी सेवाओं का वर्णन करो।

उत्तर– ये शिवप्रसाद की समझौतावादी नीति के कट्टर विरोधी थे। इनकी धारणा थी कि बिना उर्दू के शब्दों के प्रयोग के हिन्दी का सुन्दर गद्य लिखा जा सकता है। ये तत्सम शब्दों के पक्षपाती थे। जिसके कारण इनकी भाषा में कृत्रिमता आ गई है। इन्होंने प्रजा हितैषी नामक हिन्दी में एक पत्र निकाला तथा कुछ पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इन दोनों के सहयोग से हिन्दी का प्रचार कार्य जोर पकड़ गया था।

88. विभिन्न धर्म प्रचारकों ने हिन्दी के विकास में क्या योगदान दिया?

उत्तर– ईसाई धर्म की प्रतिक्रिया में राजा राममोहन राय ने बंगाल में वेदान्त और उपनिषदों का ज्ञान साथ ले ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने वेदान्त सूत्रों का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित कराया। उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म प्रचार के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। उन्होंने हिन्दुस्तान को आर्यावर्त और हिन्दी को आर्य भाषा का नाम दिया। सत्यार्थ प्रकाश में इन्होंने मुसलमानों और ईसाईयों की भर्त्सना की तथा अनेक पुस्तकें लिखी। पंजाब में हिंदी प्रचार का प्रायः समूचा श्रेय आर्य समाज को ही है।

89. द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के सम्पादक पद से भाषा में सुधार, सत्–साहित्य के प्रसार, लेखन निर्माण और पाठकों की ज्ञानवृद्धि का महान कार्य किया। इन्होंने लेखकों का सुसंस्कृत ढंग से बात करना सिखाया। अंग्रेजी के आदर्श निबंधकार बेकर के निबंधों का अनुवाद किया। इस युग के निबंधों के विषय गम्भीर हैं और वे शिष्ट और पढ़े लिखे लोगों के ही अधिक निकट हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास, अध्यापक पूर्ण सिंह, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि इस युग के मुख्य निबंधकार हैं।

90. शुक्ल युग के निबंधों पर नोट लिखिए।

उत्तर– इस युग के सर्वश्रेष्ठ हिंदी निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हैं। चिंतामणि में संगृहित निबंधों के माध्यम से शुक्ल जीने नए विचार, नई अनुभूति और नई निबन्ध शैली प्रस्तुत की। चिंतामणि (भाग दो) में उच्च कोटि के साहित्यिक, आलोचनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक निबन्ध हैं। इनमें शुक्ल जी के शास्त्रीय विषयों पर मौलिक, गंभीर एवं प्रौढ़ विचार प्रकट हुए हैं। उनका विषय प्रतिपादन रूखा न होकर रसात्मक है। शुक्ल युग के अन्य निबन्धकारों में डॉ. गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरि, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, महादेवी वर्मा आदि प्रमुख हैं।

91. शुक्लोत्तर युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– शकुलोत्तर युग में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नदंदुलारे वाजपेयी, वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा आदि प्रमुख हैं। आज के निबन्ध साहित्य मे. वर्णनात्मक एवं विचारात्मक निबन्धों का अभाव है। निबंधों में विवेचनात्मक भावात्मक एवं वैयक्तिकता की प्रधानता है।

92. प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– मुंशी प्रेमचन्द से पूर्व का युग उपन्यास का आरम्भिक युग माना जाता है। हिन्दी का पहला उपन्यास लाला श्री निवासदास द्वारा लिखा गया 'परीक्षा गुरू' माना जाता है। भारतेंदु युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की रचना भी की गई थी। श्रद्धाराम फिल्लोरी, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकान्ता संतति' ने हिंदी उपन्यास क्षेत्र में खूब धूम मचाई। नारी जागरण, समाज सुधार, रोमांच, इतिहास, मनोरंजन आदि विशेषताएं इस युग के उपन्यासों में मिलती हैं।

93. प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी उपन्यास पर एक नोट लिखिए।

उत्तर– हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द का आगमन एक बहुत बड़ी घटना है। उन्होंने उपन्यास को सामान्य जनजीवन से जोड़ दिया। उन्होंने सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, तथा गोदान जैसे अनेक उपन्यासों की रचना की। इस युग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण) आदि, बेचन शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावनलाल वर्मा, इलाचंद जोशी आदि प्रमुख हैं।

94. प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी सामाजिक उपन्यासों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर– इस युग में पर्याप्त मात्रा में सामाजिक उपन्यास लिखे गए। प्रसाद, कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्र नाथ अश्क आदिने समाज सुधार के नाम पर यथार्थवाद की आड़ में वर्जित विषयों पर लिखकर अश्लीलता का चित्रण किया। भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट आदि ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और स्वतन्त्रता के लिए समाज की रूढ़ परम्पराओं और पुराने मूल्यों के प्रति संघर्ष चित्रित किया है। नागर का बूथ और समुद्र व्यष्टि और समष्टि का प्रतीक है।

95. प्रेमचंदोत्तर साम्यवादी हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर –राहुल सांकृत्यायन के सिंह सेनापति, 'वो नगर से गांव तक' तथा यशपाल के दादा कामरेड, पार्टी कामरेड आदि उपन्यास साम्यवादी विचारधारा के पोषक हैं, जिनमें युग जीवन के संघर्ष का चित्रण किया गया है। इन्होंनें समाजके खोखलेपन को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। नागार्जुन, रांगेय राघव, गौरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि ने भी मार्क्स के सिद्धान्तों की पुष्टि करते हुए अपने उपन्यास लिखे। राजेन्द्र यादव का प्रेत बोलते हैं की साम्यवादी विचारधारा का उपन्यास है, जिस पर सारा आकाश नाम से फिल्म बन चुकी है।

96. प्रेमचंदोत्तर हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर –हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यासों की यह धारा बहुत क्षीण है। पूर्व प्रेमचन्द युग में जो ऐतिहासिक उपन्यास मिलते हैं, वे केवल इतिहास नामधारी हैं। वृंदावन लाल वर्मा, निराला, सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि का नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। चतुरसेन शास्त्री का नगर वधू एक संगठित ऐतिहासिक रचना है। अमृतलाल नागर के शतरंज के मोहरें और सुहाग के नुपूर प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

97. प्रेमचन्द के बाद के हिन्दी आंचलिक उपन्यास साहित्य पर विवेचन कीजिए।

उत्तर – अंचल का अर्थ है – जनपद या क्षेत्र विशेष। जिन उपन्यासों में किसी क्षेत्र विशेष या जनपद के जन–जीवन का समग्र चित्रण हो उन्हें आंचलिक उपन्यास कहते हैं। फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल', उदयशंकर भट्ट का 'लोक–परलोक' तथा 'सागर और लहरें', रांगेय राघव का 'काका और कब तक पुकारूं' आदि महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास हैं। इन उपन्यासों की कमजोरी उनकी स्थानीय बोली है। लेखक को अपनी जाति, धर्म, संस्कृति और वर्ग से अत्यधिक प्रेम होता है। इन उपन्यासों में यह प्रेम भी व्यक्त हुआ है। इन उपन्यासों की सफलता इनका यथार्थवाद है।

98. प्रेमचंदोत्तर मनोविश्लेषणात्मक हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर – आधुनिक मनोविज्ञान आरै मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रकाश में मानव मन की कुंठाओं, ग्रंथियों और दमित वासनाओं की व्यवस्था करने वाले उपन्यासों मनोविश्लेषणवादी कहलाते हैं। इस कोटि के अन्तर्गत आने वाले उपन्यासकारों पर फ्रायड, एडलर और युंग की विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उस दृष्टि से जैनेन्द्र कृत 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी', इलाचंद्र जोशी कृत 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया' तथा 'जहाज का पंछी' और अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' विशेष उल्लेखनीय हैं।

99. प्रेमचंदोत्तर युग के व्यक्तिवादी उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– कुछ उपन्यासकारों ने समाज सत्ता की अपेक्षा व्यक्ति सत्ता को महता प्रदान की है। उन्होंने व्यक्तिवादी जीवनदृष्टि से मानवीय मूल्यों और धारणाओं को व्याख्यायित किया है। इस वर्ग के अंतर्गत भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उषा देवी मिश्रा तथा उदयशंकर भट्ट आदि आते हैं। वर्मा जी के 'चित्रलेखा', 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते', 'वाजपेयी के दो बहनें', 'चलते–चलते, मिश्रा के 'पिया वचन का मोल' और भट्ट के 'नए मोड़' तथा 'एक नीड़ दो पंछी' आदि उपन्यासों में व्यक्ति की सत्ता और महत्ता का अत्यंत सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है।

100. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में लेख लिखिए।

उत्तर– स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी उपन्यासकारों की एक पूरी पीढ़ी उभर कर सामने आई है। इनके उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ को व्यापक स्वीकृति, व्यक्ति स्वतन्त्रता को प्रवृति तथा आधुनिक बोध की अनुभूति दर्शनीय है। इस दृष्टि से मोहन राकेश (अंधेरे बंद कमरे), राजेन्द्र यादव (उखड़े हुए लोग), उषा प्रियंवदा (रुकोगी नहीं राधिका), श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), मन्नु भण्डारी (आपका बंटी) आदि का योगदान अविस्मरणीय है।

101. हिंदी निबंध के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– "गद्यं के वीनां निकषं वदन्ति" के आधार पर हिंदी में आचार्य शुक्ल का कथन है कि "यदि गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है"। अतः जब तक किसी भाषा के गद्य का स्वरूप व्यवस्थित नहीं हो जाता, तब तक उच्चकोटि के निबन्धों का सृजन असंभव है। आधुनिक युग से पूर्व हिंदी में निबन्ध के अभाव का सबसे बड़ा कारण यह है कि उस समय व्यवस्थित और परिष्कृत गद्य अनुपलब्ध था। आधुनिक काल में मुद्रण यंत्र तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचलन और पाश्चात्य साहित्य के संपर्क के कारण ही हिन्दी निबन्ध का जन्म और विकास संभव हो सका है।

102. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी साहित्य का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– सरस्वती और इंदु नामक पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म हुआ। हिन्दी की प्रथम कहानी के रूप में चर्चित रानी केतकी की कहानी (इंशा अल्ला खां) राजा भोज का सपना (शिवप्रसाद सितारे हिन्द),

अद्भुत अपूर्व स्वप्न (भारतेंदु हरिश्चन्द) ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल) और इन्दुमति (किशोरीलाल गोस्वामी) इनके पश्चात् बंग महिला की 'ढुलाई वाली' तथा सन् 1909 में वृंदावन लाल वर्मा की 'राखी बंद भाई' का प्रकाशन हुआ।

103. प्रयोगशील परंपरा के हिंदी उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– कहानी और कविता की भांति उपन्यास क्षेत्र में भी आजकल कुछ नवीन प्रयोग किए गए हैं। धर्मवीर भारती का सूरजका सातवां घोड़ा में भिन्न भिन्न व्यक्तियों की अलग अलग कहानियों को एक सूत्रात्मकता के रूप देने का प्रयास किया गया है। रुद्र जी ने बहती गंगा में सत्रह कहानियों के द्वारा काशी नगरी के पिछले दो सौ वर्षों की ऐतिहासिक झांकी प्रस्तुत की है। गिरधर गोपाल ने चांदी के खण्डहर में केवल चौबीस घंटों की कथा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। ग्यारह सपनों का देश अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया है।

104. आधुनिकता बोध से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– आज के उपन्यास को भी आधुनिक औद्योगिकरण, बौद्धिकता, यन्त्रीकरण तथा पश्चिमी विचारधारा ने प्रभावित किया है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' और 'आने वाला कल' आधुनिकता से प्रभावित उपन्यास है। राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' समलैंगिक यौन सुख से लिप्त स्त्रियों की कहानी है। श्रीकान्त वर्मा, कमलेश्वर, नरेश मेहता, कृष्णा सोबती आदि ने आधुनिक जीवन की संवेदनाएं प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

105. प्रेमचंद और प्रसाद युग के कहानी साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– प्रेमचन्द और प्रसाद ने हिंदी कहानी साहित्य को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने कहानी को जन–जीवन से जोड़ा। आधुनिक कहानी का सूत्रपात उन्हीं से होता है। 1911 में प्रसाद की प्रथम कहानी ग्राम तथा प्रेमचन्द की सन् 1916 में पंच परमेश्वर कहानी छपी। प्रेमचन्द लगभग 300 कहानियां लिखीं। 'पूस की रात', 'नमक का दरोगा', 'कफन', 'ईदगाह' आदि। प्रसाद ने 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', 'इन्द्रजाल' आदि प्रसिद्ध कहानियां हैं। पाण्डेयवेचन शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावन लाल वर्मा आदि इस युग के उल्लेखनीय कहानीकार है।

106. प्रेमचंदोत्तर काल का कहानी साहित्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– प्रेमचन्दोत्तर काल में सर्वप्रथम आते हैं – मनोवैज्ञानिक कहानीकार। इनमें जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद जोशी तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि प्रमुख हैं। इन कहानीकारों ने घटना प्रधान कहानियों की जगह सूक्ष्म मनोविज्ञान तथा चरित्र प्रधान कहानियां लिखीं। जैनेन्द्र की पाजेब कहानी जगत प्रसिद्ध है। विपथगा, परम्परा कोठारी की बात आदि अज्ञेयजी की प्रसिद्ध कहानियां हैं। यशपाल, अमृतराय नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क रांगेय राघव तथा विष्णु प्रभाकर आदि इस युग के मुख्य कहानीकार हैं।

107. आधुनिक युग के कहानी साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर – आधुनिक युग के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु (आचंलिक कहानीकार), राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, अमरकान्त, धर्मवीर भारती, उषा प्रियंवदा आदि हैं। इनमें राजेन्द्र यादव का जहां लक्ष्मी कैद है, धर्मवीर भारती काचांद और टूटे हुए लोग, शैलेश मटियानी का मेरी तैंतीस कहानियां आदि प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। हरिशंकर परसाई, जे.पी. श्रीवास्तव, के पी सक्सेना, बेढब बनारसी आदि हास्य व्यंग्य के कहानीकार हैं।

108. जैनेन्द्र की कहानियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर – जैनेन्द्र ने अधिकांश कहानियां मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखीं, जिसमें हिन्दी कहानी क्षेत्र में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। उन्होंने बाह्य समस्याओं के स्थान पर आंतरिक समस्याओं को सहानुभूति ढंग से वर्णित किया है।

जिसमें इनमें बौद्धिक रोचकता बनी रहती है। इनमें पाठक को थका देने की प्रवृत्ति अधिक है। ज्वालादत्त शर्मा, व जनार्दन प्रसाद आदि ने इसी आधार पर अपनी कहानियां लिखी। इनमें यथार्थ और कोमल कल्पना का मिश्रण है।

109. अज्ञेय और उनके सहयोगी कहानीकारों का परिचय दीजिए।

उत्तर –अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता का समावेश तो अवश्य है लेकिन जैनेन्द्र जैसा नहीं। इसपर फ्रायड के यौन वाद का सीधा प्रभाव है। इन्होंने दमित वासनाओं और कुंठाओं का उन्मुक्त चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में जीवन सत्यों का अभाव है। अज्ञेय के कहानी संग्रह – विपथगा, कोठारी की बात, जयदोल आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी, पहाड़ी तथा नरोत्तम दास आदि अज्ञेय के सहयोगी कहानीकार थे।

110. यशपाल की कहानियों का परिचय दीजिए।

उत्तर– यशपाल हिन्दी कहानी साहित्य के श्रेष्ठ कथाकारों में से एक हैं। यह मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवादी दृष्टिकोण हैं और इनमें समाज की कुरीतियों की कटु आलोचना है। ये कला और जीवन में स्वाभाविकता के पक्षपाती हैं। इन्होंने सामाजिक ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियां लिखी हैं, जो अत्यंत संयत और स्वाभाविक है। उपेन्द्रनाथ अश्क का कहानी संबंधी दृष्टिकोण यशपाल जैसा ही है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रामप्रसाद पहाड़ी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आदि भी इसी पथ के राही कहानीकार हैं।

111. साठोत्तरी कहानी साहित्य का निरूपण कीजिए।

उत्तर– सन् 1960 के बाद भारतीय जीवन में मोहभंग की स्थिति आती है। ऐसे समय में लगा कि जिंदगी का सारा अंदरूनी ढांचा भुरभुरी की तरह ढहते जा रहा है। मुक्त लेखकों के एक वर्ग ने यह घोषणा कर दी कि वह समकालीन जीवन के आंदोलन के स्तर पर एक पहचान लेकर आया है। इस प्रकार यह समय एक नया तेवर लेकर आगे आया है। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, कमलानाथ, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा आदि इस युग के कहानीकार हैं।

112. हिंदी अकहानी पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर– अकहानी के जन्मदाता वो कहानीकार हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता के बाद होश संभाला। यद्यपि अकहानी भी कहानी है पर वह अपने से पिछले कहानियों की विशेषताओं से मुक्त है। नई कहानी में जो अनुभूति की प्रमाणिकता और भोगे हुए यथार्थ का स्वर था वह अब असत्य और कल्पित माना जाने लगा। दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, गंगाप्रसाद विमल, शानी परेश आदि अकहानी के प्रमुख कहानीकार हैं। इन कहानियों का विषय – लोकतन्त्र की विद्रुपता, युवावर्ग की बौखलाहट आदि हैं।

113. हिंदी की सचेतन कहानी साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर– सन् 1964 के आस–पास कहानी के क्षेत्र में नए नया आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इसे सचेतन कहानी नाम दिया गया। इसके प्रवर्तक महीप सिंह हैं। उनके संपादन में एक सचेतन पत्रिका निकली और इस तरह के अन्य कहानीकार इन आंदोलन में शामिल होते गए। सचेतन कहानी में यथार्थ के प्रांत, परिवेश के प्रांत, जीवन मूल्यों के प्रति एक नई दृष्टिका बोध होता है। महीप सिंह ने कहा है –"जीवन को उसकी सारी विसंगतियों में जीकर झेलने की दृष्टि ही सचेतन दृष्टि है। महीप सिंह, श्याम परमार, मनहर चौहार, मधुकर सिंह इस कहानी आंदोलन के मुख्य कहानीकार हैं।

114. अचेतन कहानी आंदोलन पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– सातवें दशक से पूर्व कुछ लोग सचेतन कहानी की प्रतिक्रिया में अचेतन कहानी के नाम का नारा बुलन्द करने वाले भी देखे गए हैं। इन कहानियों का विषय समाज के अलगाव और बिखराव का चित्रण है। संत्रास, भय,

कुंठा, हताशा आदि का चित्रण ऐसी कहानियां करती हैं। अचेतन कहानी के प्रवर्तक गिरिराज किशोर तथा काशीनाथ सिंह आदिमा ने गए हैं।

115. सक्रिय कहानी आंदोलन का विवेचन कीजिए।

उत्तर –सन् 1980 के आस–पास हिंदी कहानियों के नाम के साथ एक और आंदोलन जुड़ता हुआ दिखाई देता है। कुछ कहानीकारों ने पश्चिम की एक्टिव स्टोरी की तरह हिंदी में भी कहानी लिखना आरंभ किया इसका आरंभ मंच पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ। इसके संपादक राकेश वत्स हैं। इस कहानी के लेखकों ने सक्रिय कहानी को समझाते हुए उसका स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया है – "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है – आदमी की चेतना,दर्जा और जीवंतता की कहानी।"

116. हिंदी नाटक के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर – हिन्दी नाटक के विकास के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। विद्वानों का मत है कि हिन्दी नाटक का उद्भव काल 13वीं शताब्दी और उससे भी पहले विद्यापति से माना जाता है। वैसे नाटक का सम्यक् विकास आधुनिक काल मे भारतेंदु काल से ही माना गया है। डॉ. दशरथ ओझा ने गय–सुकुमार (सन् 1232) नामक नाटक को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। दूसरे विद्वान गोपालचन्द्र के नहुष को प्रथम मानते हैं। परन्तु नाटक कौन सा प्रथम है यह विवादितहै। संक्षेप में यूं कह सकते हैं – हिन्दी नाटक का उद्भव भी हिन्दी उपन्यास एवं कहानी की भांति 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हुआ है।

117. नई कहानी की शिल्पगत विशेषताओं का परिचय दीजिए।

उत्तर – शिल्प की दृष्टि से नई कहानी बहुत आगे बढ़ गई है। उसमें साकेंतिकता, प्रतीकात्मकता, बिम्ब विधायकता, भाष्य की सृजनशीलता, शैली की नित्य नूतनता दर्शनीय है। नई कहानी की सांकेतिकता, कुंठा, ग्रस्त, स्त्री पुरुषों की मनो ग्रंथियोंको खोलकर रख देने में सक्षम है। जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए नए कथाकारों ने कई तरह के बिम्ब विधान किए हैं। निर्मल वर्मा, कमलेश्वर और अज्ञेय की कहानियों में अर्थपूर्ण बिम्ब विधान के उदाहरण मिलते हैं।

118. नई कहानी के वैयक्तिकता संबंधी पहलुओं का उद्घाटन कीजिए।

उत्तर – नई कहानी के वैयक्तिक सदंर्भ जीवन के गहन गंभीर पत्रों को ही व्यक्त करते हैं। इस क्रम की सारी कहानियां संबंधों के बनने और सम्बन्धों के टूटने की हैं व संबंधों से टूटे व्यक्ति के एकांकीपन की पीड़ा इन कहानियों में व्यक्त है। नई कहानियों में स्त्री पुरुष के बदले हुए संबंधों का चित्रण हुआ है। युद्ध स्वतन्त्रता और बाद में तेजी से बढ़ते हुए औद्योगिकरण–शहरीकरण की परिस्थितियों को नई कहानी में सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

119. प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रवृत्तियां क्या थीं?

उत्तर –प्रेमचन्द के बाद वाले उपन्यासों में विद्रोह का स्वर उभरा है। आर्थिक शिथिलता व शोषण के विरुद्ध विद्रोह इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसी के साथ पूर्व स्थापित सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोही प्रवृति भी मिलती है। प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यासों में स्त्री–पुरुषों के यौन संबंधों को लेकर कई प्रश्न उठाए गए हैं व कई सम–विषमस्थितियों का यथार्थ व मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी आदि के उपन्यासों में काम– कुण्ठाओं और यौन विकृतियों का चित्रण व स्त्री–पुरुष के अवैध संबंधों की समस्याओं का चित्रण बहुतायत मिलता है।

120. प्रेमचन्द युग की कहानियों की मुख्य प्रवृतियां क्या थी?

उत्तर– प्रथम बार कहानियों का विषय उच्चवर्ग के स्थान पर मध्यम और निम्न वर्ग को बनाया गया है। सामाजिक

और कौटुम्बिक समस्याओं, विसंगतियों तथा विद्रुपताओं का उद्‌घाटन हुआ है। साम्यवाद के प्रभाव से शोषक–शोषित मनोवृत्ति का चित्रण करने की प्रवृति भी दिखाई पड़ती है। इस युग की कहानियों में संगठित कथानक, अनुभव की प्रौढ़ता, मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण, संवेदनशीलता का समन्वय है। इस युग की कहानियों में स्वाधीनता–संग्राम, गांधीजी के असहयोग आंदोलन, अहिंसक क्रांति, समाज सुधार यथार्थ जीवन की विभीषिका, आर्थिक विपन्नता का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

121. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के नायक का स्वरूप कैसा था?

उत्तर–स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अवतरित हुआ नायक प्रेमचन्द, यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय की परम्परा से सर्वथा भिन्न है। नया–नायक व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही स्तरों पर विक्षुब्ध हो गया और मूल्यहीनता के कारण दिशाधारा की भांति भटकने को विवश हो गया। इन उपन्यासों का नायक उस पूरी भीड़ का ही एक चेहरा है जो रोजगार के लिए दफ्तरों, झूठे इंटरव्यू और काम की लालसाओं में भटक रहा है। वह नायक पराजित होकर और क्रुद्ध होकर अपने दायरे में छटपटाता और स्वयं को विस्थापित अनुभव कराता है तथा कुण्ठाग्रस्त होकर आत्महत्या को अपनी अंतिम परिणति के रूप में चुनता है।

122. 'उपन्यास में यथार्थवाद की अवधारणा है।' टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– कलाकार जीवन को दो प्रकार से चित्रित करता है – एक में वह अपने आदर्शों, कल्पना व धारणाओं का प्रयोग करता है, दूसरे में वह संसार को जैसा देखता है वैसा ही चित्रित करता है। प्रथम स्थिति में आदर्शवाद और द्वितीय यथार्थवाद है। यथार्थवाद समाज की प्रमुख व ज्वलंत समस्याओं का चित्रण करता है। यथार्थवाद यह कहकर सामाजिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है। इसमें उच्च वर्गीय, मध्यवर्गीय वनिम्न वर्गीय व्यक्तियों का समान रूप से चित्रण करता है। यथार्थवाद ने कला का संबंध विज्ञान से किया और उसे विश्लेषण शक्ति से विभूषित किया है।

123. हिन्दी कहानियों में प्रेमचन्द का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर– प्रेमचन्द का आविर्भाव हिन्दी कहानी युग की एक महत्वपूर्ण घटना थी। सन् 1916 से लेकर सन् 1936 तक उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार – प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में दलित मानवता के प्रति सहानुभूति का भाव प्रदर्शित किया है। उनका आदर्शवाद उनकी इसी सहानुभूति का परिणाम है। वह उनकी आत्मा से निकला है। कौरा दिखावटी नहीं है। मनोवैज्ञानिक आधार लेकर चलने वाली उनकी आदर्शवादी कहानियां उनकी कहानी कला के चरम सौंदर्य प्रदर्शित करती हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की टक्कर का कलाकार हिंदी में आज तक नहीं जन्मा है।

124. भारतेंदु युगीन हिन्दी नाटक साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– भारतेंदु जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, भारत दुर्दशा, विषस्यविषभौषद्यम, अंधर नगरी आदि। इन्होंने इन नाटकों में इतिहास, समाज एवं राष्ट्रीय विषयों को अपनाया है। भारतेंदु जी के नाटकों पर संस्कृत तथा बंगला नाटकों का प्रभाव है। इनके नाटकों में पूर्व और पश्चिम का समन्वय दिखाई देता है। प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, श्री निवास दास, प्रेमधन आदि इस युग के मुख्य नाटककार हैं।

125. द्विवेदी युगीन हिन्दी नाट्य साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग सुधारवादी युग कहलाता है। नाटक के विकास में इस युग का योगदान तो है किन्तु कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से कुछ नया जोड़ने में असमर्थ रहा है। किन्तु इस अनुवाद कार्य का विशेष

महत्व यह है कि इसी कारण पारसी कम्पनियों में अभिनीति नाटकों में उर्दू का स्थान हिंदी को मिलने लगा। इस काल के नाटककारों में नारायणप्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक, आगाह, कश्मीरी, तुलसीदास शैदा और हरिकृष्ण जौहर के नाम अग्रगण्य हैं।

126. प्रसादयुगीन हिन्दी नाट्य साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर– जयशंकर प्रसाद का आगमन हिन्दी नाटक के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उनके नाटकों में हिन्दी नाटक–कला का विकास अपने यौवन काल को पहुँच चुका था। प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। सज्जन, करुणालय, राज्यश्री, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश ऐतिहासिक हैं। यद्यपि रंगमंच की दृष्टि से प्रसाद के नाटक अधिक सफल नहीं हैं तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रसाद अपने युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र, गोविन्द दास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द बल्लभ पंत आदि इस युग के मुख्य नाटककार हैं। इनके नाटकों पर गांधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

127. प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर– प्रसादोत्तर हिंदी नाटक का बहुमुखी विकास हुआ है। हरिकृष्ण प्रेमी, जिन्होंने प्रसाद युग में लिखना आरम्भ किया था। किंतु वे प्रसादोत्तर युग तक लिखते रहे, उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। रक्षाबंधन, स्वप्न भंग, प्रतिशोध, आहुति आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। वृंदावन लाल वर्मा, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, मोहनराकेश, रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि इस युग के प्रमुख नाटककार हैं। इनके नाटकों में विवाह, जाति–पांति, भेदभाव, सामाजिक विषमता आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

128. स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी नाटकों का विवेचन कीजिए।

उत्तर – स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जहां विभिन्न प्रकार के मौलिक नाटकों की रचना की गई वहां पंजाबी, बंगला, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी आदि भाषाओं के नाटकों का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध किया गया है। इस युग में ऐतिहासिक एवं समस्याप्रधान नाटकों के अतिरिक्त भाव प्रधान (नीतिनाट्य) तथा प्रतीक नाटक भी लिखे गए हैं। विष्णु प्रभाकर, चिरंजीत, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर आदि इस युग के प्रमुख नाटककार हैं।

129. ऐतिहासिक हिन्दी नाटक पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर –नाटककार जयशंकर प्रसाद ने मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों की रचना की थी। प्रसाद ने 1910 से 1933 तक निरंतर नाटकों की रचना की जिनमें राज्यश्री, स्कन्दगुप्त चंद्रगुप्त जनमेजय का नागयज्ञ आदि प्रमुख है। इसके साथ ही वृंदावनलाल वर्मा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविंद दास उदय शंकर भट्ट आदि नाटककार भी इसी श्रेणी के हैं। इन्होंन अपने देशवासियों के आत्मगौरव, स्वाभिमान, उत्साह और प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरवपूर्ण संदर्भों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है।

130. पौराणिक नाटक साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर– पौराणिक विषय को आधार बनाकर अनेक नाटककारों ने नाटकों का प्रणयन किया। प्रसाद, सुदर्शन, गोविन्द बल्लभ पंत, माखनलाल चतुर्वेदी आदि पौराणिक नाटककार हैं। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से समाज पर कटु व्यंग्य किए हैं। मेघनाथ, उर्मिला, सीता की मां, सुदामा आदि प्रमुख पौराणिक नाटक हैं। उदयशंकर भट्ट को पौराणिक नाटककारों में प्रतिनिधि नाटककार कहा जा सकता है। इनके अम्बा और सागर विजय प्रमुख पौराणिक नाटककार हैं।

131. अनूदित नाट्य साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर– अनूदित नाटकों की जो परम्परा भारतेंदु और द्विवेदी युग से चली आई थी वह अब भी अक्षुण्ण रूप से चल रही है। अन्य भाषाओं के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करते हिन्दी के नाटक साहित्य को समृद्ध किया जा रहा है। बंगला, मराठी, कन्नड़ आदि भारतीय भाषाओं के अनेक नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया गया है। स्वयं भारतेंदु ने विद्यासुंदर, पाखण्ड विडम्बना, धनंजय, विजय, कर्पूर मंजरी आदि अनूदित नाटकों की रचना की। जीत शर्मा, अनिल कुमार मुखर्जी, कृष्ण बल देव आदि ने विदेशी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

132. मार्क्सवादी या प्रगतिवादी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– जीवन के आर्थिक असंतुलन, वर्ग संघर्ष, मजदूर तथा शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण तथा शोषक वर्ग, मजदूर तथा शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण तथा शोषक वर्ग की भर्त्सना इन उपन्यासों की कथावस्तु होती है। यशपाल इस क्षेत्र के अग्रणी कथाकार हैं। उनके दादा कामरेड, मनुष्य के रूप तथा देशद्रोही इस प्रवृति के प्रमुखतम उपन्यास हैं। नागार्जुन इस प्रवृति के दूसरे बड़े लेखक हैं। उनके कुंभीपाक, बाबा बटेश्वर नाथ प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, रामेश्वर शुक्ल, अंचल इस श्रेणी में आते हैं।

133. मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास साहित्य का निरूपण कीजिए।

उत्तर– मानव की हीन मानसिक ग्रंन्थियों, कुंठाओं, प्रतिक्रियाओं एवं मनोविश्लेषण की चर्चा उन उपन्यासों का प्रमुख विषय होता है। ऐसे साहित्य पर फ्रायड के सिद्धान्तों की छाप स्पष्ट है। जैनेन्द्र के उपन्यास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ अंतश्चेतनवादी उपन्यास हैं। परख, सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा, विवर्त, अनाम स्वामी, मुक्तिबोध उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त इलाचंद जोशी, अज्ञेय, नरेश मेहता, डॉ. देवराज आदि के मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं।

134. राजनैतिक उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– समाज में फैले भ्रष्टाचार शासन की पैंतरे बाजियां तथा उनमें पिसती जनता का प्रतीकात्मक व्यंग्यात्मक चित्रण ही इन उपन्यासों का आमतत्व है। श्री लाल शुक्ल का 'रागदरबारी' भगवती चरण वर्मा का सबहिं न चावत राम गोसाई, शिव प्रसाद सिंह का अलग अलग वैतरणी, बदी उज्जमां का एक चूहे की मौत, गुरुदत्त का दो लहरों की टक्कर मणि मधुकर का सफेद मेमने इस प्रवृति की श्रेष्ठ कृतियां हैं।

135. आलोचना का अर्थ स्पष्ट करते हुएए उसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर– आलोचना शब्द लोच धातु से बना है जिसका अर्थ होता है – देखना। किसी वस्तु या कृति की सम्यक (भली प्रकार) व्याख्या उसका मूल्यांकन आदि करना आलोचना है। भारतीय साहित्य में आलोचना की प्राचीन परिपाटी है। संस्कृत साहित्य में इसका चरम विकास हुआ है जिनकी आलोचना का आरम्भ हम भक्तिकाल से मान सकते हैं। आधुनिक युग में प्रैस के विकास तथा गद्य के विकास से प्राचीन आलोचना में पाश्चात्य प्रणाली का मिश्रण हुआ। आधुनिक आलोचना का वास्तविक आरम्भ गद्यकाल की देन है। गद्य के आविर्भाव से अनेक पत्र–पत्रिकाएं निकलने लगीं। इन्ही पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से आधुनिक आलोचना का श्रीगणेश माना जाता है।

136. भारतेंदु युगीन हिन्दी आलोचना पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर– आधुनिक काल के जनक भारतेंदु ने हिन्दी की प्रत्येक विधा पर शुरुआत की समीक्षा की। इसका अपवाद नहीं है। भारतेंदु ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से आलोचनात्मक लेख लिखे। उन्होंने कवि वचन सुधा तथा हरिश्चन्द्र मैगजीन में कुछ नोट समालोचना के नाम से निकाला करते थे। श्रीनिवास दास के संयोगिता स्वयंवर नाटक पर बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप पत्रिका में एक छोटी समालोचना लिखी। इसके अतिरिक्त बद्रीनाथ चौधरी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि इस युग के आलोचक हैं।

137. द्विवेदी युगीन हिन्दी आलोचना पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–महावीर प्रसाद द्विवेदी के महान् प्रयासों से आलोचना विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी आलोचना के स्वरूप को व्यवस्थिति किए एवं अपने युग के आलोचकों का मार्ग दर्शन कर उन्हें नई दिशा प्रदान की। इस युग की आलोचना को पांच भागों में बांट सकते हैं –1. शास्त्रीय आलोचना, 2. तुलनात्मक आलोचना, 3. अनुसंधानपरक आलोचना, 4. परिचयात्मक आलोचना, 5. व्याख्यात्मक आलोचना। द्विवेदी जी के संबंध आचार्य शुक्लने कहा है – "द्विवेदी जी ने नई पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया।" डॉ. श्यामसुंदर दास, पदम सिंह, कृष्णबिहारी मिश्र आदि इस युग के मुख्य आलोचक हैं।

138. शुक्ल युगीन हिन्दी आलोचना साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्हें हिन्दी का प्रथम प्रौढ़ आलोचक माना जा सकता है। शुक्ल एक सुनिश्चित मानदण्ड तथा विकसित समीक्षा पद्धति लेकर आलोचना के क्षेत्र में आए। इनकी आलोचना के तीन रूप हैं –सैद्धान्तिक, ऐतिहासिक, व्यावहारिक आलोचना। डॉ. श्यामसुंदर दास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गुलाब राय आदि इस युग के मुख्य आलोचक हैं।

139. शास्त्रीय सैद्धान्तिक आलोचना का विवेचन कीजिए।

उत्तर– सद्धैान्तिक आलोचना में समस्त काव्य अंग, काव्य तत्व, काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य के लक्षण आदि का मूल्यांकन किया जाता है। इस युग के नए तत्व चिंतकों ने नई आलोचना नाम से लिखना आरम्भ किया। इनके मूल में विदेशी आलोचना साहित्य का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनकी भाषा जटिल है, पाठक जान ही नहीं पाता कि आलोचक क्या कहना चाहता है। इन आलोचकों में अस्पष्टता एवं भ्रांति सर्वत्र है। डॉ. नगेन्द्र, डॉ. देवराज, डॉ. लीलाधर, बाबू गुलाबराय आदि इस श्रेणी के आलोचक हैं।

140. मनोविश्लेषणकारी आलोचना का परिचय दीजिए।

उत्तर– हिंदी में मनोविश्लेषण वादी आलोचना भी प्रभुत्व में आई। फ्रायड, एडलर यंग आदि ने माना है कि समाज भय से मन में उत्पन्न होने वाली कामवासना तथा अनेक अन्य प्रकार की इच्छाएं मन के भीतर–ही–भीतर उमड़ती–घुमड़ती रहती है और कुछ समय के पश्चात् वहीं कुंठाओं को जन्म देती है। यही कुंठाएं साहित्यकारों के साहित्य में दिखाई देती हैं। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, धर्मवीर भारती आदि ने अपने साहित्य में इसे स्थान दिया है और साथ ही आलोचनाएं लिखकर इस सिद्धान्त का समर्थन किया। अज्ञेय का त्रिशंकु और आत्मेनपद तथा इलाचन्द्र जोशी का साहित्य चिंतनविवेचना, विश्लेषण साहित्य चिंतन आदि रचनाओं में मनोविश्लेषणवादी आलोचना का रूप मिलता है।

141. प्रयोगवादी आलोचना पद्धति का परिचय दीजिए।

उत्तर– प्रयोगवादी कवियों ने अपनी पुस्तकों का मूल्यांकन करने के लिए एक भिन्न आलोचना पद्धति का आरम्भ किया जो इलियट आदि पश्चिमी विचारकों से प्रभावित है। आलोचकों ने इस आलोचना को नई आलोचना का नाम दिया है। इसमें कलाकार के अनुभूति और सामाजिक पक्ष को महत्व न देकर रूप विधान को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह भावना है और भाषा शैली विषयवस्तु आदि के क्षेत्र में नए–नए प्रयोग किए गए हैं जिसका मूल मंत्र व्यक्ति स्वतन्त्रता है। अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, डॉ. जगदीश गुप्त आदि इस श्रेणी के मुख्य आलोचक हैं।

142. शौष्ठववादी आलोचना पद्धति पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– इसमें वैयक्तिकता पर आधारित तटस्थता के साथ साथ मूल्यांकन और निर्णय को महत्व दिया गया है। इस

पद्धति के आरम्भिक रूप के दर्शन पंत, निराला, महादेवी, वर्मा आदि के काव्य सग्रहों की भूमिकाओं के रूप में लिखे गए आलोचनात्मक निबन्ध हैं। नंददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, गंगाप्रसाद पाण्डेय आदि ने इसी पद्धति को अपनाया है। ये पद्धति भी बहुत प्रचलित नहीं हुई है। वर्तमान युग में ऐसी आलोचना कभी–कभी दिखाई दे जाती है।

143. प्रगतिवादी आलोचना साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– इस युग में एक ऐसी समीक्षा पद्धति का उदय हुआ जो काफी सशक्त बनी रही है। इसे मान सेवाएं या प्रगतिवादी पद्धति कहते हैं। इनका दृष्टिकोण पूर्ण रूप से समाजवादी है। ऐसे जन–जीवन से जुड़े हुए साहित्य के समर्थक हैं। जिसमें शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि का मार्मिक चित्रण किया गया हो। इन्होंने व्यक्तिवाद या आदर्शवाद का विरोध करते हुए साहित्य जगत में एक निराला जैसे छायावादी कवि भी प्रगतिवादी कविताएं लिखने लगे। ये बाद में प्रगतिवादी आलोचक दो वर्गों में विभाजित हो गए थे। एक वर्ग ने प्राचीन साहित्य की प्रशंसा की तथा दूसरे ने उसका बहिष्कार करने की बात की। डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिवादी आलोचकों में प्रमुख हैं।

144. रेखाचित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर– रेखाचित्र को अंग्रेजी में इसका नाम स्केच है। रेखाचित्र में किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में कर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन किया जाता है। रेखाचित्र में सांकेतिकता अधिक रहती है। लेखक कम से कम शब्दों में किसी व्यक्ति या वस्तु की मुख्यतः विशेषता को उभार देता है। संस्मरण में चित्र–शैली का प्रयोग किया जाता है। रेखाचित्रों में कल्पना की प्रधानता एवं घटनाओं की समग्रता रहती है। रेखाचित्रकार शब्दों और वाक्यों के संकेतों से बहुत कुछ कह डालता है।

145. रेखाचित्र की परिभाषा दीजिए।

उत्तर– विभिन्न विद्वानों ने रेखाचित्र की परिभाषा दी है। श्री भगीरथ मिश्र के अनुसार "शब्द चित्र में किसी व्यक्ति की यथार्थ तथा वास्तविकता चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न होता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में – रेखाचित्र में उसे कहते हैं। जिसमें रेखाएं हो पर मूर्त अर्थात् उतार चढ़ाव, दूसरे शब्दों मे कथानक का उतार चढ़ाव आदि न हो, तथ्य का उद्‌घाटन मात्र हो। श्री विनय मोहन शर्मा का मत है – रेखाचित्र में व्यक्ति, घटना या दृश्य का अंकन होता है। इन विभिन्न भाषाओं से स्पष्ट होता है कि रेखाचित्र में किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का शब्दों के माध्यम से मर्मस्पर्शी चित्रण किया जाता है।

146. रेखाचित्र की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– रेखाचित्र में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की विशिष्टताओं का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया जाता है। इसमें सूक्ष्म चित्रण एवं विश्लेषण का होना आवश्यक है। इसके वर्ण्य विषय में यथार्थता होती है, साथ ही कल्पना का भी थोड़ा सा पुट विद्यमान रहता है। इसमें संवेदनशीलता, सहृदयता तथा प्रभावोत्पादकता का होना भी जरूरी है। रेखाचित्र की भाषा सांकेतिक, भावविषमयी वर्णनात्मक, व्यावहारिक, काव्यमयी, बोधगम्य तथा सरस होती है। इनमें निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग मिलता है। कथात्मक, निबन्ध तरंग, वर्णनात्मक, संवाद, सूक्ति, डायरी, सम्बोधन, आत्मकथात्मक।

147. निराल जी के रेखचित्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर– सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के कुल्ली भाट और बिल्लेसुर बकरिहां के उपन्यास और रेखाचित्र दोनों के अतंर्गत स्वीकृति प्रदान की गई है। निराला के उपन्यासों की अपेक्षा रचनाओं की मौलिक भिन्नता इस बात से सिद्ध है। कि इसमें निरालाजी ने यथार्थ व्यक्तियों को अपनी लेखनी का उद्देश्य बनाया है। इन रेखाचित्रों में निराला की भाषा

लोक संस्कृति के तत्वों से ओतप्रोत तथा मुहावरेदार है। जिसमें गजब की शक्ति तथा स्वाभाविकता भरी हुई है। शब्द अनायास एवं सहज रूप में आगे–आगे चलते हैं। भाषा में न कृत्रिमता है और न प्रयत्नशीलता।

148. डॉ. नगेन्द्र द्वारा रचित रचनाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– डॉ. नगेन्द्र के चेतना के बिम्ब में दस रेखाचित्र संस्मरण हैं। इन चित्रों में विश्लेषण का प्राधान्य होने के कारण तटस्थता का गुण अपनी सहज छटा बखूबी दिखा सका है। डॉ. नगेन्द्र आलोचक शास्त्रकाल और कवि के समन्वय की निष्पत्ति है, अतः उनके रेखाचित्रों में हार्दिकता का आधिक्य कहीं नहीं है। वरन् कहीं कहीं तो इसका अभाव भी अनुभव होता है। उनके वर्णनों में स्पष्टता, खण्ड–खण्ड बात को समझाने की क्षमता इतनी उग्र है कि लगता है उनका अध्यापक रेखाचित्रकार पर हावी हो बैठा है। उनकी यह विशेषता सभी रेखाचित्रों में है।

149. विष्णु प्रभाकर के रेखाचित्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर– विष्णु प्रभाकर के कुछ शब्द कुछ रेखाएं तथा हंसरी निझर दहकती भट्टी में रेखाचित्रात्मक रचनाएँ हैं। इनमें रेखाचित्रों के अतिरिक्त संस्मरण और यात्रा वृत्तान्त भी हैं। विष्णु प्रभाकर अपने रेखाचित्रों को सामान्यतः प्राकृतिक चित्रण से प्रारम्भ करते हैं क्योंकि उन्हें पाठकों को अपने विषय की ओर आकृष्ट करने का यही सबसे उचित माध्यम प्रतीत होता है। विष्णु प्रभाकर घटनाओं और स्थितियों को दो परस्पर जोड़कर देखने के आदी हैं। वे सामाजिक स्थितियों के पीछे निहित विषमताओं को सामने लाने में दक्ष हैं।

150. निर्मल वर्मा के रेखाचित्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चादंनी' यात्रा वृतातं न होकर स्मृति खण्डों का एलबम है जिसमें अनेक तारों जैसी यादें सर्वत्र झिलमिला रही हैं। वर्मा ने आइसलैण्ड के एक किसान परिवार की सांस्कृतिक स्थिति का जो चित्र दिया है, वह उनकी गहरी पैठ और सांस्कृतिक सूत्र को ही प्रकट नहीं करता वरन् अन्य यूरोपीय देशों की सांस्कृतिक स्थिति को भी तुला पर रख देता है। निर्मल वर्मा अनुभूति के चरण क्षणों में भी सामाजिकता के सूत्र जोड़े रखते हैं।

151. रिपोर्ताज से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– रिपोर्ताज अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट से भिन्न है पर यह उससे संबंधित अवश्य रहा है। सामान्य रूप से रिपोर्ट लिखने या लिखवाने का संबंध सूचक देने या भेजने से जोड़ा जाता है। इसमें केवल तथ्यों पर बल दिया जाता है। रिपार्ताज में कानों सुनी या आंखों देखी बात को इतने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका प्रभाव मन–मस्तिष्क पर गहरा पड़ता है। "रिपोर्ताज" फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। जिस रचना में वर्ण्य विषय का आंखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हृदय तंत्र के तार झंकृत हो उठें और वह उसे भूल न सके। उसे रिपोर्ताज कहते हैं।"

152. हिन्दी रिपोर्ताज लेखकों का नामोल्ल्लेख कीजिए।

उत्तर– प्रकाशचन्द्र गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामनारायण उपाध्याय, भदन्त आनन्द कौसाल्यायन, शिवसागर मिश्र, डॉ. धर्मवीर भारती, कन्हैया लाल मिश्रा प्रभाकर, शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकांत वर्मा, डॉ. जयभगवान गोयल आदि ने श्रेष्ठ रिपोर्ताज लिखे हैं। इनके द्वारा रचित रिपोर्ताज के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ प्रमुख रिपोर्ताज संग्रह–रेखाएं और चित्र, देश की मिट्टी बुलाती है, वे लड़ेंगे हजार साल, प्लाट का मोर्चा, अपोलो का रथ आदि हैं। इनमें बंगाल का अकाल, आजाद हिन्द फौज विभाजन की स्थितियां और विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है। भारत–चीन, भारत–पाक युद्धों के अवसरों पर इस विधा के लेखन को विशेष बल मिला था। बाद में बंगलादेश के उन्नयन ने भी इस प्रवृति को विशेष बढ़ावा दिया था।

153. पत्र लेखन साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर– पत्रों का संबंध व्यक्तिगत जीवन से होता है। प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी किसी न किसी को पत्र अवश्य लिखता है। दूर बैठे व्यक्ति तक अपने विचार पहुंचाने का यह एक प्रभावी तरीका है। पत्र की कलात्मकता ही उसे साहित्यिक सिंहासन पर बैठा देती है। वैचारिक या भावात्मक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति के ये पत्र बहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। देश काल की परिस्थिति, प्रवृतियों और इतिहास का ज्ञान भी उसके पत्रों के माध्यम से होता है जैसे– प्रसिद्ध उर्दू शायर मिर्जा गालिब के पत्रों के माध्यम से सन् 1857 की क्रांति का स्वरूप, उसके कारण और दिल्ली की बदहाली का पूरा विवरण हमें मिल जाता है।

154. हिंदी में साक्षात्कार विधा का उद्‌भव कैसे हुआ?

उत्तर– हिन्दी में साक्षात्कार विधा के दर्शन दो महायुद्धों के बीच होने लगे थे। इस विचार का आरम्भ बनारसी दास चतुर्वेदी के द्वारा किया गया था। उन्होंने सन् 1931 में रत्नाकर से बातचीत कर उसे लिपिबद्ध किया था जो विशाल भारत नामक पत्र में छपी थी। सन् 1932 में प्रेमचन्द के साथ 'दो दिन' नामक साक्षात्कार भी प्रकाशित हुआ था। सन् 1941 में जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा लिया गया भदन्त आनन्द कौसल्यायन साक्षात्कार प्रसिद्ध हुआ था।

155. यात्रा वृतान्त से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– यात्रा वृतान्त किसी यात्रा का शुद्ध वृतान्त नहीं होता बल्कि जिस स्थान की यात्रा की जाती है उसके सौंदर्य प्रकृति, संस्कृति, परिवेश और जनसंपर्क की अनुभूतियाँ भी होती है। इसमें जीवन की स्पष्ट और साक्षात् जानकारी होती है। यह सुनी सुनाई कथा न होकर प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित होती है। यात्रा वृतान्त की रचना के लिए आवश्यक है कि लेखक ने स्वयं किसी विशेष स्थान की यात्रा की हो। उसे इसका निजी अनुभव होना चाहिए क्योंकि यात्रा वृतान्त में अनुभवों और अनुभूतियों के स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूप दिखाई देते हैं।

156. हिंदी साहित्य में संस्मरण लेखन कब प्रारम्भ हुआ?

उत्तर– हिंदी में संस्मरण का आरम्भ द्विवेदी युग में प्रकाशित होने वाली पत्रिका सरस्वती से हुआ। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार सरस्वती के विभिन्न अंकों के समय–समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे हैं। स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अनुमोदन का अन्त (फरवरी 1905) सभा थी सभ्यता (अप्रैल 1907) विज्ञानाचार्य बासु का विज्ञान मन्दिर (जनवरी 1918) आदि की रचना करके संस्मरण साहित्य की श्री वृद्धि की।"

157. संस्मरण साहित्य का प्रवर्तक किसे मानते हैं?

उत्तर– संस्मरण साहित्य के प्रवर्तक के रूप में भी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। पत्रकार होने के नाते ये अनेक महान व्यक्तियों के निकट संपर्क में रहे। नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने अफ्रीका की यात्रा की। इन्होंने इन सबसे संबंधित विशेष प्रकार के संस्मरण लिखे हैं। अतः इन्हें संस्मरण लिखने की कला का पथ–प्रदर्शक माना जा सकता है। 'साबरमती आश्रम' में महात्मा गांधी जी जैसे इन्होंने अनेक सुघड़ संस्मरण लिखे हैं।

158. प्रारंभिक संस्मरण लेखकों के नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर –संस्मरण लेखन करने वाले अन्य स्मरणीय नाम घनश्याम दास बिरला, श्री मन्नारायण अग्रवाल, भदन्त आनन्द कौसल्यायन रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र, नरहरि विष्णु गाडगिल हैं। बिरला जी ने बापू नामक रचना में गांधीजी के जीवन से संबंधित अनेक संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। भदन्त–आनन्द कौसल्यायन के 'जो न भूल सका' तथा 'जो लिखना पड़ा' महत्वपूर्ण है। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' भी बड़े ही सजीव एवं रोचक संस्मरण हैं।

कन्हैयालाल मिश्र ने 'भूले हुए चेहरे' तथा नरहरि विष्णु गाडगिल ने 'स्मृति शेष' लिखकर इस विधा को समृद्ध किया है।

159. श्रीमती महादेवी वर्मा के संस्मरणों का परिचय दीजिए।

उत्तर– महादेवी वर्मा ने अनेक सस्मरण लिखे। उनके द्वारा रचित 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं' और 'पथ के साथी' नामक तीन कृतियों को इस विधा में रखा जाता है, पर इनमें से पथ के साथी निश्चय ही एक सर्वाधिक सशक्त संस्मरणात्मक सर्जना है। इसमें इन्होंने अपने समसामयिक कवियों एवं साहित्यकारों के अत्यन्त सजीव संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी जी की 'मेरे प्रिय संस्मरण' और 'संस्मरण' भी इसी प्रकार की रचनाएं हैं।

160. कुछ प्रसिद्ध संस्मरण रचनाओं का नाम लिखिए।

उत्तर– वृदांवन लाल वर्मा द्वारा रचित 'कुछ सस्मरण', 'इलाचन्द्र जोशी की मेरे प्राथमिक जीवन की झलकिया' , मन्मथ नाथगुप्त की 'क्रांति युग के संस्मरण', शिव नारायण टण्डन की 'झलक', शिवपूजन सहाय की 'वेदिन', सत्यवती मलिक की 'अमिट रेखाएं', देवेन्द्र सत्यार्थी की 'रेखाएं बोल उठी', शांतिप्रिय द्विवेदी की 'स्मृतियां व कृतियां', राहुल सांकृत्यायन की 'बचपन की स्मृतियां', डॉ. नगेन्द्र की 'चेतना के बिम्ब', कृष्णा सोबती की 'हम हशमत', ज्ञान चंद की 'कथा शेष', 'घर' में आदि प्रमुख संस्मरणात्मक कृतियां हैं।

161. जीवनी विधा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन घटनाओं का विवरण है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्नपूर्वक लिखा गया इतिहास है जिसमें किसी व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विवरण मिलता है। जीवनी किसी व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखी जाती है। जीवनी किसी भूतकाल से संबंधित किसी महान् व्यक्ति या समकालीन श्रेष्ठ व्यक्ति से जुड़ी हुई हो सकती है। लेखक जीवनी लिखते समय सम्बन्धित व्यक्ति के मित्रों, सगे–संबंधियों पड़ोसियों आदि की सहायता ले सकता है। लेखक सम्बन्धित व्यक्ति की कमियों को उजागर कर सकता है लेकिन उसके जीवन प्रसंग से खिलवाड़ करके उसके चरित्र को धूमिल नहीं कर सकता।

162. शोध साहित्य से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– शोध साहित्य के मूल में किसी एक व्यक्ति या विषय को लेकर अनुसंधात्मक ढंग से उसकी समग्र एवं सर्वागीण समीक्षा प्रवृति ही काम किया करती है। इस प्रकार के साहित्य विकास के क्षेत्र में उच्चतम मान स्थापित करने की प्रवृति के कारण ही प्रमुखतः हुआ है। किसी विशेष व्यक्ति या विषय के संबंध में अपनी सर्वज्ञता का महत्व प्रतिपादित करने की प्रवृति भी शोध साहित्य के मूल में विद्यमान है। इससे साहित्य एवं साहित्यकारों के संबंध में नव्य क्षितिजों का उद्घाटन भी हो जाता है। इन दिनों इस विधा में विभिन्न विश्वविद्यालयों में बहुत कार्य हो रहा है।

163. हिन्दी के प्रारंम्भिक जीवनी साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर– हिंदी साहित्य में जीवनी साहित्य की परंपरा भक्तिकाल से मिलती है। नाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल', गोसाई गोकुलनाथ विरचित 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' तथा 'दौ सौ वैष्णव की वार्ता' इस दिशा में प्रथम प्रयास कहे जा सकते हैं। इनमें संख्याओं के अनुरूप ही अनेक वैष्णव भक्तों के चरित्र अंकित किए गए हैं। इसके पश्चात् बेणी माधव द्वारा रचित 'गोसाई चरित' नामक जीवनी उपलब्ध होती है। अकबर काल में एक कवि बनारसी दास ने 'अर्द्धकथानक' नाम से अपनी आत्मकथा को भी पद्यबद्ध किया था। इन्हें विशुद्ध जीवनी साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। इसे मात्रा ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

164. संस्मरण और रेखाचित्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– संस्मरण प्रायः प्रसिद्ध व्यक्तियों के ही लिखे होते हैं और इनके लेखक भी प्रायः प्रसिद्ध व्यक्ति ही होते हैं। जबकि रेखाचित्र के लिए इस प्रकार का कोई बंधन नहीं होता। इनके प्रधान से प्रधान पात्र भी साधारण होते हैं। संस्मरण का संबंध देश, काल एवं पात्र तीनों से होता है जबकि रेखाचित्र का संबंध देश और काल से न होकर केवल पात्र से ही होता है। संस्मरण में रेखाचित्र की तुलना में आत्मनिष्ठता अधिक होती है। संस्मरण लेखक की कोई निश्चित शैली नहीं होती। वह किसी भी शैली को अपना सकता है। रेखाचित्रकार को शैली सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं, उसे सदैव चित्रात्मक शैली ही अपनानी पड़ती है। चित्रात्मक शैली के अभाव में रेखाचित्र का सृजन संभव नहीं है।

165. आत्मकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर– हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं के समान इसका उद्‌भव भी आधुनिक काल में हुआ। इसमें लेखक भाषा के माध्यम से अपने जीवन को स्वयं प्रस्तुत करता है। वह स्मरण के आधार पर जीवन के आरम्भ से लेकर लेखन कार्य के क्षणों तक को संस्मरणात्मक रूप में चित्रित करता है। उसमें यथार्थ सदा विद्यमान रहता है। लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु अनेक प्रभावों का वर्णन भी करता है। महापुरुषों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं पाठकों का मार्गदर्शन करती हैं तथा प्रेरणा देती हैं। जीवनी और आत्मकथा में यही अंतर है कि जीवनी में लेखक किसी अन्य पुरुष की कथा लिखता है और आत्मकथा में स्वयं अपनी कहता है।

166. हिंदी एकांकी के उद्‌भव का परिचय दीजिए।

उत्तर– हिन्दी में एकांकी रचना का कार्य सन् 1930 के बाद आरम्भ हुआ था। इनका आधार और आकार प्रकार पश्चिमी स्वरूप के अनुसार था। डॉ. नगेन्द्र ने माना है कि भारतेंदु युग के बाद यह कार्य आरम्भ हो गया था। महेशचन्द्र प्रसाद, देवीप्रसाद गुप्त, रूप नारायण पाण्डेय, बद्रीनाथ भट्ट, पांडेयबेचन शर्मा उग्र और जयशंकर प्रसाद ने एक–एक एकांकी सम्बन्धी रचना की थी, लेकिन इस विधा का वास्तविक लेखन डॉ. रामकुमार वर्मा ने किया। डॉ0 रामकुमार वर्माको हिंदी एकांकी लेखन का जनक माना जाता है। उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर आदि अनेक मुख्य एकांकीकार हैं।

167. भारतीय भाषा में पत्रकारिता का प्रारम्भ कब हुआ?

उत्तर– सन् 1816 तक जितने भी भारतीय पत्र प्रकाशित हुए वे सब अंग्रेजी में थे, लेकिन सन् 1818 में पहली बार भारतीय भाषा में मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसका नाम था 'दिग्दर्शन'। इसे ईसाई धर्म के प्रचार के लिए छापा गया था, बाद में राजा राममोहन राय के प्रभाव से बंगला गजट नामक पत्रिका छपी थी, जिसमें स्वतन्त्र और उदार विचारों को प्रकट किया गया था। भारतीय पत्रकारिता में नए अध्याय को जोड़ने का वास्तविक, श्रेय राजा राममोहन राय को ही है, उन्होंने बंगाल में संवाद 'कौमुदी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था, उन्होंने ईसाई धर्म का विरोध करने के लिए इस पत्र को आरम्भ करवाया था, लेकिन अंग्रेज सरकार की विरोधी नीतियों के कारण यह बहुत देर तक चल नहीं पाया था।

168. हिन्दी के प्रारम्भिक समाचार पत्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– हिन्दी में प्रकाशित पहला साप्ताहिक पत्र 'उदण्ड मार्तण्ड' है। जिसे युगल राज शुक्ल ने 30 मई 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित किया। सन् 1845 में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'बनारस अखबार' नामक साप्ताहिक पत्र आरम्भ किया था। लगभग इसी समय राजा राममोहन राय ने हिंदी में 'बंगदूत' का आरम्भ किया था। 'मार्तण्ड', 'मालवा', जगदीप भास्कर, सुधाकर, 'सामदण्ड मार्तण्ड', 'बुद्धि प्रकाश', 'शिमला अखबार' आदि ऐसी पत्र–पत्रिकाएं हैं जो सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से पहले भारतीय जनमानस में अपना स्थान बना चुके थे। भारतेंदु की

पत्रिका 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन सन् 1867 को हुआ था। सन् 1854 मे कलकत्ता से हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'समाचार सुधा दर्पण' प्रकाशित हुआ था।

169. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों के नाम लिखिए।

उत्तर– जहां 19वीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी में केवल तीन दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे, वहां स्वाधीनता के बाद इनकी संख्या हजारों तक पहुंच गई है। नवभारत टाइम्स, जागरण, स्वतन्त्र भारत, अमर उजाला, वीर प्रताप, वीर अर्जुन, पंजाब केसरी, दैनिक ट्रिब्यून, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, दैनिक भास्कर, नई दुनिया, राजस्थान पत्रिका आदि हजारों समाचार पत्र हैं, जिनका यहां नामोल्लेख करना असंभव सा है।

170. साप्ताहिक पत्रों का नामोल्लेख कीजिए जो स्वतन्त्रता के बाद छपने लगे थे।

उत्तर– हिन्दी में साप्ताहिक पत्रिकाओं का आरम्भ 'उदण्ड–मार्तण्ड' से हुआ था। तब से अब तक अनेक महान् पत्रकारों ने हिन्दी साहित्य को श्रेष्ठ पत्रिकाएं प्रदान की हैं। स्वतन्त्रता के बाद की कुछ प्रमुख पत्रिकाएं हैं – धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, रविवार आदि हैं। डॉ. धर्मवीर भारती के सम्पादन में छपने वाले 'धर्मयुग' ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी, वह हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अपूर्व है।

171. गद्य गीत किसे कहते हैं ?

उत्तर– गद्य में काव्य जैसा प्रभाव उत्पन्न करके भावों को अभिव्यक्त करने की प्रवृति ने इस विधा को जन्म दिया। भावावेश के सुख–दुखात्मक क्षणों में मानव की वाणी में काव्यमयता का संचार होने लगता है। यदि इसमें ताल, लय एवं संगीत का भी समन्वय हो जाता है, तब तो यह 'गीति काव्य' के नाम से अभिहित किया जाता है और यदि भावावेश की यह अभिव्यक्ति तरलायित गद्य में ही रहती है तो इसे गद्य गीत या गद्य काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है।

172. हिन्दी में रचित बाल किशोर साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर– हिन्दी में बाल किशोर साहित्य रचने की सामान्य प्रवृति स्वतन्त्रता पूर्व युग में भी दिखाई देती है। तब अकसर इस तरह की पत्र–पत्रिकाओं के लिए ही ऐसा साहित्य लिखा जाता था। 'बाल सखा', 'सुमन सौरभ', 'पराग', 'चंदामामा', 'चंपक' आदि पत्रिकाओं ने इस रूचि को निश्चय ही विशेष विकास प्रदान किया था। पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद साक्षरता का अधिकाधिक प्रचार करने और हो जाने से इस प्रकार की सृजनात्मक प्रक्रिया को विशेष महत्व मिला है। आज इस प्रकार का साहित्य तात्विक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व प्राप्त करता जा रहा है और इसकी रचना भी खूब हो रही है।